एक आत्मकथा

लेखक

देवीदत्त शुक्ल

('सरस्वती'-सम्पादक)

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस, लिमिटेड,

इलाहाबाद

१९३९

Published by
K. Mittra
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad

Printed by
A. Bose.
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch

निवेदन

यह मुंशी लुत्फुल्ला की आत्मकथा एक महत्त्व की पुस्तक है—ऐतिहासिक दृष्टि से भी और साहित्यिक दृष्टि से भी। इसे मुंशीजी ने सन् १८४८ मे अँगरेजी मे लिखा था। इसमे उन्होंने सन् १८०२ से सन् १८४४ तक की अपनी जीवन-गाथा लिखी है। वे कैसे ऊँचे घराने मे पैदा हुए थे, मराठों के उदय-काल मे उनके घराने का कैसे पराभव हुआ और कम्पनी सरकार के अँगरेज़ अफसरों को हिन्दुस्तानी पढ़ाकर उन्हे कैसे अपना निर्वाह करना पडा एव एक नवाब के साथ वे कैसे इँगलैण्ड गये आदि-आदि बातों का उन्होंने अपनी इस आत्म-कथा मे बहुत सरल और सरस ढङ्ग से वर्णन किया है। इसके पढ़ने से उस समय के पश्चिमी भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों तथा वहाँ के निवासियों के सम्बन्ध की अनेक रोचक और ज्ञातव्य बातों से ही पाठक अवगत न होंगे, प्रत्युत उसके साथ उन्हे वहाँ की तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का भी बोध होगा और यह ज्ञात होगा कि उनके समय देश के उस अञ्चल मे अँगरेजों का कितना व्यापक प्रभाव स्थापित हो चुका था।

अपनी इस महत्त्व की पुस्तक मे मुंशीजी ने अपनी विलायत-यात्रा का जो वर्णन किया है उससे मार्गगत स्थानों और

वहाँ के लोगों का तो हाल मालूम ही होगा, उस समय के ब्रिटेन और वहाँ की सभ्यता आदि का भी समुचित ज्ञान प्राप्त होगा।

मुंशीजी ने अपनी आत्मकथा बड़े आकार में लिखी है और उसमें उन्होंने अनेक गम्भीर विषयों का विवेचन किया है। उसका यह हिन्दी रूपान्तर संक्षिप्त रूप में है। अनुवाद करते समय हमने विषयान्तर की बातों को छोड़ दिया है और उनकी आत्मकथा-सम्बन्धी बातों का ही इसमें संकलन किया है। आशा है, यह आत्मकथा अपने इस संक्षिप्त रूप में भी पाठकों का समुचित रूप से मनोरञ्जन करने में समर्थ होगी।

१८ जुलाई, १९३९
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
प्रयाग

देवीदत्त शुक्ल

225

एक आत्मकथा

पहला अध्याय

मेरा जन्म मालवा की प्राचीन धारा नगरी मे हुआ था। मैं सन् १८०२ की चौथी नवम्बर को इस अद्भुत संसार मे आया था।

मेरे पिता शाह कमालुद्दीन के वंशधर थे। शाह कमालुद्दीन अपने समय मे मालवा के एक बड़े प्रसिद्ध सन्त थे। वे सुल्तान महमूद खिलजी के पीर और शिक्षक दोनों थे। सन् १४३४ से १४७० तक अर्थात् छत्तीस वर्ष तक उनको सुल्तान का सम्मान प्राप्त रहा। उनकी मृत्यु होने पर सुल्तान ने नगर के पश्चिमी फाटक पर उनकी स्मृति मे एक मकबरा बनवा दिया और उसी के सामने अपने गाड़े जाने के लिए भी एक दूसरी भव्य इमारत बनवाई। शाहजी के मकबरे के पास एक बहुत बड़ा प्राचीन हिन्दू-मन्दिर था। सुल्तान ने उसे तोड़-फोडकर एक सुन्दर मस्जिद मे परिणत कर लिया। इसके बाद उसने इन स्थानों के आस-पास की तीन सौ एकड़ भूमि उन मकबरों पर लगा दी और उसकी आय इमारतो की मरम्मत तथा शाह के परिवार के भरण-पोषण मे खर्च होने लगी। इसके सिवा सुल्तान ने पास की एक दूसरी भूमि की आय मे से एक रुपया प्रति दिन के हिसाब से उसी काम के लिए वसीके का भी प्रबन्ध कर दिया। इस आय से मेरे पूर्वज सन् १७०३ तक राजसुख का उपभोग करते रहे। परन्तु औरङ्गजेब के बाद जब मालवे पर मरहठों का

अधिकार हो गया तब उन्होंने भूमि और वसीका सब जब्त कर लिया। केवल मेरे प्रपितामह के जीवन-निर्वाह के लिए दो एकड भूमि के लगभग उनके पास रहने दी। इस प्रकार जिस घराने ने लगभग तीन सौ वर्ष से वैभव का उपभोग किया था, तबाही की हालत को पहुँच गया।

शिक्षा प्राप्त करने के लिए मेरे पिताजी अपने एक सम्बन्धी के साथ सात वर्ष की ही उम्र से देश मे भ्रमण करते रहे। जब उनकी शिक्षा पूर्ण हो गई और वे मुल्लागिरी के काम मे दक्ष हो गये तब उक्त सम्बन्धी ने उनसे घर जाने को कहा। उस समय उनकी उम्र १५ वर्ष की थी। परन्तु वे घर नहीं आये और उस सम्बन्धी के साथ और दस वर्ष तक रहे। जब वे २६ वर्ष के हो गये तब मेरे पितामह ने उन्हे घर लौट आने का विशेष आग्रह किया। वे दिल्ली से घर को चले। आगरे तक आये। सुस्वरूप और विद्वान् थे ही। आगरे मे जिनके घर ठहरे उन्होंने उनके साथ अपनी कन्या व्याह देने की इच्छा प्रकट की। वे राजी हो गये। विवाह करके वे वहाँ ठहर गये और चार वर्ष तक वहीं रहे। जब पिता की मृत्यु का सवाद मिला तब घर लौटने को वाध्य हुए। घर आकर वे फिर कहीं नहीं गये।

उनचास वर्ष की उम्र मे उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। उससे उनके केवल दो कन्याये हुई थीं। जो लोग पूर्वी जातियो के, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, मनोभाव से परिचित है वे जानते है कि अपने वंश का अस्तित्व बनाये रखने के लिए उन्हे पुत्र की कितनी उत्कट कामना रहती है। जब मेरे पिता ने अपने को इतनी बडी उम्र मे विधुर पाया होगा और अपने को अपने वंश का अन्तिम पुरुष समझा होगा तब उनके मन मे कैसे भाव उठते रहते होगे, इसकी पीडा का अनुभव वे भले

प्रकार कर सकते हैं। तथापि यदि उन्होंने केवल अपने मन से ही सलाह ली होती तो वे अपनी उस अवस्था से ही सन्तुष्ट रहते। परन्तु मित्रों के आग्रह से उसी साल के अन्त मे उन्हे एक १७ साल की कन्या के साथ विवाह करना पड़ा। यह कन्या परम सुन्दर थी, उसी तरह उदार और सुशील भी थी। घराना भी उन्ही की तरह श्रेष्ठ था। यही मेरी माता थी।

विवाह के तीन वर्ष के बाद मेरे पिता की इच्छा-पूर्ति हो गई और मेरा जन्म हुआ। मेरे माता-पिता और उनके प्रेमी प्रसन्न हुए। परन्तु कुछ लोगों को मेरे जन्म से प्रसन्नता नहीं हुई। ये लोग मेरे कुटुम्बी थे। ये जानते थे कि मेरे जी जाने से सुल्तान महमूद की माफी की आय का आधा भाग मुझे मिलेगा। इस माफी की आय कुल दो सौ रुपये वार्षिक थी। अस्तु।

मेरे माता-पिता ने मेरा नाम लुत्फुल्ला रक्खा। मेरे जन्म के दो वर्ष के बाद मेरे पिता के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु वह कुछ ही महीने जिया। और जब मैं चार वर्ष का हुआ तब मेरे प्यारे पिता की भी मृत्यु हो गई। वे अपने पीछे एक युवती विधवा और एक अनाथ बालक छोड़ गये।

अब हमारी दशा सचमुच दयनीय थी। मेरी माता को दुनिया का रंग-ढग ज्ञात नहीं था। इस विपत्ति के आ पड़ने पर उसे अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। वह किससे सहायता माँगे, सलाह ले? मेरे हिस्सेदार भाई सहायता करने के स्थान में हमारे विनाश की चिन्ता मे निरत थे। इधर देश मे घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। अनेक आदमी भूख से नित्य मरने लगे।

जब हमारा चालीस दिन का शोक-काल समाप्त हो गया तब मेरी मा ने मेरे स्वर्गीय पिता के घर को छोड़ देना ही उचित समझा; क्योंकि वहाँ हम चारों ओर उन्ही लोगों से घिरे रहते

थे जो कहने को तो मित्र थे, किन्तु हमारे विनाश के ही काम मे लगे रहते थे। हम लोग अपने ननिहाल चले गये। मेरी नानी और मामा दोनों ने हमे बडे आदर से लिया। इन प्यारे सम्बन्धियों का मेरे भाइयो जैसा हमसे कोई वैसा आर्थिक सम्बन्ध नही था कि हमारे साथ कृपापूर्ण व्यवहार न करते। और यद्यपि उनके कुटुम्ब मे दो की वृद्धि हो जाने से उनकी परिमित आय पर प्रभाव पडा, तो भी हमारे दुख से दुखी होने की सत्यता का प्रमाण उन्होंने अपनी सच्ची सहानुभूति प्रदर्शित करके ही दिया। मेरे प्रति मेरे मामा का व्यवहार अपने पुत्रो से किसी वात मे कम नही था, वरन कदाचित् इस विचार से कि मै विलकुल अनाथ हूँ, अधिक दयालु और उदार होता था। इसी तरह मेरी नानी का भी व्यवहार मेरे साथ दयापूर्ण ही रहा।

इस घर मे हमारा समय सुख से व्यतीत हुआ। परन्तु उन दिनो चारो ओर अव्यवस्था का राज्य था। उसका उन्मूलन करने के लिए कुछ ही वर्षो के वाद अँगरेज़ों ने पहले-पहल अपना पैर आगे वढ़ाया था। प्रतिवर्ष दो-तीन वार यह सुनने मे आता था कि अव पिडारी आये। वे आस-पास के जिलों मे उत्पात मचाये रहते थे। उनके आने की ख़वर से लोग भय से कॉप उठते थे। आभूषण, रुपया और वहुमूल्य वस्तुएँ ज़मीन मे गाड दी जाती थीं। जव पिडारी आ जाते तव लोगों की अवस्था सचमुच दयनीय हो जाती। उस समय वे दो आगों के वीच मे पड जाते। नगर से उन्हे दूर रखने के लिए किले से जो गोलावारी की जाती थी उसके गोले उन तक न पहुँचकर शहरपनाह के भीतर ही गिरते थे, जिससे नगर-निवासियो की ही हानि होती थी। यदि वे किले की गोलावारी से भाग खड़े होते थे, तो भी नगर के जन-धन दोनों की वहुत वड़ी हानि हो

जाती थी। यदि वे किसी प्रकार नगर में घुस आते तो नगर-निवासियों को अपना गडा हुआ धन उन्हे बतला देने के लिए तरह तरह के अमानुपिक अत्याचार सहने पडते थे।

परन्तु हमारे घरों को डाकुओं की सभी सेनायें आदर की दृष्टि से देखती थीं। हमारे घराने को डाकू भी पवित्र घराना समझते थे। यही नही, लौटते समय वे मेरे मामा को और मुझको सदा कुछ भेट देकर जाते थे। हमारे पडोस के हिन्दू या मुसलमान जिस किसी को अपने आपको और अपने माल-असबाब को हमारे घरों मे छिपाने का अवसर मिल जाता और इस प्रकार उन राक्षसी अत्याचारों से बच जाते वे भी हमें कुछ भेट करते। ऐसे कठिन अवसर मे भी हमारी अवस्था यद्यपि बुरी नही थी, तो भी लोगों का कष्ट देखकर हम लोगों का भी जीवन दुःखपूर्ण बना रहता था।

मेरे मामा ने हमारा पक्ष लिया। उन्होंने हमारे कुटुम्बियों से जमीन की उपज का तथा मकबरे के नित्य के चढ़ावे का आधा आधा हिस्सा माँगा। कुछ समय तक उन लोगों ने कुछ रुपया दिया, परन्तु वे सदा यह कहते कि या तो तुम स्वयं प्रतिदिन आकर हमारी तरह मकबरे की भेट-पूजा का प्रबन्ध किया करो या अपने स्थान मे किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर दो, अन्यथा तुमको हम लोग कुछ न देंगे। मेरे मामा ने अपनी शक्ति भर हम लोगो की रुपये-पैसे से मदद की। परन्तु उनका अपना कुटुम्ब भी बड़ा था। मेरी माता अपने दयालु भाई पर अपना भार नहीं लादना चाहती थी। उसके पास कोई चार सौ रुपया के दहेज के आभूषण थे। वह उन्हे एक एक करके बेचने को बाध्य हुई और साल भर के भीतर ही सारे गहने बिक गये। परन्तु हम लोगों के सौभाग्य से महँगी भी नहीं रही।

कुछ ही वर्षों मे मै यथासम्भव शुद्ध बोलने लगा। मैं स्पष्ट बोलता था और अपनी माता तथा सम्बन्धियों को तरह-तरह की कहानियाँ रचकर उन्हे ठगने का प्रयत्न किया करता था। मै शरीर लडका था और शरारत करने के लिए तरह तरह के उपाय किया करता था। मेरी शरारतों से घर के लोग बहुत नाराज होते थे।

मै मेढक पकड़ता और बद्माशी से उन्हे स्त्रियो की उन पिटारियो मे रख देता था, जिनमे उनकी सुइयाँ, डोरा, रुई आदि रक्खी रहती थीं। मै देखता रहता कि घर के काम से छुट्टी पाकर और कलेवा कर चुकने पर वे कब सिलाई आदि करने को आराम से बैठती है। तब मै अपनी निगाह पिटारी पर लगाता और ज्योंही कोई बेचारी स्त्री उसका ढँकना हटाती, भीतर से मेढक उसपर आ कूदता। इससे वह चीख पड़ती, कभी कभी मूर्च्छित हो जाती और दर्शक हँसने लगते।

पाँच वर्ष का होने पर मै और भी शरीर हो गया, अतएव मुझे स्कूल भेजने का निश्चय किया गया। एक शुभ दिन ठीक हुआ। बगल मे किताब दबवाकर मामा मुझे स्कूल ले गये। निस्सन्देह मै स्कूल उसी तरह अनिच्छा से गया, जैसे मेमना वधिकशाला को जाता है।

मेरे मामा ने शिक्षक को मेरा परिचय दिया, जिसने मुझे स्कूल मे भर्ती कर लिया। कुछ ही दिनो मे वह यह जानकर बहुत खुश हुआ कि मैं अपने सहपाठियो की अपेक्षा अपना पाठ अधिक शीघ्रता से याद कर लेता हूँ तथा अपनी कुरान एव मुल्ला को भी जानता हूँ। छः महीने के भीतर ही मैंने इस्लाम की सारी प्रार्थनाये याद कर लीं, जिसके लिए मै सर्वत्र आदर से लिया गया।

मैं इस काल मे केवल एक बार पीटा गया था, और सो भी बड़ी निर्दयता से। यह दण्ड मुझे शेख नसरुल्ला नाम के एक

धर्मात्मा पुरुष के साथ अन्याय का काम करने के लिए दिया गया था।

ये वृद्ध सज्जन हासिलपुर नामक गाँव के मुल्ला थे। हासिलपुर हमारे यहाँ से कोई पचास मील की दूरी पर था। ये मेरे मामा के घनिष्ठ मित्र थे। उनसे मिलने के लिए प्रायः आया करते थे और एक-दो दिन नही, किन्तु सप्ताहों और कभी कभी महीनों उनके पास ठहरे रहते थे। हमारी आर्थिक अवस्था ऐसी नही थी कि इन वृद्ध मुल्ला के आदर-सत्कार का भार सँभाला जा सकता और मुल्लाजी इस ओर ध्यान तक न देते थे। मेरे मामाजी उदारता, दयालुता और मनुष्यता मे अद्वितीय थे। वे अपने अतिथि के सत्कार के लिए अपने कपड़े तक गिरवी रख देते थे और ऋणग्रस्त हो जाते थे।

सदा की भाँति एक बार वृद्ध शेख़ नसरुल्ला भेट करने को आये। ये बड़े बुद्धिमान् थे और इनका एक एक शब्द कहावत का रूप ग्रहण करता था। इनकी सूरत-शकल मुझे अच्छी तरह याद है। इनका शरीर लम्बा और हृष्ट-पुष्ट था। माथा दबा हुआ था, मुँह मे एक भी दाँत नहीं रह गया था। परन्तु इनकी लम्बी सफेद दाढ़ी से यह सारी असुन्दरता दबी रहती थी। ये बड़े बातून थे और चाहे कोई सुने या न सुने, अ ट-संट बकते रहते थे।

वृद्ध मुल्लाजी मुझे नही पसन्द करते थे। वे सदा मेरे कामों मे बाधा डाला करते थे। और यदि मैं किसी शब्द के उच्चारण मे ज़रा भी भूल करता तो मेरी बड़ी लानत-मलामत करने लगते। इन अन्यायपूर्ण झिडकियों के कारण मैने उनसे बदला लेने का निश्चय किया।

शुक्रवार के दिन छुट्टी होने से कुछ पैसे लेकर मैं बाज़ार गया और वहाँ थोड़ी बारूद मोल ली। उस दिन दोपहर की नमाज़

के बाद वृद्ध मुल्ला जी घर लौटे और बरामदे के एक खुले भाग मे लेटकर सो गये। उनका पेट खूब भोजन करने से तना हुआ था। उनका मुँह खुला हुआ था और आँखे अधखुली थी। उनकी लम्बी सघन दाढी उनकी छाती पर घास के पूले की भाँति पडी हुई थी। धीरे से उनके पास जाकर मैने उनकी दाढी पर बारूद बिखेर दी। इसके बाद मै बाहर चला आया। एक लम्बे डडे मे एक सलाई बाँधी। फिर उस सलाई को जला दिया और दूर से उसे उनकी दाढी से छुवा दिया। बारूद के भभक उठने से दाढी एकाएक जल उठी। वृद्ध मुल्लाजी अपनी नीद से जाग पडे और ला इलाह इल्लिल्लाह कहते हुए अपना मुँह मलने लगे। वे क्रोध से पागल होकर उठ खडे हुए। मै चुपचाप जनाने घर के दरवाजे से भीतर हो गया। वे मुझे न देख पाये। भीतर खडे होकर एक छिद्र से उनका दृश्य सन्तोप के साथ देखने लगा। अपना डडा लिये हुए वे इधर-उधर दौड रहे थे। यदि स्वयं शैतान भी मिल जाता तो वे उसे भी उस समय मार गिराते। उनका चेहरा और हाथ जल गये थे और अपनी स्वाभाविक कुरूपता से तथा जली हुई दाढी से वे निस्सन्देह अत्यन्त विद्रूप हो गये थे। उनका शोर-गुल सुनकर मेरे मामाजी अपने पढने के कमरे से बाहर निकल आये। अपने मित्र का जला हुआ चेहरा और हाथ और उनको अपनी दाढी से रहित देखकर उन्होने चिल्लाकर पूछा—शेख साहब, आपको क्या हो गया है? वृद्ध मुल्ला ने जवाब दिया—मेरा सर्वनाश हो गया! ईश्वर ने मेरे पापों का दण्ड दिया है। मेरी दाढी के साथ मेरा सारा सम्मान चला गया। हाय मेरी दाढी! हाय मेरी दाढी! उनका चेहरा अच्छी तरह देख और उनका इस तरह हाय हाय करना सुनकर मेरे मामाजी अपनी हँसी न रोक सके। उनको हँसते देखकर वृद्ध मुल्लाजी ने यह कहकर उनका

तिरस्कार किया कि अपने भाई के संकट पर हँसने में तुम्हे लज्जा नही आती। मेरे मामा ने इसके लिए उनसे क्षमा माँगी और पूछा कि यह कैसे हुआ। मुल्ला ने कहा—उसी कुत्ते ! उसी पशु ! उसी काफिर ! उसी शैतान ! उसी तुम्हारे विद्वान भाञ्जे ने, जिसे तुम होनहार लडका कहते हो, मुझे विश्वास है, उसी ने यह किया है। उसका वह डडा जो यहाँ पडा है, उसको कत्ल कर देने के लिए काफी प्रमाण है। यह सुनकर मै काँप उठा, चुपचाप अपने बिछौने पर जाकर लेट रहा और गहरी नींद मे होने का बहाना किया। इस बीच मे मेरे मामा ने स्याही की दो या तीन शीशियाँ उनके चेहरे और हाथों पर उड़ेल दी, क्योंकि जलने की यही दवा देश मे प्रचलित थी और उन्हे धीरज दिया। उन्होंने वृद्ध शेख़ से वादा किया कि मेरी इस मूर्खता के काम का कठोर दण्ड दिया जायगा। उनके इस आश्वासन से वृद्ध को कुछ सन्तोष हुआ। इसके बाद मेरे मामाजी अपने वादे को पूरा करने के विचार से भीतर आये। परन्तु बहुत ही दयालु-हृदय के आदमी होने के कारण वे मुझे दण्ड न दे सके, अतएव उन्होंने मेरी माता और नानी से जो कुछ हुआ था, कह दिया, जिस पर उन दोनों स्त्रियों ने बिना कुछ पूछे ही लगातार मेरी पीठ पर बेंत मारने शुरू कर दिये। मैं चिल्ला चिल्लाकर क्षमा माँगने लगा। मैंने, यह कहकर कि मैंने दाढी नही जलाई, अपने को निर्दोप बतलाया। परन्तु मूर्खतावश स्वयं दाढ़ी न जलाने की बात कह देने से मेरा अपराध अपने आप प्रमाणित हो गया। सौभाग्य से मेरे मामा मौजूद थे। अतएव मुझपर बहुत ही कम हाथ पडने पाये और मै उन पीटनेवालियों के हाथों से छुड़ा लिया गया।

मेरी मा ने कुरान शरीफ की शपथ लेकर कहा कि यदि मैं फिर कभी ऐसी ही बदमाशी करते पाऊँगी तो चिमटे लाल करके

तुम्हारे हाथ जला दूँगी। इस तरह सरलता से मुक्ति पा जाने पर मैं बहुत खुश हुआ, किन्तु दूसरे दिन पड़नेवाली दूसरी मार का मुझे पता नहीं था।

दूसरे दिन सवेरे अपनी किताबें और कलेवा लेकर मै स्कूल गया। अध्यापक जी उस दिन बहुत ही कठोर और क्रुद्ध दिखाई दिये। उन्होंने मेरे अभिवादन का उत्तर नहीं दिया। मेरे एक युवक मित्र ने जो मेरे बगल मे बैठा था, मेरे कान मे कहा कि उस वृद्ध शेख ने तुम्हारे अपराध की रिपोर्ट अध्यापक से की है और शीघ्र ही तुमको उसका परिणाम भोगना होगा। अब लडकों से पिछले दिन का पाठ पूछा गया। परन्तु मुझसे पिछले तीन दिन का पाठ मुखस्थ सुनाने को कहा गया, जिसे मैने बिना एक भी भूल किये फर्राटे के साथ सुना दिया। अब हमसे अपनी जगहों पर बैठने को कहा गया। अध्यापकजी ने मुझसे पूछा—क्या कल तुमने वृद्ध शेख की दाढी जलाई थी? मैने कहा—नही साहब! मुझसे गलती से उनकी दाढी मे आग लग गई थी और उसके लिए मुझे काफी दण्ड भी दिया गया है। उन्होने जवाब मे कहा—अरे पशु! गलती कहता है! वह तो घोर अपराध है। यदि उसके बदले मे तुमको मुझसे कोई इनाम नही मिलेगा तो दूसरी बार तुम निस्सन्देह मेरी दाढी पर भी हाथ साफ करोगे। इसके बाद मै तुरन्त खम्भे से बाँध दिया गया और मुझे इतनी निर्दयता से उन्होंने कोडे लगाये कि मेरी पीठ उधड गई। इस अचानक की मार के पडने से मैंने दूसरी बार फिर बदला लेने का निश्चय किया। और यह बदला मै अपने अध्यापक से लेकर ही रहा। सौभाग्यवश मैंने ऐसी सफाई से काम किया कि इस बार मुझे कोई पकड भी न सका।

दो-तीन दिन के भीतर मैंने बाजार जाने का मौका निकाल लिया। वहाँ मैंने थोडा सा जमालगोटा खरीदा। मैं पहले से

ही जानता था कि यह बहुत कडा जुलाब है। मैंने घर लाकर उसका एक बीज पीसकर एक काग़ज़ मे रखकर अपनी पगडी मे खोंस लिया। मैं सबसे पहले स्कूल पहुँच जाता था। दूसरे दिन जब मेरे अध्यापक और उनके तीन मित्रों के लिए छोटे छोटे प्यालों मे क़हवा लाई गई तब प्रत्येक प्याला उनके बैठने की जगहों के सामने फर्श पर रख दिया गया। वे उस समय बाहर एक धार्मिक मामले की बहस मे मस्त थे। उन प्यालों को रखकर नौकर ख़बर देने के लिए बाहर चला गया। मैंने पगड़ी से वह बुकनी तुरन्त निकाली और जाकर अध्यापकजी के प्याले मे उसे अँगुली से घोल दिया। इतने मे एक लडका आ गया। प्याले के पास मुझे देखकर उसने मुझसे कहा—अरे चोरी करते हो। मन ही मन उसे शाप देते हुए मैंने कहा—देखते नही हो। अन्धे हो? मै तो रूमाल से मक्खियाँ उड़ा रहा हूँ और तुम मुझे चोरी लगाते हो। मैंने फिर कहा—अब तुम आओ और मक्खियाँ उडाओ। मेरी बारी हो गई। वह तुरन्त राज़ी हो गया। मै अपनी जगह पर जाकर ध्यान से अपनी किताब पढ़ने लगा।

अब मेरे अध्यापकजी और उनके मित्र बातचीत करते हुए भीतर आये और अपना अपना प्याला पीकर नित्य की भाँति हँसी-दिल्लगी करते हुए हु.क्का पीने लगे। कोई एक घंटे के बाद उनके साथी चले गये और मेरे अध्यापकजी को तकलीफ मालूम होने लगी। मुझे बिलकुल स्पष्ट दिखाई दिया कि मेरी जादूभरी .खूराक उनपर अपना असर डाल रही है। उनका चेहरा पीला पड़ गया, उनकी तेज़ आँखें सुस्त हो गईं और उनको जँभाइयाँ आने लगी। उन्होंने लड़कों से कहा—जाओ, छुट्टी है। मेरी तबीयत बहुत ख़राब है। कल रात की दावत मे मैंने बहुत खा लिया था। जान पड़ता है, एक न एक दिन ऐसी कोई दावत मेरी जान ही लेकर रहेगी।

यह आज्ञा हम लोगों ने बडी खुशी से सुनी और हम लोग अपनी किताबे समेटने लगे। इस बीच मे अध्यापकजी की तकलीफ ज्यादा बढ गई। उन्होंने अपनी तसबीह एक ओर फेंक दी, पगडी दूसरी ओर और वे फर्श पर उलटने-पलटने लगे। फिर अपना बडा तकिया छाती से दबा लिया और दावत तथा दावत देनेवाले, दोनो को शाप देने लगे। जब हम लोग घर जाने को तैयार हुए और उनका अभिवादन किया उस समय उनको बडी जोर की कै होने लगी और पीडा के दूसरे लक्षण दिखाई देने लगे। उस बुड्ढे बेचारे को उस दशा मे छोडकर हम लोग भाग निकले और प्रत्येक ने अपने अपने घर की राह ली।

एक आँख मे दुःख के आँसू और दूसरी मे सन्तोष का प्रकाश लेकर मै अपने घर को चला। सच तो यह है कि यद्यपि मैंने अपना बदला ले लिया था, तो भी मुझे यह बात सोचकर दुःख हुआ कि मैने उस मार से अधिक कठोर बदला लिया है, क्योंकि उस खूराक का एक चौथाई ही उस बुड्ढे के लिए काफी होता। यदि उनकी कोई खराबी होगी तो न्याय के दिन उनका .खून मुझे अपने सिर पर लादकर ले जाना होगा। इन उद्विग्न करनेवाले विचारों को लेकर मै घर पहुँचा। मेरी मा ने बे-मौके लौट आने का कारण पूछा। मैने कहा कि अध्यापकजी की तबीयत बहुत खराब हो गई है। कल वे दावत मे बहुत खा गये, जैसी कि उनकी आदत है, यह बतलाना मै नही भूला। इस पर मा ने मुझसे चरखे के पास बैठकर पिछले हफ्ते का पाठ सुनाने को कहा।

आम की ऋतु होने से मामा सवेरे ही अपने वृक्षों के पास चले गये थे। दोपहर तक वे नहीं लौटे। अध्यापकजी की तबीयत के खराब होने की खबर पाने पर उन्होंने कहा कि कल रात को मैंने जब उनको दावत मे देखा था तभी कह दिया

था। वे तुरन्त अध्यापक जी के घर को दौड़े गये। उन्हें बेदम और करीब क़रीब निर्जीव पाकर उनको कुछ दवाइयाँ दी और नौकर को समझा-बुझाकर घर लौट आये। दूसरे दिन अध्यापकजी चंगे हो गये, परन्तु कई दिनों तक वे लडकों को पढ़ा-लिखा नहीं सके। तब तक मै मा और मामा से पढ़ता रहा।

अध्यापक जी के नीरोग हो जाने पर फिर स्कूल लगा और सदा की भाँति मै फिर जाने लगा। अपने अन्धविश्वास के कारण अध्यापक जी आवश्यकता से अधिक अब मेरा आदर करने लगे। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति से यह कहा कि सन्तों के—मेरे पूर्वजों के—जिन्होंने उन्हें स्वप्न मे अनेक बार धमकाया है, अप्रसन्न हो जाने से वे बीमार पड गये थे। अपने पिछले दुर्व्यवहार के लिए उन्होंने मुझसे क्षमा माँगी। इस प्रकार सात वर्ष की उम्र मे मैं बालक मुल्ला हो गया था। प्रत्येक व्यक्ति मेरा हाथ चूमता था और सभी मेरा आदर करते थे।

मुझे पवित्र पुस्तक (.कुरान) की शिक्षा देने की आवश्यकता अब नहीं थी, क्योंकि वह मुझे प्रायः सब मुखस्थ थी। मै सब तरह की नमाज पढ़ना जानता था। शुक्रवार के दिन कभी कभी मै वाज देने के लिए खडा किया जाता था और मुझे याद है कि मैं अपना काम पूरा कर दिखाता था।

अब .कुरान के स्कूल से शीघ्र ही हटाकर मै फारसी के एक शिक्षक को सौंप दिया गया। अब मुझे अधिक पढ़ना पड़ने लगा। मुझे दो पाठ लेने पडते थे। दिन मे फारसी लिखता-पढ़ता था और रात मे मामा मेरे छोटे से दिमाग़ मे अरबी के तत्त्व भरते थे। अरबी से मै घृणा करता था, उसके महत्त्व का मुझे पता नहीं था। उधर मै फारसी पढ़ना पसन्द करता था, क्योंकि उसे मै बचपन से ही जानता था। हमारे घर के सभी लोग भेद की बात कहने मे तथा धार्मिक वाद-विवाद जैसे

अवसरों पर आम तौर से फारसी मे बोलते थे। इसके सिवा मेरे नये शिक्षक बहुत ही शरीफ आदमी और विनम्र स्वभाव के थे। जो कुछ मै पूछता उसे वे पूर्ण रूप से बतला देते तथा जो कुछ कहते उसे तर्क-द्वारा सिद्ध कर देते थे। वे बहुत कम नाराज होते थे। यदि कभी नाराज भी होते तो उनकी क्रोध की बाते मेरे पहले शिक्षक की प्रसन्नता की बातों की अपेक्षा अधिक मधुर होती थी। वे केवल उदारता के भाव से ही पढाते थे, क्योकि वे गायकवाड-सरकार के एक अधिकारी थे और हमारे यहाँ अपने काम पर आये थे। वे कोई स्कूल नही खोले हुए थे।

आठ वर्ष की उम्र तक मै सादी के सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों को पढ गया। मै खासी फारसी लिख सकता था और अरबी का प्रारम्भिक व्याकरण भी अच्छी तरह जान गया था। इस वर्ष मुझे एक जोखिम की घटना से सामना करना पडा, परन्तु सौभाग्य से मौत के पजे से बचकर निकल आया। एक शुक्रवार को मै अपने मकबरे को गया। मामा जी ने वहाँ अक्सर आने-जाने को कहा था, जिससे मेरा हक उसकी आय मे बना रहे। मेरे दोनों चचेरे भाइयो ने सदा की भाँति कपटाचार से मेरा स्वागत किया और मै उनके पास बैठकर कुछ देर तक बातचीत करता रहा। उन्होंने मुझसे कहा—तुम इतनी ही कम उम्र मे बहुत बुद्धिमान् हो गये हो, परन्तु तुम्हारी जिन्दगी शिक्षकों की अधीनता मे एक प्रकार के जेल मे बीत रही है। जब हम लोगों की उम्र के अर्थात् १७-१८ वर्ष के होगे तब ससार के ज्ञान से कोरे होगे। इसका मैने जवाब तो कोई नही दिया, परन्तु मन ही मन मैंने उनकी दशा की अपनी से तुलना करके प्रशसा की। मैंने सोचा कि उनका जीवन जरूर सुखद होगा, क्योंकि उनको स्कूल की कोई बाधा नही है, और वे स्वच्छन्दता का उपभोग करते हैं, सदा बाते करते, हँसते और खेलते रहते हैं। इधर मै

काल-कोठरी मे कागज़ों के बस्तों के साथ बन्द हूँ। उसी समय मैंने भाग्य की याद करके, जैसा कि आम तौर से मुसलमान करते है, अपने मन को धीरज दे लिया। इतने मे ही कई लड़के आ गये और हम सब लोग मिलकर खेलने लगे। दस बजने के लगभग हम लोग थक गये। मेरे भाइयों ने पास के तालाब में चलकर स्नान करने को कहा। इस पर हम सब लोग तालाब पर गये।

यह एक छोटा-सा सुन्दर तालाब था। पहाड़ी से गिरनेवाले कई झरनें के सगम पर बना था। तालाब का गहरा भाग १५ वर्ग गज़ था। इसके तीन ओर ढलुआ था और लाल पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हुई थी। चौथा किनारा खड़ा बना था और यहीं पानी सबसे अधिक गहरा था। स्थल बडा रमणीक था। फूल और फलवाले हरे हरे वृक्षों से वह आवृत था। तालाब से कुछ गज़ों की दूरी पर हिन्दुओं के ऊँचे ऊँचे मन्दिर उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे। हम लोगों के यहाँ आने पर मेरे दोनों भाई और दूसरे लड़के चौथे किनारे की ऊँची दीवार से पानी मे कूद पड़े और एक ओर से दूसरी ओर को तैर गये। वे बड़े खुश खुश मालूम हो रहे थे। उनके साथ तैरने की मुझे बड़ी इच्छा हुई। मेरी आकृति से मेरे मन का भाव समझकर उन्होंने मुझसे साथ तैरने को कहा। मैंने कहा कि मै तैरना नहीं जानता। उन्होंने कहा कि हम तुम्हे अपने हाथों पर साधकर तैरना सिखला देंगे। मै प्रसन्नता से राज़ी हो गया और कपड़े उतारकर पानी में घुस गया। मेरे भाई मुझे दो या एक बार इस किनारे से उस किनारे तक अपने साथ तैराकर ले गये। इसके बाद एक बार उन्होंने मुझे बीच मे मेरे भाग्य पर छोड़ दिया। मै नीचे चला गया और एक या दो बार उचककर और अन्त मे, यदि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा होती तो,

फिर कभी न उचकने के लिए नीचे बैठ गया। मेरे भाई और सब लडके (जैसा कि बाद को मुझसे बताया गया) भाग गये। भाई तो मुझे पानी के भीतर से निकालने को किसी को बुला लाने के बहाने से भागे थे। उन्होंने सोचा होगा कि उनके लौटने तक मै समाप्त हो जाऊँगा। मै नही जानता कि कितनी देर के बाद मै पानी से निकाला गया। जब मुझे होश हुआ तब मैने अपने को एक पेड से लटकता हुआ पाया। मेरे मुँह, नाक और आँखो से पानी बह रहा था, आँखे खोलने पर मैने अपने पास एक ब्राह्मण को खडा देखा। वह मुझे इधर से उधर घुमा रहा था। जब वह रस्सी, जिससे मै डाल से लटक रहा था, कस गई तब मैने बोलने का प्रयत्न किया, पर बोल नही सका। मैने हाथ के इशारे से उस ब्राह्मण से रस्सी खोल देने की प्रार्थना की। उस भले आदमी ने मुझे तत्काल खोल दिया। इसके बाद उसने मुझे अपने दाहने हाथ पर बिठाया और खड़ा होकर लट्टू की तरह घूम गया। यहाँ तक कि मुझे लिये हुए वह थककर गिर पडा। थोडी देर मे सँभलकर मै उठ बैठा, परन्तु बड़े जोर की कै हुई, जिससे उसके कपडे खराब हो गये। मेरे मुँह से एक घण्टा तक पानी निकलता रहा। इस बीच मे उस नेक ब्राह्मण ने तालाब मे कपडे धोये, स्नान किया और अपने को पवित्र किया। मेरे पास आकर वह कुछ दूर पर खडा हो गया और संस्कृत मे अपनी प्रार्थना करने लगा। वह लगातार मुझे दया की दृष्टि से देखता रहा। उसने मुझसे पूछा, कैसी तबीयत है। मैने कहा, करीब करीब बहुत चङ्गा हो गया हूँ। अब मैने उसको आदर से सलाम किया और उसका नाम पूछा। उसने कहा—मेरा नाम राजाराम है। सामने के मन्दिर का प्रधान पुजारी हूँ। मन्दिर के भीतर से मै तुमको बराबर देख रहा था। जब लडके तुमको पानी मे डूब जाने को

छोड़ कर भाग गये तब मेरे देवता महादेव ने तुमको निकालने के लिए मुझे प्रेरित किया। उस पवित्र आज्ञा का पालन कर मैंने तुम्हारी जान बचाई है। इसके बाद उसने मुझसे कहा कि उस देवता को, जिसकी बदौलत जान वापस मिली है, साष्टाङ्ग प्रणाम करो। अपनी परिस्थिति के अनुसार उसकी आज्ञा का मैं उल्लंघन नही कर सकता था, अतएव मैने ज़मीन को सिर से स्पर्श कर उस पत्थर को प्रणाम किया; परन्तु उसके साथ ही मन मे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ध्यान किया।

पूजा के उस सुन्दर माध्यम के प्रति मैंने अपने बनावटी अभिवादन को मुश्किल से समाप्त कर पाया था कि उस ब्राह्मण ने उन लडकों की ओर संकेत किया जो मुझे पानी से बाहर निकालने के लिए काँटे और रस्से लिये हुए आ रहे थे। मेरे भाइयों ने दौड़कर मुझे गले से लगा लिया। उन्होंने मेरे शरीर का कीचड और गर्द धोई, कपड़े पहनने मे मेरी मदद की और झूठे आँसू बहाये। उन्होंने मुझसे कहा—उन्हे इस बात का दुःख है कि मै उनके हाथों से सरक गया और यदि वे इस साज-सामान से मुझको तालाब के बाहर निकालने में न सफल होते तो मेरे लिए वे स्वय डूब मरते। वह ब्राह्मण उनकी यह कल्पित कहानी बहुत ही शान्ति के साथ सुनता रहा और उनका धोना तथा कपडे पहनाना आदि देखता रहा। यह सब हो जाने पर उन्होंने मुझसे अपने साथ चलने को कहा। मै उठ खडा हुआ और उस ब्राह्मण को सलाम किया। जब मै चलने को हुआ तब उसने क्रोध के स्वर मे मेरे भाइयों से कहा—यह लडका बिना मेरे साथ गये यहाँ से नही जायगा। तुम उसे दूसरे कुएँ मे डाल आने को अपने साथ नही ले जाने पाओगे।

मेरे भाइयों ने इस बात पर यह कहकर बहस करनी चाही कि मैं उनका भाई हूँ। परन्तु उस ब्राह्मण ने पड़ोस के बागवानों

को मदद के लिए बुलाने, उन्हे मेरे साथ राजा के मंत्री के पास भेजने और उससे उनके सारे दुष्ट व्यवहार की रिपोर्ट करने की धमकी दी। यह सुनकर डर के मारे उनकी बुद्धि हवा हो गई और वे उसके पैरो पर गिर पडे और उक्त मन्दिर के देवता के नाम पर माफी माँगने लगे। उन्होने उसे कुछ रुपये नजर किये और इस बात का भेद न खुलने देने का उससे वचन ले लिया।

मुझे भी यह व्यवस्था अच्छी लगी। मुझे डर लगा कि इस भेद के खुलने से मुझ पर बडी मार पडेगी। उस ब्राह्मण ने मुझे उनको सौंपने के सिवा उनकी और सब बाते मान लीं। उसने उनसे कहा कि दुनिया की किसी भी वस्तु के बदले मे वह मुझे उनको नहीं देगा।

इस प्रकार परस्पर वचनबद्ध हो जाने पर मेरे भाई वहाँ से चले गये। राजाराम मुझे मन्दिर के पिछवाड़े ले गया और एक वृक्ष की सघन छाया के नीचे घास के कुछ पूरे बिछा दिये और मुझसे उनपर सो जाने को कहा।

मुझे याद है कि उस दिन की मेरी नीद बहुत गहरी थी, और आज तक वैसी ताजा करनेवाली नींद सोने को नहीं मिली। जब उस ब्राह्मण ने जगाया तब मै उठा। उस समय रात का अँधेरा हो गया था। मेरे कपडे और घास का बिस्तरा सब उस नमी से, जो आराम करते समय मेरी देह से निकली थी, तर हो गये थे। मेरा सिर भारी हो गया था, शरीर के अंग ठिठुर गये थे और मस्तिष्क की शक्ति कुन्द पड गई थी। उस ब्राह्मण ने मेरे हाथ और मुँह धुलवाये, फिर उसने पूछा कि मै कहाँ रहता हूँ। मैंने उसे अपने मामा का और मुहल्ले का नाम बतला दिया। मामा का नाम लेते समय एकाएक मैं जोर से रो पडा। तब उस ब्राह्मण ने मेरा हाथ पकड लिया और जिस ओर को मैंने बताया, वह उधर मुझे ले चला। उसने मुझसे

मेरे बाप के बाबत पूछा—मैंने कहा कि उनको मरे बहुत दिन हो गये। राह मे उसने मुझसे मेरे मतबे, मेरी जीविका और सम्बन्धियो आदि के सम्बन्ध मे कई प्रश्न पूछे। यथासम्भव मैंन उससे सब कुछ बतला दिया। मेरी दुरवस्था पर उस बेचारे को बड़ी दया आई। उसने मुझे दो रुपये दिये और कहा कि न तो अब कभी तालाब मे नहाने जाना, और न अपने भाइयों का कभी विश्वास करना।

मेरे घर के प्रवेश-द्वार पर वह मुझे छोड़कर चला गया। मेरी मा, मामा तथा दूसरों ने मुझे बडी प्रसन्नता से लिया। वे लोग मेरे लिए बड़े चिन्तित थे। मेरे मामा जी मेरी खोज करने को जा रहे थे। मुझसे मेरे इतनी देर तक न आने का कारण पूछा गया। मैंने कह दिया कि तबीयत ख़राब हो गई थी। इसके बाद भोजन करके मै सो गया।

पाँच या छः दिन के बाद मेरे मामा जी को कुछ लड़कों से उस घटना की सूचना मिली। उन्होंने सारा हाल मेरी मा को बतलाया। इस बार मेरे सभी कुटुम्बियों ने तिरस्कार करने के स्थान मे मुझसे सहानुभूति दिखलाई। राजाराम बुलाया गया और सब ने उसे धन्यवाद दिया। मेरी नेक मा आँखों मे आँसू भरे हुए उसके सामने आकर खडी हो गई। उसने मुसलमान स्त्रियों के सदाचार-सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा करके अपने एकमात्र पुत्र की जान बचाने के लिए राजाराम को धन्यवाद दिया और दस रुपये नक़द और एक जोडी कंगन उपहार मे दिये। उसने राजाराम से कहा कि उसके पास इस समय जो कुछ है, इतना ही है और यदि उसके पास दस लाख रुपये होते तो वह सब उसे दे देती और तब भी यही समझती कि उसने जो काम किया है उसके आगे वह सब रक़म कुछ भी नहीं है। उस ग़रीब किन्तु ईमानदार ब्राह्मण ने कहा कि उसका

इनाम अकेला वह कार्य ही है और वह उस बेचारी स्त्री का धन किसी तरह नहीं लेगा। उसने मेरी मा को प्रसन्न करने के लिए केवल एक रुपया ले लिया।

इस घटना के बाद से मै सिवा स्कूल के कही नहीं जाने पाता था। परन्तु आपदा कभी अकेले नही आती। दो महीने के बाद मुझको पेचिश हो गई। इस रोग से मै कोई सात महीने तक पीडित रहा। सूखकर काँटा हो गया था। सब तरह की दवाइयाँ की गई, पर सब व्यर्थ हुई। मुझे सिर्फ दाल-चावल खाने को मिलता था। सभी लोग निराश हो गये थे। वह बेचारा ब्राह्मण मुझे देखने अक्सर आता था। मेरे सामने वह मुझे दिलासा देता, पर मुँह फेरते ही वह मेरी गरीबी और असाध्य रोग पर आँसू बहाता।

मोहर्रम का महीना आने पर शहर मे कोई दस दिन तक एक प्रकार का मेला रहा। बिना किसी के सहारे के मै चल नहीं सकता था। अतएव मैने अपने मामाजी से घर के दरवाजे तक पहुँचा देने को कहा। वे मुझे वहाँ एक तिपाई पर बिठाकर लौट आये। लोगों का आना-जाना और उनका हथियारो से खेल करना देखकर मुझे उनकी स्वस्थ अवस्था से ईर्ष्या हुई। यह सोचकर मुझे दुःख हुआ कि अब मै यहाँ कुछ ही दिनो का मेहमान हूँ। मै निराश हो गया।

दरवाजे पर से मेरा ध्यान रोटीवाले की दूकान की ओर गया। वहाँ कई तरह की रोटियाँ और मास की चीजे सजी हुई रक्खी थीं। मुझको उनके खाने की बडी इच्छा हुई। कुछ मास खरीदने के लिए मैने मामाजी से पैसे माँगे। मामाजी ने कहा—मास काबिज होता है, पेचिश के रोगी के लिए जहर है। मुझे यह उपदेश अच्छा नहीं लगा। पर उपाय ही क्या था? दूसरे दिन मैंने मा के सन्दूक मे कुछ पैसे चुरा लिये। संध्या

होने पर मैं अपने डण्डे के सहारे दरवाज़े पर गया। वहाँ बैठकर मैंने दूकानवाले को पैसे दे दिये और अपनी इच्छा के अनुसार उससे मांस मँगा लिया और एक गुप्त स्थान मे जाकर मैंने पेट भर खाया। मेरी समझ में वह आधा सेर रहा होगा। इसके बाद मैं बिस्तर पर जाकर पड़ रहा। अपने नेक सलाह देनेवालों की शिक्षा से यह नतीजा निकाला कि नींद के समय मांस का विष अपना पूरा प्रभाव मुझ पर डालेगा और तब मैं पेचिश या दूसरे कष्ट का भोग करने के लिए कभी नही उठूँगा। परन्तु दूसरे दिन मैंने अपने को बिलकुल चंगा पाया। यह देखकर मुझे और मेरे कुटुम्बियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस विष का उल्टा ही असर हुआ। मैं दिन प्रति दिन सँभलने लगा और लगभग दो महीने में मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया। केवल मेरा पेट पहले जैसा ही फूला रहा। अलबत्ता उसमे किसी तरह का दर्द नही होता था। उस शिकायत को दूर करने के लिए मेरे कुछ सलाहकारों ने मुझसे हुक्का पीने को कहा। मैंने उनकी बात तुरन्त मान ली और आशानुसार धीरे-धीरे वह शिकायत भी दूर होने लगी। मै बिलकुल नीरोग हो गया, पर हुक्क़ा पीने की मुझे बुरी लत लग गई। इस समय मै आठ वर्ष का था।

———

दूसरा अध्याय

हम लोगो की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। जो कुछ हम लोगो के पास था, सब बिक गया था, और कभी-कभी सारे परिवार को उपवास करना पडता था। सारी स्त्रियाँ सवेरे से लेकर आधी रात तक सिलाई का काम करतीं या चरखा कातती थीं। मेरे मामा जी भिन्न भिन्न पुस्तकों की नकले किया करते थे और मै सारा दिन पढ़-पढ़कर उनको लिखवाता रहता था। परन्तु हम लोगों के परिश्रम की जो उजरत मिलती थी वह गुजर-बसर के लिए पूरी न पड़ती थी। अन्त मे मेरे मामा जी ने ऊबकर बडौदा जाने का निश्चय किया। वहाँ उनके और मेरे स्वर्गीय पिता के कई धनवान् शिष्य रहते थे। हम लोगों को विश्वास था कि उन लोगो के पास जाने से कुछ समय के लिए हमारे अभावो की कठिनाई तो दूर ही हो जायगी।

यात्रा का निश्चय हो जाने पर मेरे मामाजी, मा और मैने अफीम की गाडियों के पहले काफिले के साथ जाने की आवश्यक तैयारी की। हमने कुटुम्ब के सब लोगों से आज्ञा ली और अपने कस्बे से रवाना हुए। गाड़ीवालो ने हम लोगों को बड़े आदर से लिया। वे सब मुसलमान तेली थे। उन्होंने हम लोगों की नियमपूर्वक पूजा की। वे हम लोगो के साथ पाँचों समय नमाज पढते थे। उन्होंने गाड़ियों मे हम लोगों के लिए आराम की जगह कर दी थी। जो कुछ खाते थे उससे अच्छा खाना हमें खाने को देते थे और धूप तथा ओस से हमारी रक्षा करते थे। यह मेरी पहली यात्रा थी।

हम लोगों ने १३-१४ मील प्रतिदिन के हिसाब से आराम के साथ यात्रा की। २१ दिन मे हम बड़ौदा पहुँचे। हमारे शिष्यों ने हमे बडे आदर से लिया। पाँच दिन के बाद मुझे और मेरे मामाजी को जंगल के बुख़ार ने आ दबाया। मै तो कुछ ही दिनों मे अच्छा हो गया, पर उनको बुखार के बाद पेचिश हो गई। वे बहुत दुर्बल हो गये। अतएव हम लोगों ने घर लौटने का निश्चय किया। लगभग तीन सौ रुपये हमें हमारे शिष्यों ने दिये। अब गाड़ियों के दूसरे काफिले की प्रतीक्षा की जाने लगी।

बडौदा ही पहला नगर था, जिसे पहले-पहल मैंने देखा था। मेरा ग़रीब कस्बा उसके बारहवे हिस्से के भी बराबर न रहा होगा। भीतरी नगर ढाई मील लम्बी और सोलह से बीस फुट ऊँची दीवार से घिरा हुआ था। परन्तु इसके बाहर का अंश नाम-मात्र की ही दीवार से घिरा हुआ था। नगर के मध्य भाग मे माँडवी नाम की एक इमारत थी। इसमें कोई सौ दूकानें रही होंगी। उस समय बडौदा का शासन-सूत्र आनन्दराव गायकवाड़ के हाथों मे था। ये पितलाजी की छठा पीढ़ी मे थे। इनके बाद इनके भाई सयाजीराव गद्दी पर बैठे। सयाजी के आठ लड़के और कई लडकियाँ थी। जेठा लड़का गणपतराव अपने पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा।

बडौदा के अधिवासियों मे मैंने पहले-पहल दो जातियों के लोगों को आश्चर्य से देखा था। वे अँगरेज़ और पारसी थे। एक दिन सवेरे मै शहर मे घूम रहा था। मैंने चार आदमी देखे। दो घोड़ों पर सवार थे और दो उनके साथ-साथ पैदल चल रहे थे। वे आपस मे बातचीत कर रहे थे। उनकी बोली मुझे रूखी और जगली जान पड़ी। वे चुस्त पोशाक पहने हुए थे, परन्तु उनका ऐसा कोई अंग नही देख पड़ता था जिससे

उनका पहनावा वेशरमी का समझा जाता। मुझे उनसे बातचीत करने की इच्छा हुई। परन्तु एक विदेशी नगर में मुझ जैसी उम्र के लड़के के लिए यह साहस का काम था। तथापि अभिवादन के चिह्न-स्वरूप मैंने अपना हाथ उठाया। उन्होंने बड़ी विनम्रता से बदले में अभिवादन किया।

कुछ ही दिनों में खाली गाड़ियों का एक काफिला मेरे देश में अफीम खरीदने के लिए फिर जाने को तैयार हुआ। इनमें कुछ गाड़ीवाले पहले के ही थे, जो हमें बड़ौदा लाये थे। ये सब हमें अपने साथ ले जाने को तैयार हो गये। हमारे चेले हमें दो-तीन मील तक पहुँचाने आये। जब उन लोगों ने अन्तिम बार हम लोगों का आदरपूर्वक अभिनन्दन किया तब हमने आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया। अब हम लोग आगे बढ़े। हम लोग धीरे धीरे यात्रा कर रहे थे, तथापि बराबर यात्रा करते रहने से हम लोग शीघ्र ही घर पहुँच गये। मेरे मामाजी की तबीयत मार्ग में बिना दवा-दारू के ही ठीक हो गई। हमने यह निश्चय किया कि जंगल के जिस जल-वायु ने उन्हें रुग्ण कर दिया था वही दूसरे समय उनको नीरोग करने की दवा हो गई।

हमारी यात्रा कुशलपूर्वक समाप्त हुई और हमने आकर अपने दयालु सम्बन्धियों से भेंट की। मुझे अपनी बूढ़ी प्यारी नानी और दूसरे लोगों से मिलने से जो प्रसन्नता हुई थी उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। घटना-चक्र के इस संसार में जुदाई के बाद अपने मित्रों से मिलने पर जो प्रसन्नता होती है उसकी बराबरी कोई प्रसन्नता नहीं कर सकती। कुछ समय तक हम लोग सुख-पूर्वक घर में रहे। परिवार में अब मेरी कुछ वकत होने लगी। यात्रा से मेरा अनुभव कुछ बढ़ गया था और मैं अपने पढ़ने-लिखने के काम में लगा रहता था।

मेरे जीवन का मानो पलक मारते ही एक दूसरा वर्ष भी बीत गया। इस साल उल्लेख-योग्य कोई बात नहीं हुई। केवल एक पुरानी यहूदी रस्म की गई, जिसका पालन दिल्ली के शाही घराने को छोडकर और सब मुसलमान नियमपूर्वक करते है। इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ और एक महीने से भी अधिक समय तक मैं चारपाई पर पडा रहा। मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि मुसलमान लोग इस कष्टप्रद और कभी कभी घातक रीति का इतनी कड़ाई से क्यों पालन करते है जब पवित्र कुरान इस विषय पर बिलकुल चुप है। उसने तो इस रीति का पालन करना हमारे लिए लाजिमी नहीं किया है। अधिकांश मुसलमान क़ुरान-द्वारा निर्दिष्ट अनेक कड़े आदेशों की आम तौर से उपेक्षा करते है। उदाहरण के लिए दिन मे पाँच बार प्रार्थना करना, साल मे तीस दिन का उपवास करना, साल मे अपनी सम्पत्ति का चालीसवॉ भाग दान मे दे देना, यदि हो सके तो जीवन मे एक बार मक्का की यात्रा करना आदि है। मुसलमानों के लिए नशीली चीजों का व्यवहार और सूद लेना या देना वर्जित है। यह देखकर मुझे दुख होता है कि इस समय के मुसलमान इन तथा ऐसी अन्य अनेक धार्मिक बातों के पालन मे ढिलाई से काम लेते हैं, अस्तु।

कुछ ही महीनों मे हमारी पूँजी फिर समाप्त हो गई। इस बार मेरे मामाजी प्राचीन नगर उज्जैन को चले। बेचने के लिए उन्होंने कुछ हस्तलिखित पुस्तके अपने साथ ले ली और मेरी मा और मुझको आग्रहपूर्वक अपने साथ ले लिया। हमने भाड़े से एक गाडी ले ली। चार-पॉच मील प्रतिदिन के हिसाब से यात्रा करते थे। जिस गाँव मे मुसलमान होते थे, ठहरते हुए जाते थे। वहां हम पवित्र आदेशों और निषेधों का प्रचार करते थे। बदले मे लोग हमारा बड़ा आदर-सत्कार करते थे। अन्त

मे हम उज्जैन पहुँच गये। नगर के बाहर आस-पास का दृश्य बडा सुन्दर था। शिप्रा नदी के तट पर स्थित हरे हरे वृक्षों के कुञ्जों के ऊपर से प्राचीन हिन्दू-मन्दिरों के शिखर और मस्जिदों की मीनारे बहुत मनोरम दृश्य उपस्थित कर रही थी। हमने नगर मे प्रवेश किया और अपने मामा जी के एक पुराने मित्र के यहाँ जाकर ठहरे।

उज्जैन मुझे बहुत अच्छा लगा। पूछने पर मालूम हुआ कि हिन्दुओं के पुराणो के अनुसार यह नगर एक जमाने से स्थित है। हिन्दू लोग इसका बहुत सम्मान करते है। क्योकि राजा कर्ण, भर्तृहरि और अत्यन्त प्रसिद्ध विक्रम ने यहाँ राज्य किया था। सन १२२९ मे मुसलमानो ने पहले-पहल इसे जीता था। मुहम्मद शाह के निर्बल शासन-काल मे इस पर मरहठों का अधिकार हो गया। तब से इस पर सेधिया-घराने का शासन है। सन् १८१० मे इसकी जन-संख्या १,२०,००० थी।

हमारे इस नगर मे आने के कुछ ही दिनो के भीतर मेरी मा के पास दूसरी शादी कर लेने के लिए कई सन्देश आये। कुछ को मेरे मामा ने भी पसन्द किया। उन्होने देखा कि यद्यपि उनकी बहन की उम्र २७ वर्ष की हो गई है, तो भी वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर है। उन्होने उससे गम्भीरता के साथ कहना शुरू किया कि केवल नाम के लिए अपने को अविवाहित रखना अपने धर्म के विरुद्ध है, इसके सिवा प्रकृति पर प्रतिबन्ध लगाना निरी मूर्खता और तरस खाने की बात है, क्योकि इसके प्रयत्न में अनेक पवित्र लोग स्वभावतः घृणित अपराधों के शिकार हो गये हैं। इसका मेरी मा ने बडा क्रोध-पूर्ण उत्तर दिया। उसने कहा—मैं जानती हूँ कि मैं और मेरा लडका तुम्हारे लिए भार-स्वरूप हो रहे है। भविष्य मे अलग रहकर मै अपनी मेहनत-मजदूरी से अपना निर्वाह करने का प्रबन्ध करूँगी। रही बात

अपने स्वाधीन जीवन की अवस्था मे दूसरा परिवर्तन करने की; सो मैं नरक तो चली जाऊँगी, पर ऐसी मूर्खता फिर न करूँगी। मेरे मामा ने उसे शान्त किया और मनुष्य के जीवन की अनेक बातें समझाईं, साथ ही यह भी कहा कि तुम लोगों से मुझे बडी सहायता मिलती है, तुम भार-स्वरूप नही हो, इसके सिवा तुम्हारी भलाई और प्रसन्नता मे मेरी भी प्रसन्नता है।

अपने भाई की सलाह मानकर मेरी नेक मा ने एक व्यक्ति के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और एक सैनिक से, जो महाराज दौलतराव सेंधिया की मा मैनाबाई के यहाँ एक ऊँचे पद पर नियुक्त था, उसका विवाह हो गया। वह चालीस वर्ष के ऊपर का एक बडा अनुभवी व्यक्ति था। मैनाबाई अपना सारा कार्य—सार्वजनिक और खानगी—उसी के सिपुर्द किये थी। उन मा-बेटे मे जो वैमनस्य था उसका कारण, जैसा कि मुझे मालूम हुआ, इसी व्यक्ति की बुरी सलाह थी। वह बड़े डील-डौल का लम्बा आदमी था, उसका रंग काला और मन तो काफिर के हृदय से भी अधिक काला था। वह पढ़ा-लिखा भी नही था, और सांसारिक बातो मे निरन्तर लिप्त रहता था। कुछ समय तक मुझे यह विवाह अच्छा नही लगा, परन्तु उसके अपनी पहली स्त्री से कोई सन्तान नही थी, अतएव वह मुझको ही अपना पुत्र समझने लगा। उसने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि घोडे की सवारी और हथियारो का उपयोग वे मुझे सिखला दें। दो नौकर मेरे साथ रहते और सवेरे मैं नगर के रईसों के दरबारों मे आता-जाता। सन्ध्या-समय अपनी अच्छी पोशाक पहनकर, कदाचित् मिथ्या अभिमान के कारण, लोगों को दिखलाने के लिए निकलता। इस तरह दो महीने व्यतीत हुए। इसके बाद वह वृद्धा मैनाबाई, जिसकी संरक्षा मे हम लोग थे, दिवंगत हो गई। अब उसका वह मन्त्री अपनी रक्षा के लिए

काँपने लगा, क्योंकि दरबार मे उसकी किसी से नही बनती थी और सेविया भी उससे अप्रसन्न रहते थे।

उस वृद्धा राजमाता की मृत्यु के दस दिन बाद एक दिन सवेरे चार बजे तडके हथियारबन्द सैनिकों ने आकर हमारा घर घेर लिया। आते ही उन्होंने एक बाढ दाग दी, जिससे हम लोग बहुत ही घबरा गये। मेरे सौतेले बाप के भय की तो कोई सीमा ही न थी। घर के दरवाजों के बहुत मज़बूत होने से उनपर सैनिकों के आक्रमण का कोई प्रभाव नही पडा। परन्तु घर के लोगों पर उसका काफी प्रभाव पडा। अपने को किसी तरह सँभालकर बेचारे गृहस्वामी ने अपने हाथ-पैर धोये और अपनी ईश-वन्दना प्रारम्भ की। मृत्यु को पास आई देखकर मेरी मा अपनी लौंडियों और नौकरों के सहित मूर्छित हो गई। अब रहा मै, सो मै दृढ़ बना रहा। मुझे विश्वास था कि मै नहीं मारा जाऊँगा, मुझे अपनी निर्दोपिता का भरोसा था। और यदि इतने पर भी वे मुझे मार ही डालेगे तो मै शहीद की मृत्यु मरूँगा, जिससे मै स्वर्ग को जाऊँगा। इसी बीच मे आँगन का दरवाजा तोड डाला गया और वे बदमाश भीतर घुस आये। इस समय सूर्य निकल रहा था और उसकी प्रकाश-पूर्ण किरणे ससार पर फैलने लगी थी। अब मुझसे घर के भीतर नहीं रहा गया और मै उन नवागन्तुको के सामने जा उपस्थित हुआ। मैने देखा कि वे लोग लूट-खसोट मे लगे हुए है। घोड़े, गाडी, पालकी आदि उन्होंने पहले ही वहाँ से हटा दिये थे। कुछ ही मिनटों मे उन्होंने बाहर के कमरों को बिलकुल साफ कर दिया था, परन्तु घर के भीतर घुसने का उन्हे साहस नही हुआ—कानून और प्रथा उनके मार्ग मे बाधक थे। उनमे से एक ने मुझे दूर से देख लिया। उसने एक साथी से मराठी मे चिल्लाकर कहा—इस बदमाश लडके को

पकड़ लो। उसने फिर दूसरे से पुकारकर कहा—जल्दी करो और उसे खम्भे से बाँध दो, कुछ दण्ड दो। उसका चीत्कार सुनकर सूबेदार तुरन्त बाहर निकल आयेगा। तब हम उसे पकड़ लेंगे। यह सुनकर मै बेधड़क सेनानायक के पास चला गया। वह मुझे पहले से जानता था और मुझसे अक्सर उसने बातचीत और हँसी-दिल्लगी की थी। उसकी ओर जाते हुए मैंने सैनिकों को सावधान करते हुए कहा—मुझे छूना मत। अगर तुम मुझे चाहते हो तो मै तोपदम किये जाने को तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ। रही कष्ट देने की बात, सो मैं उसकी परवा नही करता। मै शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं साँस तक नहीं लूँगा, चाहे तुम चिमटी से मेरी देह का मांस ही क्यों न नोचो। परन्तु यदि तुम मेरे साथ न्याय का व्यवहार करोगे तो वृद्ध सूबेदार और उसकी सारी सम्पत्ति को बाहर निकलवा देना मेरे हाथ की बात है। मेरा कथन सुनकर सेनानायक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सिपाहियों से कहा—उसे मत छूना। वह बहादुर लड़का है। उसे मेरे पास आने दो। वह मेरा मित्र है। इस गन्दे मामले से उसका कोई सम्बन्ध नही है। इस प्रोत्साहन से मेरा साहस और भी बढ़ गया। मैंने उसकी इस कृपा के लिए उसे धन्यवाद दिया। वह मुझसे बहुत ख़ुश हुआ और मुझे अपने पास बिठा लिया। उसने मुझसे कहा—राज्य के मन्त्री ने मुझे यह अप्रिय कार्य करने के लिए नियुक्त किया है। उसकी आज्ञा है कि घर के मरदाने भाग का सारा माल ज़ब्त कर लिया जाय और ग्वालियर से महराज की दूसरी आज्ञा के आने तक सूबेदार कड़ी निगरानी मे रक्खा जाय। परन्तु यदि वह बुड्ढा आत्म-समर्पण न करे या किसी प्रकार का विरोध करे तो नङ्गी तलवारें लेकर घर मे घुसकर सारा माल-असबाब ज़ब्त कर

वह गिरफ़्तार कर लिया जाय। मैने कहा कि मै अपने सौतेले बाप के पास जाकर इस आज्ञा की सूचना दूगा और आत्म-समर्पण करने के लिए उस पर अपना दवाव डलूगा। यदि मैं अपने प्रयत्न मे विफल होऊँगा तो फिर आप अपनी इच्छा के अनुमार सरकारी आज्ञा का पालन कीजिएगा। सेनानायक मेरे प्रस्ताव पर राजी हो गया। मैने उस वृद्ध के पास लौटकर कहा—स्वय आपके लिए और आपके कुटुम्ब के लिए यह करना श्रेयस्कर होगा कि आप आत्मसमर्पण कर दे और अपने हाथों अपने पैरो मे कुल्हाडी न मारे। उस वृद्ध ने मेरी बात धैर्य से सुनी। इसके बाद मुझे छाती से लगाकर उसने मेरा माथा चूमा और आँखो मे आँसू भरकर कहा—यदि वह अफसर गाय का पूछ हाथ मे लेकर और उस पर पानी छोडकर यह कहकर कि मेरे शरीर को कोई हानि न पहुँचाई जायगी, शपथ ले तो मै आत्मसमर्पण कर दूँगा, अन्यथा मै छत तोड़कर भाग जाऊँगा। उसने यह भी कहा- रही बात स्त्रियो की, सो वे अपनी रक्षा का उपाय जैसा चाहे करे। इस कायरता के सन्देश को लेकर मै लौटा। मैने उसको इस कायरता के लिए धिक्कारा। उसके सैनिक रङ्ग ढङ्ग को देखकर मैंने समझा था कि वह बहादुर होगा। परन्तु इस मौके पर मैने उसे गीदड़ से भी गया-बीता पाया।

उक्त अफसर के पास जाकर मैंने कहा—सूबेदार साहब अस्त्रो से सज्जित है। उनका कडाबीन मुँह तक भरा हुआ है। उसका घोडा थामे वे तैयार बैठे हैं। आपके जवानो ने घर मे घुसने की चेष्टा की नहीं कि उन्होंने उसे दागा। वे प्राणों के रहते तक आत्म रक्षा करने का दृढ सकल्प कर चुके है। वे अपनी स्त्रियों को मारकर मार-काट करते निकलेगे। इस प्रकार आप अपने सामने कई ख़ून होते देखेगे और इनका पाप हम नहीं जानते

कि किसके सिर जायगा। इसके सिवा आपके ये सिपाही भी जाखिम से बाहर नही हैं। कौन जाने, कड़ाबीन की गोलियों का कौन शिकार होगा। यह सब होने पर ही सूबेदार साहब जीवित या मृतक आपके हाथ आ सकेंगे। मैंने फिर कहा—परन्तु एक बात है। यदि आप गाय की पूछ हाथ मे लेकर इस बात की शपथ करे कि उनके साथ ऐसा विश्वासघात नही होगा कि उनको अपनी जान से हाथ धोना पड़े तो वे आत्मसमर्पण कर देगे।

उस अफसर ने मेरे प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया। एक ब्राह्मण और एक गाय शीघ्र ही लाये गये। ब्राह्मण ने गाय की पूँछ उस अफसर के हाथ मे रखकर और उस पर पानी डालकर सस्कृत मे कुछ कहा, जिसे सुनकर वह बूढ़ा अफसर काँप गया। सूबेदार साहब छेद से यह सब देख रहे थे। वे तुरन्त नीचे उतर आये। अफसर के दल के लोगों ने उन्हे चारों ओर से घेर लिया। उक्त अफसर ने उन्हे अपनी आज्ञा पढ़कर सुना दी और हथियार रख देने को कहा। उन्होंने अपने हथियार कुछ हिचक के साथ दे दिये। अन्त मे उन्होंने अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। सन्ध्या-समय उन्होंने उस अफसर को घूँस मे पाँच सौ रुपये की एक थैली दी, जिससे वह और उसके आदमी हम लोगों के ग़ुलाम हो गये। कहाँ हम लोग उनके क़ैदी थे, कहाँ वे अब हमारे ही क़ैदी हो गये।

इस नज़रबन्दी मे हमारे दो महीने बड़ी मुश्किल से कटे। बेचारे सूबेदार साहब दिन मे तो अपने ज़नाने के दरवाज़े पर बैठे रहते। पर रात मे दो आदमी सदा उनके पलँग के पास नियुक्त रहते। अगर वे टहलने लगते तो वे दोनों भी उनके साथ कुहनी से कुहनी मिलाये टहलते रहते। पर मै स्वतंत्र था। मैं घर के भीतर आता-जाता और बाहर जहाँ चाहता, चला जाता।

मुझ पर कोई रोक-टोक नही थी। आखिर को ग्वालियर से हम लोगो को छोड देने का आदेश आ गया, जिसका ठीक-ठीक पालन किया गया। वृद्ध सूबेदार को दरबार मे एक खिलत दी गई। बेचारे वृद्ध को दिलासा देने के लिए मन्त्री ने दरबार मे ऊँची मराठी मे एक लम्बा भाषण किया। यह सब सूबेदार ने बडे उदास भाव से स्वीकार किया। जाने की अनुमति मिलने के समय उन्होंने अपनी उस जड और जगम सम्पत्ति के लौटाने की बात कही जिसे सरकारी नौकरों ने जब्त कर लिया था। इसके उत्तर मे उस मन्त्री ने कहा—आदेश-पत्र मे इस बात का उल्लेख नही है। यदि होता तो हम वह सब बडी खुशी से लौटा ही न देते, किन्तु अपनी ओर से भी उसमे कुछ मिला देते।

तीसरा अध्याय

इस कैद के बाद वृद्ध सूबेदार भाग्य को दोप देकर चुप हो गये। वे कहते, कुछ तो भाग्य के दोप से ऐसा हुआ और कुछ ख़राब दिन पर बाल बनवाने से। सारे भारत मे सब जातियों मे जो मिथ्या-विश्वास की बातें फैली हुई है, उनको मुसलमान भी मानते है।

एक दिन सूबेदार साहब ने ग्वालियर जाकर महाराज दौलतराव सेंधिया से फरियाद करने का विचार किया। शुभ मुहूर्त मे हम सेंधिया के घराने के एक सरदार के साथ उज्जैन से चले। उज्जैन मे रहनेवाले अपने घर के लोगों से मिलकर वह सरदार ग्वालियर जा रहा था। अपना काम बना लेने में मेरा सौतेला बाप सिद्धहस्त था। उसने उस सरदार को शीघ्र ही इतना .खुश कर लिया कि यात्रा मे ही वे दोनों घनिष्ठ मित्र हो गये।

लगभग एक महीने मे हम लोग ग्वालियर की छावनी मे पहुँचे। परन्तु यह छावनी नही, एक खासा नगर था। नगर के बीच मे महाराज का भव्य महल था। उस समय उस नगर की आबादी तीन लाख रही होगी, जिसमे एक लाख सैनिक थे। महाराज के पास दो सौ हाथी और तीन सौ तोपे थी। उस सरदार ने हम लोगो के लिए एक सुन्दर जगह बता दी। वही हमने अपने खीमे लगाये। वहाँ हम लोग दो महीने तक पड़े रहे और महत्त्व के किसी भी व्यक्ति ने हम लोगों की ओर ध्यान नही दिया। मेरे सौतेले बाप ने सरदारों और अधिकारियों से घनिष्ठता बढाने का अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया।

अन्त मे जब उसने दरबारियों मे एक हजार रुपये बाँट दिये तब उसको महाराज के समक्ष उपस्थित होने की आज्ञा मिली।

एक दिन नियत किया गया और हम लोग महाराज सेंधिया की सेवा मे उपस्थित हुए। हम लोगों को देखकर महाराज अपनी रत्नजटित बहुमूल्य मसनद पर उठ बैठे और हमारा सम्मान करने के लिए उन्होंने अपना दाहना हाथ बढा दिया। उसे अपनी अँगुलियों से आदरपूर्वक स्पर्श कर उन्हे हमने चूम लिया। महाराज की बातचीत इतनी मधुर, शिष्ट और मनोमोहक थी कि मेरा सौतेला बाप हक्का-बक्का हो गया और वह अपनी शिकायत की बाते नही कह सका। तो भी वह उनके सम्बन्ध मे कुछ सकेत कर देने से नही चूका। महाराज ने ऐसा भाव व्यक्त किया, मानो उन्हे समझा ही न हो, परन्तु उस बुड्ढे को यह कहकर दिलासा दिया कि उन्होंने उसकी पिछले महीने तक की तनख्वाह भुगता देने की आज्ञा दे दी है और वह अब अपने को दिवगत महारानी की मृत्यु के दिन से स्वय महाराज की ही सेवा मे समझे और महाराज ने स्वय पहले से ही उसे अपने कृपा-पात्र दरबारियों मे भर्ती कर लिया है। इस कथन ने उस बुड्ढे को असाधारण गर्व से भर दिया और उसका मुँह बन्द कर दिया—यहाँ तक असमर्थ कर दिया कि वह धन्यवाद देने के सिवा एक शब्द तक न कह सका और वह बराबर सलाम और अभिवादन करता रहा। इसके बाद मजलिस के एक अधिकारी के सकेत पर हमारे लिए इत्र, पान, गुलाब-जल और सरोपाव की पोशाके लाई गई।

हम लोगों के विदा होते समय महाराज ने मुस्कराते हुए मेरे सम्बन्ध मे पूछा कि यह कौन है। उस वृद्ध ने कहा—यह मेरा पुत्र है। महाराज ने कहा—नही, स्वय लडके को ही उत्तर देने दो। यह सुनकर मैने सम्मानपूर्वक हाथ जोडकर कहा—

महाराज प्रसन्न हों, सूबेदार की बात का विश्वास किया जाय, क्योंकि माता-पिता ही अपने बच्चों के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कह सकते हैं। यह उत्तर साधारण ही था, तथापि उसे सुनकर महाराज ज़ोर से हँस पड़े। उन्होंने हँसी करते हुए दूसरा प्रश्न किया—तब तुम्हारी अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में क्या सम्मति है ? मैंने उत्तर दिया—महाराज, मैं बहुत लड़का हूँ। ऐसे महत्त्व के मामलों पर सम्मति देने का अभी अधिकारी नहीं हूँ। तब महाराज ने उस वृद्ध से पूछा कि यह लिख-पढ सकता है। अपने उत्तर में उसने मेरी बड़ी प्रशंसा की। इसपर महाराज ने मुझे हाफिज़ और सादी की एक बहुत सुन्दर पुस्तक दी। ये दोनों पुस्तकें एक ही जिल्द मे थी। महाराज की स्मृति के रूप मे वह जिल्द आज भी मेरे पास मौजूद है।

अब हम लोग ग्वालियर मे रहने लगे और बहुत अच्छी दशा मे हो गये। वृद्ध सूबेदार को बहुत हल्का काम दिया गया था। सम्भवतः महीने मे तीन बार उसे महाराज के साथ शिकार में जाना पड़ता था। इसके सिवा महाराज के शयनागार के दरवाज़े पर सशस्त्र तीन घंटे तक पहरा देना पड़ता था और सो भी महीने मे केवल दो रातें उसकी बारी मे पड़ती थी। यह जगह बडी इज्जत की समझी जाती थी। श्रेष्ठ अधिकारियों और सरदारों को ही यह काम मिलता था। वे 'एक्का' कहलाते थे और अपनी योग्यता के अनुसार प्रतिदिन अपना वेतन पाते थे। कम से कम पाँच और ज़्यादा से ज़्यादा तीस रुपये तक उन्हे प्रतिदिन मिलते थे। इसके सिवा उन्हे प्रतिदिन सरकार से पका पकाया भोजन भी मिलता था। साल मे दो बार वस्त्र मिलते थे। इन एक्कों की संख्या १२३ रहती थी। मेरे सौतेले पिता को पाँच रुपये प्रतिदिन मिलते थे। परन्तु इज़्ज़त की

जगह होने से वह उससे प्रसन्न ही नहीं था, वरन उसका उसको गर्व था।

उज्जैन से हमे कई पत्र मिले। इनमे एक से यह प्रकट हुआ कि वृद्ध सूबेदार के पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस खबर से उसे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसने छावनी के सभी सरदारों को एक बडी दावत दी। इसमे उसके दो हजार रुपये खर्च हुए। परन्तु इस अवसर पर सरदारों से उसे जो भेटे मिली वे सब तीन हजार रुपये से अधिक की हो गई। इस पुत्र-जन्म से वह मुझसे स्वतन्त्र ही नही हो गया, किन्तु घृणा करने लगा और मामूली-मामूली बातों पर गाली भी देने लगा। वह मेरे प्रति अत्यन्त भद्दी भाषा का प्रयोग करता था, जिसका सहन करना मेरे लिए सम्भव नही था। वह अपना दिन का समय अपने मित्रो मे बिताया करता और उसकी राते उसके एक मित्र की स्त्री के पास बीतती। उसका यह मित्र पूरा नरपशु था।

बुड्ढा अपने काम पर कभी नही जाता था। वह मुझे अपने बदले भेजा करता था। इसके सिवा घर मे भी दूसरे नौकरो के साथ रात मे तीन घटे तक मुझसे पहरा लेता था। इस प्रकार का दुर्व्यवहार होने से मेरा मन खिन्न हो गया। मैने अपनी इस दुर्दशा का हाल अपनी मा को लिखा। उसमे यह भी लिख दिया था कि मैंने इस बुड्ढे का साथ छोड देने का निश्चय कर लिया है और यदि अपने प्रयत्न मे सफल नही होऊँगा तो आत्महत्या कर लूँगा।

दुर्भाग्य से मराठा-सरकार के पोस्ट-मास्टर के आलस्य और अव्यवस्था से मेरा वह पत्र उस वृद्ध के हाथ मे पड़ गया। एक दिन वह अपनी हुंडियों की रसीदो के बारे मे पूछताछ करने डाकघर गया। कुछ समय पहले उसने उस दफ़्तर से हुडियाँ भेजी थी। पोस्ट-मास्टर ने उससे कहा—अभी तक तो कोई

जवाब नही मिला है। परन्तु दो दिन पहले जो चिट्ठी आपने छोडी है उसे अब भेजने जा रहा हूँ। इसका उत्तर जरूर ही सब तरह की खुशखबरी लावेगा। सूबेदार ने कहा—मैंने तो कोई चिट्ठी नहीं भेजी है। वह किसी दूसरे व्यक्ति की होगी। इसपर उसने चिट्ठी निकाली और वह पहचानी गई। उस बुड्ढे के आग्रह पर पोस्ट-मास्टर ने उसे खोलकर पढ़ा। उस पत्र को लेकर बुड्ढा क्रोध से जलता हुआ घर आया।

पालकी से उतरने के बाद उसने मुझे बुलाया। मैं भीतर गया। मेरे प्रति आदर प्रकट करने के लिए वह उठकर खडा हो गया। यह देखकर मै आश्चर्य से चकित हो गया, उसके इस व्यवहार का अर्थ मेरी समझ मे नहीं आया। उसने कहा—मेरे मित्र, कृपा कर यह चिट्ठी तो पढ़ो। मैंने वह चिट्ठी उसके हाथ से ले ली। उसे अपनी ही चिट्ठी जानकर मैंने उसे खोला और सरसरी निगाह से देख गया। यद्यपि मार डाले जाने के डर से मै पीला पड़ गया, तो भी कोई बचाव न देखकर मेरे युवक हृदय ने शीघ्र ही साहस ग्रहण किया। मैंने उससे कहा—यह मेरी चिट्ठी है, मा के पास भेजने के लिए मैंने इसे पोस्ट-मास्टर को दिया था। इसको खोलने का किसी को अधिकार नहीं था। इस उत्तर से उसके क्रोध की आग और भी भडक उठी। उसने कहा—पाजी कही का। तूने अक्षम्य अपराध किया है और तिसपर इस प्रकार उद्दण्डता दिखलाता है। यह कहकर उसने अपनी जगह से झपटकर दो या तीन धौल मारकर मुझे गिरा दिया। इतने से सन्तुष्ट न होकर वह मुझे ठोकरें और घूँसे मारने लगा, यहाँ तक कि मैं बेदम हो गया। यह मुझे बाद को मालूम हुआ था। परन्तु बेहोश होकर गिर जाने से मुझे उसकी मार का कुछ भी अनुभव नहीं हुआ। जब मेरी मूर्च्छा दूर हुई तब मैंने अपने को अस्तबल मे एक चारपाई पर पड़ा

हुआ पाया। उस समय मेरे पास खुशाल नाम का साईस खडा था। मैंने पानी पीने को माँगा। उस गरीब ने अपने पास से गुलाब-जल पडा हुआ एक गिलास शर्वत मुझे पीने को दिया। मै उसमे से कुछ पी सका। मैंने देखा कि मै हिल-डुल नही सकता हूँ। मै फिर दो दिन तक गहरी नीद मे पडा सोता रहा। और मै नहीं उठा जब तक उठने को बाध्य नहीं किया गया। अब मै अपने अ गो से काम ले सकता था, यद्यपि अभी तक वे कडे थे। मैंने अपनी जिन्दगी मे, यदि हो सका तो, उस नारकी वृद्ध चाण्डाल का मुँह फिर कभी न देखने का अपने मन मे सकल्प कर लिया। अपनी दया प्रदर्शित करने के लिए उसने मुझे मिठाइयाँ तथा दूसरी स्वादिष्ट चीजे खाने को भेजी, परन्तु मैने वे सब साईसों को दे दी। और मै अपने को ताजा बनाये रखने के लिए साँझ-सवेरे उनकी सादी रोटी एक टुकडा खा लेता और ठडा पानी पीता था। इस प्रकार मैंने पन्द्रह दिन बिताये। मेरे शरीर के दर्द ने मुझे बिलकुल सुन्न कर दिया था। मेरे मन मे हजारो तरह के विचार उठते रहते थे।

इसी बीच मे पहरे की बारी आई। उस निर्दय बुड्ढे ने अपने नौकर से सदा की भाँति पहरा देने जाने के लिए मुझसे कहलाया। मैंने जवाब दिया कि मै निर्बल हूँ और पहरा देने नही जाऊँगा। यह सुनकर उसने हथियार लिये और वह महल को चला गया। इधर मैंने आगरा की राह ली। मैंने अपने साथ एक रोटी, एक धर्मग्रन्थ, महाराज की दी हुई वही हाफिजवाली पुस्तक और अपना छोटा नेजा ले लिया। मै छावनी से तडके ही निकल खडा हुआ और गोहद की राह ली, जो ग्वालियर से लगभग २२ मील दूर था। मै सडक छोडकर जङ्गल जङ्गल चला, जिससे अगर कोई मेरा पीछा करने को भेजा गया हो तो पकड न पावे। मै जितना तेज चल सकता

था, उतनी ही तेज़ी से चला। कुछ समय तक से किसी आदमी मेरी भेट नहीं हुई। जब-तब कुछ गडरियों से भेट हो जाती थी। दोपहर को मैंने एक बड़े भारी बरगद के नीचे विश्राम किया। यह एक नदी के किनारे पर था। स्नान करके मैंने अपना दुपट्टा बिछा दिया और उसपर बैठ गया। अपनी छोटी-सी तलवार, .कुरान, दूसरी किताबें और रोटी अपने सामने रख ली। पास के एक दूसरे पेड के नीचे एक गडरिया बैठा था। कौतूहलवश वह अपने कुत्ते के साथ मेरे पास आया। वह अपनी लाठी के सहारे झुककर दूर से खडे खडे मेरी ओर देखने लगा। कुत्ता भी उसी की तरह आश्चर्य से देखने लगा। वह अपनी दुम भी हिलाता जाता था। मेरी समझ मे वह मेरी रोटी की सुगन्ध पाकर खुश हो रहा था। इस समय मुझे ज़ोर की भूख लग रही थी। मैंने रोटी का एक टुकडा ले लिया और उसका चौथाई तोड़कर कुत्ते के आगे फेक दिया और बाकी मैं खुद खाने लगा। दयालु गड़रिये ने कहा—अगर तुम्हे कोई एतराज़ न हो तो अपनी सादी रोटी के साथ खाने को कुछ दूध ले लो। मैंने कहा—अगर थोड़ा दूध देने की कृपा करोगे तो मुझको उससे बडी प्रसन्नता होगी। मुझ जैसे भिन्न जाति के अजनबी के साथ जो तुम यह भलाई करोगे उसके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ होऊँगा। वह उदार गड़रिया तुरन्त एक लोटा बढ़िया ताजा दूध ले आया। परन्तु अब उसके लेने की कठिनाई उपस्थित हुई। गड़रिया हिन्दू था। वह अपना बर्तन मुझे कैसे छूने को दे? उसके बताने से वृक्ष की कुछ पत्तियों को मोड़कर उनके प्याले बनाये। मैंने रोटी के साथ ताज़ा दूध पिया। इस दूध का स्वाद मुझे बहुत ही अच्छा लगा। वैसा स्वादिष्ट दूध मैंने कभी नही पिया था और सच तो यह है कि बाद को भी वैसा दूध पीने को कभी नहीं मिला। सूर्य के ढलने पर

मैंने उस समय की वन्दना की और आगे चला। मैंने उस दयालु गड़रिये को धन्यवाद दिया और उससे गोहद की राह पूछी।

चलते चलते चार बज गये। मैं बहुत थक गया था और रात में विश्राम करने के लिए किसी एकान्त स्थान की खोज में था। एक गाँव के समीप दूर पर एक कुआँ देखकर मैं वहाँ पानी पीने गया। कुएँ से राजपूत कुमारियाँ पानी भर भरकर अपने अपने घर ले जा रही थीं। एक से मैंने पानी पिला देने को कहा। उसने प्रेम के स्वर में पूछा—क्या मुझे छोड़कर तुम्हें पानी पिलानेवाला और कोई नहीं है? मैंने कहा—नहीं है। और यदि होती भी तो तुम्हारी अतुलनीय सुन्दरता के आगे वह अणु के ही बराबर होती। सूर्य के आगे दीपक की क्या गिनती? इस चाटुकारी से उसके सुन्दर चेहरे पर मुसकराहट दौड़ गई और उसने अपना वर्तन मेरी ओर करके मधुरता के साथ कहा—इच्छा भर पी लो। उसे धन्यवाद देकर चुल्लू बाँधकर मैं खड़ा हो गया। वह दया-भाव से पतली धार में पानी डालने लगी। जब मैं तृप्त हो गया तब मैंने उस सुन्दरी को सलाम किया। वह अपना घड़ा अपने सिर पर रखकर अपने घर चली गई।

इसी बीच में लम्बे और सुडौल शरीर का एक मुसलमान वहाँ आया। वह चालीस वर्ष का रहा होगा। मेरी ही तरह वह भी मुसाफ़िर ही जान पड़ता था। उसने बड़े आदर से मुझको सलाम किया और पूछा कि कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जा रहे हो। मैंने भी जवाब में सलाम किया और कहा—मुसाफ़िर हूँ। कार्यवश गोहद जा रहा हूँ। यह सुनकर उसने कहा कि वह भी वहीं जा रहा है। उसने यह भी कहा कि अभी गोहद पूरे चार मील है और अँधेरा होने के पहले न पहुँच सकेंगे। मुझे उस आदमी की सूरत और ढंग अच्छे न

लगे, परन्तु शीघ्र ही अपनी बात-चीत से उसने घनिष्ठता बढ़ा ली। लगभग दो मील जाने पर सूर्य क्षितिज पर जा पहुँचा। इस समय हम एक नदी के किनारे पहुँच चुके थे। उसके किनार पर एक पुरानी मस्जिद खड़ी थी, पर आस-पास कोई बस्ती नहीं देख पड़ती थी। मैंने अपने सहयात्री से कहा—मैं अब नहीं चल सकता। रात इसी मस्जिद में बिताऊँगा। अगर वह चाहे तो जा सकता है। इस पर उसने कहा—यहाँ डाकुओं और जङ्गली जानवरों दोनों का डर है। अतएव इस जोखिम की जगह में ठहरने की अपेक्षा आगे जाना ही अच्छा होगा। मैंने कहा—मैं दोनों से भी नहीं डरता। डाकू मुझे हानि नहीं पहुँचावेंगे, क्योंकि मेरे पास एक पैसा नहीं है और जंगली जानवरों से आग की सहायता से रक्षा हो जायगी। मेरे सहयात्री जुम्मा ने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी और मुझे देखा भी। उसने कहा—अच्छा साहब, जो इच्छा हो कीजिए।

तब शाम की नमाज़ पढ़ने को उज़ू करने और मार्ग की धूल साफ़ करने के लिए मैंने अपने कपड़े उतारकर रख दिये। मैंने जुम्मा से कहा—जब तक मैं नहाता हूँ, मेरी रोटी देखे रहना कि कोई कुत्ता उठा न ले जाय। उसने प्रसन्नता से मेरे कपड़े अपनी निगरानी में ले लिये और सावधानी से मेरे सारे असबाव को देखा-भाला। उसमें कुछ न पाकर वह चुपचाप बैठकर मुझे देखने लगा। उसने समझा, शायद मैं अपने पास ही कुछ लिये होऊँ। उसकी यह आशा भी व्यर्थ गई। पानी से निकलकर मैंने अपनी देह पोंछी और नमाज़ पढ़ी। जुम्मा बैठा देखता रहा।

जब अँधियारा हो गया तब हम मस्जिद में गये। जुम्मा और मैं मिलकर बाहर से कुछ लकड़ियाँ ले आये और जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें दरवाज़े पर जला

दिया। हम दोनों ने अपने-अपने पास की रोटी निकालकर एक-एक टुकड़ा रोटी खाई। जुम्मा अपनी रोटी में से कुछ मुझे देने लगा, परन्तु मैंने लेने से इनकार कर दिया। मैंने कहा—यदि आपकी इच्छा हो तो मेरी रोटी में से कुछ ले सकते हैं। अब मुझे बहुत अधिक थकावट मालूम पड़ने लगी, साथ ही इतनी अधिक नींद आने लगी कि मैं अपनी आँखें मुश्किल से खुली रख सका।

अब जुम्मा ने बड़ी भयंकर बातचीत शुरू की। उसने कहा—मैंने पहले ही जान लिया था कि तुम निरे दरिद्र हो और तुम्हारे आगे-पीछे कोई नहीं है। परन्तु यदि तुम भेद न प्रकट कर देने की .कुरान शरीफ़ की शपथ लो तो मैं तुमको अपना चेला बना लूँ। मेरा पेशा इतना श्रेष्ठ है कि मनुष्य क्षण ही भर में धनाढ्य हो जाता है।

मुझे जुम्मा की बातचीत बहुत अच्छी लगी। एक बुद्धिहीन नवयुवक होने से मैंने बिना कुछ सोचे-समझे उससे .कुरान की शपथ खाई, यद्यपि बाद को उसके लिए मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ। इस पर जुम्मा ने कहा कि मेरे सात चेले हैं और वे सब बड़े वफ़ादार हैं। तब मैंने उससे उसका भेद पूछा। उसने दूसरी बार शपथ ली। जब मैं फिर शपथ ले चुका तब उसने कहा—मैं ठग हूँ और मुसाफ़िरों को बड़ी आसानी से मार डालता हूँ और इस प्रकार धनोपार्जन करता हूँ। अपनी कमर से एक लम्बी थैली निकाल कर और उसका मुँह खोलकर उसने मुझे प्रलुब्ध करने के लिए मेरे सामने मुहरों की एक ढेरी लगा दी। बाद को गिनी जाने पर वे ११२ निकलीं। जब मैंने उसकी भयानक बात सुनी, प्रसन्न होने के स्थान में मैं उस नारकीय जुम्मा को और उससे अधिक उसकी मुहरों को देखकर डर गया। परन्तु मैंने अपनी हिम्मत नहीं जाने दी और बड़े धैर्य

के साथ उससे पूछा—तुम सरलता से मनुष्य को कैसे मार डालते हो? उसने कहा—तुम इसकी कुछ परवा न करो। मैं तुमको अपनी प्रक्रिया दिखलाकर एक क्षण में सिखला सकता हूँ, परन्तु ख़बरदार, मेरा नाम किसी क़स्बे या नगर में न लेना, क्योंकि मेरा नाम प्रसिद्ध है। इस भेद को छिपाना। ऐसे अवसर मिलेंगे कि कल ही तुम मेरे समान धनवान् हो जाओगे। परन्तु याद रखना, तुम्हें अपनी आय में एक चौथाई मुझे और एक चौथाई एक लड़की को देना पड़ेगा। वह लड़की भी हम लोगों के दल में है। कल गोहद के फाटक पर हम उससे भेंट करेंगे।

मुझे बार बार नींद लग रही थी। जागते रहने के लिए चुरट जलाने के बहाने मैं आग के पास गया और जान-बूझकर अपनी एक अँगुली जला ली। चुरट जलाकर मैं अपनी जगह पर आ बैठा।

जुम्मा को मेरी वफ़ादारी का विश्वास हो गया था। अब वह अपनी ठग-विद्या का भेद मुझे बताने लगा। उसकी बातें सुनते-सुनते आधीरात बीत गई थी। जुम्मा ने कहा—अब तुमको नींद आ रही होगी। जाकर दो या तीन घंटे के लिए सो रहो। फिर मैं तुम्हें जगाकर सो रहूँगा। मैंने कहा—मित्र, मैंने अपनी अँगुली जला ली है। उसकी पीड़ा से मुझे नींद नहीं आयेगी। तुम सो रहो। जब मुझे नींद लगेगी तब मैं तुमको जगा दूँगा।

इस पर वह हँस पड़ा और बड़ी प्रसन्नता से लेटकर सो गया और सूअर की तरह उसका गला बोलने लगा।

उस राक्षस-रूपी मनुष्य से बातचीत करते समय मुझे जो कष्ट हो रहा था उसका वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है।

एक संकट से निकलकर मैं उससे अधिक भयंकर संकट में पड़ गया था। मेरी अँगुली में बहुत अधिक पीड़ा हो रही थी। मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया। मैंने अपने छोटे से नेज़े से उस दुष्ट का गला काट डालने का विचार किया, पर इस डर से कि उसके पास के धन के कारण हत्या करने का मुझपर अपराध लगेगा, मैं चुप हो रहा। इसी तरह के कष्टकर विचार करते करते वह लम्बी रात अन्त में समाप्त हुई और सवेरे की चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। मैं अपनी जगह से धीरे धीरे उठा और मस्जिद के बाहर जाकर सवेरे की नमाज़ पढ़ने के बजाय मैं गोहद की ओर भागा और वह दो मील की दूरी कोई बीस मिनट में तय कर डाली। कभी कभी घूमकर देख लेता था कि जुम्मा मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है। नगर का फाटक खुल ही रहा था कि मैं वहाँ जा पहुँचा। द्वाररक्षकों और पहरेदारों ने मुझे बदहवास देखकर उसका कारण पूछा। उत्तेजना और भय के झोंके में आकर मेरे मुँह से 'जुम्मा ठग' यह नाम झट निकल गया। पहरेदारों को सावधान हो जाने के लिए उसका नाम भर काफ़ी था। उन्होंने पूछा कि वह कहाँ है। मैंने उन्हें वह जगह बतला दी। वे उस ओर दौड़ पड़े। इधर राज्य के मंत्री ने मुझे बुला भेजा। वह एक नौजवान हिन्दू था।

मंत्री ने मुझसे ख़ूब पूछ-पाछ की। परन्तु इसी बीच में वह दुष्ट जुम्मा उस मन्त्री के पास बन्दी करके लाया गया। वह ख़ूब मारा गया था और उसके शरीर पर तलवार के घाव भी लगे हुए थे। मन्त्री तथा अन्य लोगों ने उसे देखते ही पहचान लिया। इसके पहले वह उनकी क़ैद से एक बार भाग गया था। सभी ने उसके मुँह पर थूँका। उसकी तलाशी ली गई और जो रुपया उसके पास निकला उसे अधिकारियों ने ले

लिया। इसके बाद बिना किसी जाँच-पड़ताल के वह तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया।

मैं वहाँ से उसी फाटक को लौट आया और कुएँ पर जाकर वज़ू करके नमाज़ पढ़ी। उस संकट से छुटकारा पाने के लिए परमात्मा को धन्यवाद दिया। इसके बाद आग जलाकर कलेवा के लिए ताज़ा अन्न भूना और आराम से बैठकर उसे चबाने लगा।

उस दिन मैंने लम्बी मंज़िल तय करने का निश्चय किया। मैं चलने को तैयार ही हो रहा था कि इतने में उन्हीं पहरेदारों में से एक आता हुआ दिखाई दिया। उसे देखकर मैं डर गया। मैंने समझा कि ग्वालियर से मुझे पकड़ ले जाने को कोई आया न हो अथवा जुम्मा का साथी होने का मुझपर अभियोग न लगाया जाय और मुझे भी वही दण्ड न भोगना पड़े। परन्तु जब उसने समीप आकर मुझको अभिवादन किया तब मेरा डर जाता रहा। उसने मुझसे कहा—चलिए, मन्त्री महोदय ने आपको बुलाया है। मैं उसके साथ दरबार को गया। वहाँ मैं बैठाया गया। मन्त्री ने मुझे बीच दरबार में धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा—तुम्हारी ही बदौलत उस ख़ूनी डाकू का विनाश हो सका है। इसके बाद उन्होंने उस डाकू के पास से मिली ११२ मुहरों में से १२ मुहरें मुझको देने की ख़ज़ांची को आज्ञा दी। मैंने झुककर उनको सलाम किया। उनके आदमी ने मुझे मुहरें दे दीं। परन्तु गिनने पर वे १० ही निकलीं। मैंने उसकी ओर देखा। उसने कहा कि अपनी फ़ीस की दो मुहरें ले ली हैं। मैंने फिर कुछ नहीं कहा और अपनी राह ली।

वे दस सोने की मोहरें मुझे पहले-पहल मिली थीं। उनके हाथ में आ जाने से अब मेरे छोटे से मस्तिष्क में दर्प, अभिमान और आत्मविश्वास अपना अपना घर बनाने लगे। इसके साथ

ही मेरा डर भी बढ़ गया। पहले मुझे अपना पीछा करनेवालों का ही डर था। परन्तु अब मुहरों के पास में होने से प्राणों के जाने का भी डर हो गया। अब मैं आम सड़क से और साथियों के साथ यात्रा करने को वाध्य हो गया।

सात दिन की परिश्रमपूर्ण यात्रा के वाद मैं आगरा नगर के समीप पहुँच गया। इस यात्रा में मैंने अपनी रोटी का तीन चौथाई भाग खाया था। सच वात यह थी कि खेतों से ताज़ा अन्न मैं तोड़ लिया करता था और उसी को भूनकर नित्य सवेरे खा लेता था। उस वन्धन के वाद मैंने इस छोटी सी यात्रा में जो स्वाधीनता और आनन्द प्राप्त किया था उसकी याद आने से आज भी वड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

नगर के समीप पहुँचकर मैं एक सघन वृक्ष के नीचे ठहर गया। वहाँ वैठकर आगरे की ऊँची ऊँची प्राचीन इमारतों की प्रशंसा करता रहा। दोपहर के समय मैंने नगर में प्रवेश किया और वहाँ मैं अपने स्वर्गीय पिता की ससुराल की खोज करने लगा। उस घर को पाकर मुझे वड़ी ख़ुशी हुई। दरवाज़े पर जाकर मैंने आवाज़ दी। दासी ने निकलकर मेरा नाम पूछा। मैंने कहा कि मैं मौलवी मोहम्मद अकराम का पुत्र हूँ। शीघ्र ही एक वृद्ध पुरुष वाहर निकल आये, जो रूप-रेखा से भलेमानस और ज्ञानी व्यक्ति जान पड़ते थे। उन्होंने मेरी सौतेली वहनों के वारे में एक एक वात पूछी। मेरे पूर्वजों के नाम पूछे। मैंने जो नाम वताये, अपने हाथ में लिये एक काग़ज़ से वे मिलाते से जाते थे। मेरे कथन को सत्य पाकर उन्होंने मुझको वड़े प्रेम से गले लगाया और घर के भीतर ले गये। वहाँ स्त्रियों ने आकर मुझे घेर लिया। मुझको मेरी सौतेली नानी का परिचय दिया गया। वे वृद्ध थीं। उन्होंने वड़े कृपाभाव से मुझे ग्रहण किया।

मैं इस भले घराने का अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। मैं उनके लिए एक अजनबी था। मेरी सौतेली मा की मृत्यु से मेरा उनसे अब कोई सम्बन्ध भी नहीं रह गया था। तो भी उन्होंने मुझे बड़े आदर के साथ अपने यहाँ रक्खा। वृद्ध महोदय एक स्कूल में अध्यापक थे। वे मुझे पढ़ाने लगे। अपनी समय की पाबन्दी, अध्यवसाय और विद्या-प्रेम से मैं शीघ्र उनका एक प्रिय पात्र छात्र बन गया। शुक्रवार को मुझे छुट्टी रहती थी। खेलने-कूदने के स्थान में मैं अपने मित्रों के साथ शहर के प्राचीन बाग़ और इमारतें देखने चला जाता था।

उन वृद्ध महोदय के घर मैं पाँच वर्ष अर्थात् सन् १८१७ के प्रारम्भ तक रहा। इतने समय में मैंने उस स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर डाली। तब उन्होंने अपने एक मित्र से यह कहलवाया कि तुम पूरा पढ़-लिख गये हो, अब नौकरी कर लो। अँगरेज़ी अधिकारियों से उनकी जान-पहचान है। अगर पसन्द हो तो वैसा प्रयत्न किया जाय। इसके सिवा उनके किसी सम्बन्धी के यहाँ शादी भी कर लो।

मैंने इस कृपापूर्ण सन्देश के उत्तर-रूप में अपने श्रेष्ठ आश्रय-दाता को हृदय से धन्यवाद दिया। मैंने कहलवाया कि मैं उनके कृपापूर्ण व्यवहार को जीवन भर नहीं भूलूँगा। इस समय उनके व्यवहार का बदला देना मेरी शक्ति के बाहर की बात है, तो भी आशा है कि परमात्मा की कृपा से किसी न किसी दिन उनकी सेवा अवश्य करूँगा। विवाह और नौकरी के सम्बन्ध में यह निवेदन है कि इस समय मैं यह कुछ न कर सकूँगा। उज्जैन जाकर सबसे पहले मैं अपनी मा को देखना चाहता हूँ।

———

चौथा अध्याय

सन् १८१७ की फ़रवरी में महाराज दौलतराव सेंधिया के बहनोई हिन्दूराव के हकीम रहमतुल्ला बेग दिल्ली जाने के लिए आगरा आये। मेरा उन हकीम साहब से, पहले का, ग्वालियर का परिचय था। मैं उनके पास गया। उन्होंने मुझे आदर से लिया। मैंने उनसे निवेदन किया कि यदि मैं उनके किसी काम का होऊँ तो वे मुझे अपने यहाँ नौकर रख लें। कृपा करके उन्होंने मुझे अल्प वेतन पर नौकर रख लिया और अपनी दवाइयों के तथा घर के प्रबन्ध का काम सौंप दिया।

इस .खुशख़बरी के साथ मैं घर लौटा और इसकी सूचना मैंने अपने दयालु सम्बन्धी और शिक्षक को दी। वे तथा उनके घर के लोग मेरी जुदाई की बात से बहुत दुखी हुए। प्रस्थान करने के दिन मैंने वे दसों मुहरें तथा कुछ रुपये, जो मेरे पास थे, अपने शिक्षक के पैरों पर रख दिये और उनको स्वीकार करने के लिए उनसे विनय की। अनिच्छापूर्वक उन्होंने मेरी भेंट स्वीकार की। इसके बाद वे .खुद हकीम साहब के पास गये और उनसे मेरी बड़ी प्रशंसा की। फिर मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर ख़ुदा हाफ़िज़ कहकर मुझे विदा किया।

गुरुवार के दिन हम अपने मित्रों से विदा होकर आगरा से चले। आठवें दिन सवेरे हमें राजाओं और सम्राटों की प्राचीन राजधानी दिल्ली के दर्शन हुए। नगर के फाटक में प्रवेश करने पर अँगरेज़-सरकार के चपरासियों और लेखकों ने हमारे असबाब की तलाशी ली और हमारे आने का कारण

पूछा। उनको समुचित उत्तर देकर हम लोग मुक्त हुए। हकीम साहब चाँदनी चौक में नवाज़िश खाँ के एक वंशधर के महल में ठहरे। यहाँ हम लोग १७ दिन तक बड़े आराम से रहे। इसके बाद हम ग्वालियर को गये। इस यात्रा में सात दिन लगे। मार्ग में हमारे एक हिन्दू सिपाही को साँप ने काट लिया। वह बावली में पानी भरने गया था। कई सीढ़ियाँ उतरने के बाद ज्योंही उसने नीचे की सीढ़ी पर पैर रक्खा कि बड़े काले साँप ने उसके पैर में काट खाया। वह उस सीढ़ी के पास ही बैठा था। ज्योंही उस सिपाही ने साँप को देखा और काटने का दर्द उसे मालूम हुआ, अपने फेंट से पिस्तौल निकाल-कर उस पर गोली दाग दी। गोली की आवाज़ होते ही लोग दौड़ पड़े। हम लोगों ने देखा कि वह अपनी तलवार से एँड़ी से मांस का एक टुकड़ा अलग कर रहा है और उससे दो गज़ दूर एक साँप पड़ा फटफटा रहा है, जिसके फन में उसकी पिस्तौल की गोली से छेद हो गया है। वह सिपाही ख़ून निकल जाने से बेहोश हो गया था। हम लोग उसे ऊपर ले आये। हकीम साहब ने तत्काल एक बड़ी छुरी आग में तपाकर टख़ने के नीचे उसके पैर को दाग दिया और घाव धोकर उसमें थोड़ा सा नमक रख दिया। नमक की छरछराहट से उसकी मूर्च्छा दूर हो गई और उसने पानी माँगा। परन्तु पानी के स्थान में हकीम साहब ने उसे अँगरेज़ी ब्रैंडी की एक अच्छी मात्रा पीने को दी। इसके बाद वह सिपाही ऊँट की पीठ पर बाँध दिया गया। इस प्रकार शेष यात्रा पूरी हुई। छः सप्ताह की भयंकर बीमारी के बाद वह स्वस्थ हुआ। जब महाराज हिन्दूराव ने उसके साहस की बात सुनी तब उसे सिपाही से सवार बना दिया। वर्दी आदि के सिवा उसे एक रुपया रोज़ वेतन मिलने लगा। हकीम साहब भी हिन्दूराव के नौकर थे।

छावनी में आ जाने पर मेरे भूतपूर्व संरक्षक या उत्पीड़क वृद्ध सूबेदार हकीम साहब के पास आये और हम दोनों में जो गुज़री थी उसे क्षमा कर देने तथा भूल जाने के लिए मुझसे कहा। उन्होंने हकीम साहब से प्रार्थना की कि वे मुझे उनके साथ जाने की आज्ञा दे दें। हकीम साहब ने कहा कि यदि उसकी जाने की इच्छा हो तो वह जा सकता है। मैंने कहा—जो कुछ हो चुका है उसे मैंने पहले ही क्षमा कर दिया था और हो सका तो उसे भूल भी जाऊँगा। मुझे जब समय मिलेगा तब ख़ुशी से उनके घर जाऊँगा, परन्तु उनके साथ जाकर उनके घर में रहने के लिए मैं आपकी नौकरी नहीं छोड़ूँगा। मेरी बात सुनकर सूबेदार चुप हो गये और अपने घर चले गये।

मैं हकीम साहब के साथ छः महीने रहा और दवा-पानी का काम करता रहा। हिन्दूराव को उनका बड़ा विश्वास था। जब मुझे अवकाश मिलता तब सूबेदार से भी मिल आता। कभी कभी उनके साथ भोजन भी कर लेता। वे अब सदा मेरे साथ सद्-व्यवहार करते। अगस्त में खाँडेराव ने अपने घर उज्जैन जाने के लिए छुट्टी ली। मैं इन्हीं के साथ ग्वालियर आया था। सूबेदार ने भी उनके साथ जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। उनके प्रस्थान करने के दिन मैंने भी हकीम साहब की नौकरी से छुट्टी प्राप्त की। उन्होंने कहा कि अगर मेरे साथ तीन-चार वर्ष तक रह जाओगे तो तुम भी एक अच्छे हकीम हो जाओगे। परन्तु मातृ-प्रेम से अन्धे हो जाने के कारण मैंने उनके सत्परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। तब हकीम साहब ने मेरी तनख़्वाह का बाक़ी रुपया मुझे दे दिया तथा कुछ रुपये और वस्त्र भी पुरस्कार में दिये। अब मेरे पास फिर सौ रुपये से कुछ अधिक हो गये।

अगस्त के बीच में हमने छावनी छोड़ी। वर्षा-ऋतु के कारण हमारी यात्रा आनन्दप्रद नहीं सिद्ध हुई। सितम्बर के

पहले हफ़्ते के अन्त में हम सही-सलामत उज्जैन पहुँच गये। छः वर्ष से अधिक समय के बाद उज्जैन को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। शुभ मुहूर्त न होने के कारण खाँडेराव और उनके साथ सूबेदार भी एक हफ़्ते तक नगर में न जा सके। परन्तु इस निश्चय के पहले ही मैं नगर में चला गया था। अपनी मा को स्वस्थ पाकर तथा उसके पुत्र को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके घर को तरह-तरह के साज-सामान आदि से भरा देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि सूबेदार की आय इतनी अधिक नहीं थी कि वे वह सब संग्रह कर सकते। मैंने अपनी माँ से इस सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने गोलमोल उत्तर दिया, जिससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। बाद को घर के दूसरे लोगों से मालूम हुआ कि वह सब डाकों का माल है। सूबेदार की पहली स्त्री का भाई, उनकी अनुमति से, उनके घोड़े और ऊँट ले जाकर डाके डाला करता था। वही वह सब माल लूटकर लाया था।

तीन महीने तथा कुछ दिनों तक मैं अपनी माँ के साथ शान्तिपूर्वक रहा। दिसम्बर के मध्य में वहाँ दस हज़ार अँगरेज़ी सेना आई और उसने शिप्रा नदी के दूसरे किनारे पर अपनी छावनी डाली। सवेरे की नमाज़ के बाद मैं रोज़ उनकी क़वायद-परेड आदि देखने जाता। मैंने एक गोरे से मेल भी कर लिया। वह मेरी बोली नहीं समझता था। खराब हिन्दुस्तानी के कुछ शब्द जानता था। इशारों और उन्हीं शब्दों के द्वारा हम एक-दूसरे पर अपने मन के भाव प्रकट करते थे। इस सङ्गति में तीन-चार दिन के भीतर मैंने अँगरेज़ी के उन शब्दों को याद कर लिया। मैंने उन्हें फ़ारसी अक्षरों में लिख लिया था।

एक दिन सवेरे जब मैं वहाँ गया तब मुझे वह जगह ख़ाली मिली। जो थोड़े लोग पीछे रह गये थे वे भी घबराये हुए थे

और जल्दी जल्दी एक ऊँट पर अपना सामान लाद रहे थे। इन लोगों से मालूम हुआ कि सेना महीदपुर को गई है। वहाँ होल्कर की सेना से युद्ध होगा। यह सुनकर मैं घर लौट आया। ऐसे कामों में शामिल होने में अपने को असमर्थ पाकर मैंने अपने को बड़ा अभागा समझा।

उज्जैन के सूबेदार हीराखाँ तथा दूसरे सरदार अँगरेज़ों का माल-असबाब लूटने को तैयार थे। वे समझते थे कि लड़ाई में अँगरेज़ मारे जायँगे और उनकी हार होगी। बदमाशों के दल भी शहर में आ गये थे। वे लोग विचित्र रूप से उत्तेजित थे। मेरे वृद्ध सूबेदार और उनके साले साहब तो अँगरेज़ों को हारे हुए ही समझे बैठे थे। यदि अँगरेज़ युद्ध में हार जाते तो उनका विनाश करने के लिए उज्जैन में दस हज़ार आदमी तैयार बैठे थे। परन्तु इन सबकी आशा धूल में मिल गई। अँगरेज़ जीत गये थे। होल्कर की शक्ति के विचार से पहले लोगों को उनकी हार होने की ख़बर का विश्वास ही नहीं हुआ। वे नहीं जानते थे कि नवाब अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया है और ठीक उसी समय जब होल्कर के तोपख़ाने के बख़्शी रोशनबेग की वीरता और स्वामिभक्ति के कारण अँगरेज़ लोग हार जाने को थे, अपनी सेना लेकर युद्ध से चले आये थे। जब तक वे ज़िन्दा रहे, इस कलंक का धब्बा उनके नाम के साथ बराबर लगा रहा। वे बड़े उदार और ग़रीबपरवर थे और उनके पुत्र ग़ाज़ी मुहम्मद ख़ाँ की भारतीय लोग उनके स्वर्गीय पिता के दुर्व्यवहार के लिए निन्दा किया करते थे, यद्यपि वे अब जावरे के इलाक़े का उपभोग करते हैं, जो उनके घराने को भारत के ब्रिटिश अधिकारियों की कृपा से प्राप्त हुआ है।

मैं अपनी मा के साथ उज्जैन में १८१७ के दिसम्बर के अन्त तक रहा। बैठे बैठे जी उकता गया था। इसके सिवा सूबेदार

की रोटी खानी मुझे पसन्द नहीं थी। दक्खिन की लड़ाइयों और बाजीराव के पराभव की ख़बरों से मेरा मन उत्तेजित हो गया था। अन्तिम पेशवा बाजीराव ने अपने गर्व और सङ्कुचित नीति से दो प्रबल जातियों को, अर्थात् अपने उपकारी मुसलमानों और अँगरेज़ों को, रुष्ट कर दिया था। वे भूल गये थे कि मुसलमानों की मदद से उन्हें पेशवा की गद्दी मिली थी और अँगरेज़ों की सहायता से वे उसे अपने अधिकार में रख सके थे। परन्तु सवेरे दस बजे तक वे मुसलमानों का मुँह नहीं देखते थे। इसके सिवा कैसे ही मर्तबे का कोई मुसलमान क्यों न हो, उनके महल के आस-पास की सड़कों से होकर आ-जा नहीं सकता था। बुद्धिमान् और शक्तिशाली ईसाइयों के भी साथ यही व्यवहार होता था, पर वे उनकी ऐसी मूर्खता की बातों की ओर ध्यान नहीं देते थे।

१८१८ की जनवरी में दक्खिन के युद्ध की ख़बरें सुनकर वहाँ जाने के लिए मैं उतावला हो उठा। मैंने सोचा कि वहाँ जाने पर मुझे उन्नति के शिखर पर पहुँच जाने का मार्ग मिल जायगा। इस विचार के फेर में मैं शहर में ऐसे कारवाँ या साथी की खोज में घूमने लगा जिसके द्वारा मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकूँ। एक दिन जब मैं इस तरह घूम रहा था, मुझे कोई बीस अजनबी अफ़ग़ान और एक जमादार दिखाई दिया। वे एक बनिये की दूकान में ठहरे हुए थे। उधर से जाते समय मैंने उनका मुसलमानी ढङ्ग से अभिवादन किया। जमादार मूसाख़ाँ ने (बाद को यह नाम मालूम हुआ) मेरे अभिवादन का उत्तर दिया और मुझसे बैठने और हुक़्क़ा पीने को कहा। मैं प्रसन्नता से बैठ गया। बातचीत से यह जानकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ कि वह कुछ महीनों की छुट्टी लेकर अपने घर रामपुर गया था और अब पूना को जा रहा है। मैंने पूछा—आप यहाँ से कब जायँगे?

मैं भी नौकरी के लिए दक्खिन जाने का विचार कर रहा हूँ। जमादार ने कहा—कल सवेरे की नमाज़ के बाद जाऊँगा। चाहो तो मेरी ही नौकरी कर लो। दस रुपया महीना मिलेगा। भोजन, वस्त्र भी मिलेंगे। केवल २५ पठानों का हिसाब रखना होगा। अगर कोई अच्छी नौकरी मिल जाय तो आप उसे .खुशी से कर सकेंगे। क्या कहते हो? मैं तत्काल उन शर्तों पर राज़ी हो गया। मैंने कहा कि कल सवेरे सामान लेकर यथा-सम्भव जल्दी ही आ जाऊँगा। उसने कहा—सामान की क्या ज़रूरत है? केवल छोटी छोटी दरियों तथा हथियारों के सिवा हमीं लोगों के पास क्या सामान है? अगर तुम सामान लाओगे तो याद रखना कि तुम्हीं को लेकर चलना होगा। यह सोचकर कि सामान लेकर चलने में असुविधा होगी, मैंने कहा—यथा-सम्भव मैं आपके आदमियों से भी हलका ही रहूँगा।

मैं .खुशी-.खुशी घर आया। अपनी सारी वस्तुएँ एक सन्दूक़ में रखकर उसे मैंने अपनी मा को सौंप दिया। उसकी कुञ्जी मैंने अपने पास ले ली। मैंने अपने विचार को अपने ही तक रक्खा था। मुझे डर था कि प्रकट कर देने पर जाने नहीं पाऊँगा। भविष्य में अभ्युदय की कामना में मैं सारी रात हवाई महल बनाता रहा, एक क्षण भी मैं नहीं सो सका। मुर्गे की पहली बाँग सुनकर मैं उठ बैठा और वज़ू करके मैंने नमाज़ पढ़ी। अपनी छोटी दरी कन्धे पर रख और कागज़, क़लम तथा दावात फेंट में खोंस मैं अपने नये मित्रों के पास गया। वे लोग चलने को तैयार हो रहे थे। उन सब ने प्रसन्नता से मेरा स्वागत किया। अपने हथियार मुझे सौंपकर वे पास की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने चले गये। वहाँ से लौटने पर उन्होंने नियमानुसार मेरा अभिवादन किया। अब वे चलने की तैयारी करने लगे। अपने हथियार बाँधकर उन सबने यात्रा के पहले की ईश-

वन्दना की। अब हम लोग रवाना हुए और सूर्योदय के समय नगर के फाटक के वाहर हो गये।

हम लोगों ने दक्षिण-पश्चिम का मार्ग लिया। इन्दौर को अपने वायें छोड़कर हम लोग सवेरे से सन्ध्या तक चलकर लम्वी लम्वी मञ्ज़िल तय करने लगे। रात में छोटे गाँवों में ठहर जाते और खाने-पीने का सामान ख़रीद कर बारी बारी से वनाते-खाते। लगभग आठ वजे रात को हम लोग भोजन करते। दूसरे दिन के कलेवा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को एक रोटी, कुछ प्याज़ या शक्कर दे दी जाती। अपने नये मित्रों के साथ मेरा समय वड़े मज़े में वीत रहा था। मूसाख़ाँ मेरे आराम का विशेष रूप से ध्यान रखता था। छठें दिन सन्ध्या को हम लोग भीलों के एक छोटे गाँव में ठहरे। यह गाँव उस पहाड़ी सिलसिले के नीचे वसा हुआ था जो नर्मदा की तराई में पूर्व से पश्चिम को चला गया था। जामघाट के प्रसिद्ध दर्रे के वजाय इस निर्जल और दुर्गम पहाड़ी मार्ग में आने का कारण पूछने पर मुझे वताया गया कि मण्डलेश्वर जाने का, जहाँ नर्मदा सदा उतार में रहती है, सवसे सीधा मार्ग यही है।

दूसरे दिन रात को दो वजे के लगभग हम लोग रवाना हुए और पहाड़ों पर जा चढ़े। हम लोग कठिनाई से चल रहे थे— आगे अँधेरा था और पीछे भयङ्कर आवाज़ें थीं। मूसाख़ाँ और उसके साथी अफ़ग़ान उस मार्ग की चढ़ाई, खड्डों और नालों आदि से भले प्रकार परिचित जान पड़ते थे। सवेरा होने पर हम लोग एक स्वच्छ चश्मे के पास ठहर गये और वज़ू करके नमाज़ पढ़ी। उस दिन सवेरे इतनी अधिक ठण्ड थी कि हमारे दाँत कटकटा रहे थे। अफ़ग़ानों को, जान पड़ता था, सर्दी नहीं लग रही थी। परन्तु मूसा ने नमाज़ के वाद आग जलाने और चिलम भरने की आज्ञा दी। हम लोगों ने उसकी आज्ञा का

पालन किया। सूर्योदय होने पर हम लोगों ने कलेवा किया। हुक्का पीकर और ताजा होकर आगे चले। मार्ग बहुत दुर्गम था। कभी कभी हमें सघन जङ्गल से होकर निकलना पड़ता था, कभी पेड़ों की जड़ें तथा उभरे हुए पत्थर पकड़कर ऊपर चढ़कर जाना पड़ता था। इस तरह सन्ध्या के पाँच बजे तक हम लोग बराबर चले गये। उस समय एकाएक अफ़ग़ानों ने चिल्लाकर कहा-- ईश्वर को धन्यवाद है। हमारी यात्रा समाप्त हो गई और हम अपने मुक़ाम पर पहुँच गये। कोई गाँव या नर्मदा का कोई घाट न देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने मूसाख़ाँ से पूछा—हम लोग कहाँ पहुँचे हैं। उसने दूर पर स्थित एक विस्तृत तराई की ओर सङ्केत करके कहा—वही जगह है जहाँ पहुँचने के लिए मैं आतुर था। साल भर तक मैं वहाँ रहूँगा, उसके बाद अपने घर को लौटूँगा। उसने फिर कहा कि उस तराई में उसका स्वामी नादिर नाम का भीलों का सरदार रहता है। उसके अधीन पाँच सौ भील हैं। वे सब हमारे अफ़ग़ानों को अपने साथ रखकर इस पहाड़ के मार्गों और दर्रों पर पूरी निगाह रखते हैं और उनसे निकलनेवाले व्यापारी तथा यात्री दलों को लूट लिया करते हैं। लूट का माल नादिर के पास लाया जाता है और उसके तीन हिस्से किये जाते हैं। दो हिस्से भील सरदार ले लेता है और शेष हिस्सा अफ़ग़ान पाते हैं। यह कहकर मूसा ने मुझे धीरज दिया। उसने कहा कि तुमको धावों से कोई मतलब नहीं। तुम घर में रहकर मेरे और मेरे साथियों के सामान की, हम लोगों की अनुपस्थिति में, देख-भाल रखना। अब रहा हिसाब-किताब, सो उसके लिए तुमको महीने में सिर्फ़ आधा घंटे का समय देना पड़ेगा।

ये बातें सुनकर मैं डर गया और मुझे इतना बुरा लगा कि मैं उसे जा-बेजा कहने जा रहा था, जिससे मैं तत्काल वहीं मार

डाला जाता। परन्तु कुछ सोचकर मैंने युक्ति से काम लेना ही उचित समझा और बनावटी हँसी से मैंने पूछा—तब हमें पूना नहीं जाना होगा। मूसाख़ाँ ने कहा—नहीं, वहाँ जाने से क्या लाभ, जब हम अपना उद्देश्य यहीं पूरा कर सकते हैं? मैंने कहा—भाग्य से मेरा तुमसे सम्बन्ध हो गया है। साल भर तक मैं तुम्हारी नौकरी करूँगा और अपने को उपयोगी सिद्ध करूँगा। फिर देखूँगा कि भाग्य ने मुझ पर कृपा की है या नहीं।

इस बात के समाप्त होने तक हम लोग अपने मेज़बान के निवास-स्थान के बहुत समीप पहुँच गये थे। हमारे दल के लोगों तीन बन्दूक़ें दागीं और इस तरह अपने आगमन की सूचना दी। उनकी आवाज़ से तराई गूँज उठी। इसका उत्तर भीलों ने अपने चीत्कार से दिया। कुछ ही मिनटों में उनके एक झुण्ड ने आकर हमें घेर लिया। वे नंगे थे, सिर्फ़ एक लँगोटी लगाये थे और तीर-कमान लिये थे। कमानें बाँस की थीं, पर तीर सभ्य लोगों जैसे ही थे। उनमें से एक भील क्रोध से आगे बढ़ आया और उसने अपनी लाल-लाल आँखों से हम लोगों को देखा। उसने धमकाते हुए उद्दण्डता के स्वर में कहा—तुम लोग कौन हो जो जान-बूझकर अपने को मौत के मुँह में डाल रहे हो? मूसा ने चिल्लाकर कहा—कालिया, क्या तू मुझे नहीं जानता? उस भील ने जमादार की आवाज़ पहचान ली। दूसरे भील से यह कहते हुए कि रे! मूसा रे! अपनो मूसा रिप नाहिन, वह हम लोगों की ओर बढ़ा। इस पर हम सब लोग परस्पर मिल गये। कालिया और मूसा की बातचीत से प्रकट हुआ कि वे दोनों एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र हैं। सन्ध्या होते-होते हम एक कन्दरा के पास पहुँचे। उसके दरवाज़े पर एक चार पाये के बुने हुए बैठके पर एक काला हृष्ट-पुष्ट आदमी बैठा था। दूसरों की तरह वह भी नङ्गा था, पर अपने हाथों में सोने के दो मोटे

मोटे कड़े पहने था और तीर-कमान के सिवा उसके आगे एक तलवार भी रक्खी थी। उसकी ओर देखकर मूसा ने उसे सलाम किया और हम लोगों से कहा--ये नादिर भाई इस जङ्गल के राजा हैं। इनको सलाम कर अपने घर जाओ; मैं थोड़ी देर में आता हूँ। हम सब ने हाथ उठाकर उस भील को सलाम किया। भील ने उठकर हम लोगों के सलाम का जवाब दिया। उसने मूसा को अपने पास बुलाया। वह उसके पास जाकर, उसके बैठके के एक पाये से उढ़ककर, ज़मीन पर बैठ गया। हम लोग अपने ठहरने की जगह को चले। वह हमारे साथियों को मालूम थी। वहाँ से वह आधा मील दूर थी। परन्तु निराशा और घृणा के भाव से मेरा सारा उत्साह जाता रहा था, और यह आधा मील चलना सौ मील चलने के समान हो गया। हम लोग एक पहाड़ी के किनारे पहुँचे। हमारे घर की पिछली दीवार का काम इस पहाड़ी ने दिया था। उसी के आगे तीन ओर बाँस खड़े कर ऊपर छप्पर डाल दिया गया था। यह दो हिस्सों में बँटा हुआ था और प्रत्येक में अलग-अलग तीस कमरे बाँस की फ़र्चियों से बनाये गये थे। अफ़ग़ान भी इस पिछली यात्रा में बहुत थक गये थे। वहाँ पहुँचते ही उन सबने अपनी बन्दूक़ें दीवार से खड़ी कर दीं और अपना-अपना कमरा लेकर पड़ रहे। मैंने भी अपने साथियों का अनुकरण किया। परन्तु सोने के स्थान में मैं सोचने लग गया।

आठ बजे के लगभग मूसाखाँ आया। उसने हम लोगों को बुलाया। हम लोग तुरन्त दौड़कर उसके पास गये। वह भीलों से पानी भरे घड़े, दूध, चीनी और गेहूँ की रोटियाँ लिवा लाया था। सभी ने उसे धन्यवाद दिया। इसके बाद हम लोगों ने वज़ू किया और सन्ध्या और रात की नमाज़ तुरन्त

पढ़ी। फिर खाने लग गये। दो को छोड़कर सब सोने चले गये। एक हाल में खड़ा रहकर पहरा देता रहा, दूसरा वृक्ष पर चढ़ गया और वहाँ से पहरा देता रहा। मैं सवेरे जगाने पर ही उठा था।

मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि मन के अनुताप को चुप-चाप भूल जाना आवश्यक है। मैं उस स्थान तथा वहाँ के असली निवासियों से रब्तज़ब्त बढ़ाने लगा। अक्सर वृक्षों के नीचे जाकर मैं चुपचाप अकेले बैठा रहता और कभी-कभी अपने मित्र अफ़ग़ानों से बातचीत भी करता। प्रसिद्ध नादिर की देख-रेख में डाका और लूट-मार बराबर जारी रहती। हम लोगों के आ जाने से उसमें और वृद्धि हो गई। पन्द्रह अफ़ग़ानों की वह टुकड़ी महीने में दो या तीन बार भील-डाकुओं के दल के साथ जाती। इस प्रकार चार महीने मेरे लिए चार वर्ष के समान व्यतीत हुए।

हमारे दल का आठवाँ धावा बड़ा लाभदायक निकला। प्रत्येक अफ़ग़ान सोना, चाँदी, सिक्कों और रत्नों से लदा हुआ लौटा। इस लूट का बँटवारा अगली रात को हुआ। जमादार और उसके साथियों के हिस्सों में बड़ा माल आया। चार सौ रुपये के मूल्य का माल मुझे भी मिला। उसके लिए मैंने जमादार को धन्यवाद दिया। उस धन को मैंने अपने कमरे में छिपाकर गाड़ दिया। परन्तु मैं इस धनराशि के लोभ में ज़्यादह नहीं पड़ा।

अपना मतलब हो जाने पर अब अफ़ग़ान लोग कुछ महीनों के लिए अपने घर जाने के लिए भील-सरदार से छुट्टी माँगने को चिन्तित हुए। इसके लिए मूसा उसके पास गया। उसे तुरन्त छुट्टी मिल गई। सरदार ने कहा—चूँकि तुम अपने दल के साथ छः महीने के लिए अपने घर जा रहे हो, इससे मैं तीन

दिन बाद बिना भारी दावत खिलाये नहीं जाने दूँगा। यह कहकर उसने अपने आदमियों को निश्चित दिन के लिए दावत की तैयारी करने की आज्ञा दी। मूसा ने अपने साथियों के पास आकर उस भेंट का फल बतलाया। उसे सुनकर सब अफ़ग़ान प्रसन्न हुए, परन्तु मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भील-सरदार ने हमें खिलाने-पिलाने के लिए अफ़ीम, गाँजा, भेड़ें आदि हमारे निवासस्थान पर भेजवाईं। अफ़ग़ान लोग माल चाभने और नशे का आनन्द लेने में लग गये। वे अधिक रात बीते तक भीलों का नाच देखते और उनका गाना सुनते रहते। इस प्रकार भील-सरदार की आज्ञा से मेरे साथी तीन दिन तक धोखे में पड़े रहे। चौथे दिन उनको बड़ी दावत दी जाने को थी।

दावत के दिन सवेरे मैं अन्य दिनों से कुछ जल्दी जाग पड़ा। नित्य की भाँति झरने पर जाकर मैं अपने आवश्यक कृत्यों से निवृत्त हुआ। फिर वहीं बैठकर उन चोरों और डाकुओं के साथ से मुक्त होने तथा सभ्य लोगों के बीच में जा मिलने के सुखद विषय पर विचार करने लगा। सवेरा होने पर मैं अपने वासस्थान की ओर चला। जब मैं उस स्थान के समीप पहुँचा तब चीख़ों और कराहों को सुनकर डर गया। मुझे धारवाले अस्त्रों से काटे जाने की आवाज़ भी सुनाई पड़ी। ऐसा जान पड़ा मानों बूचड़ का कुल्हाड़ा किसी पशु का मांस और हड्डियाँ काट रहा हो। मैं ठहरकर सोचने लगा। मैंने अपने मन में कहा—हमारी दावत के लिए शायद भेड़ें मारी जा रही हैं। परन्तु तब यह चीख़ और कराह क्यों होगी। स्वभावतः मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। इतने में मैंने देखा कि एक अफ़ग़ान भागा जा रहा है। उसके सिर से ख़ून बह रहा था और उसके कपड़े ख़ून से तर हो गये थे। उसके पास दौड़ते जाकर मैंने पूछा—इब्राहीम ख़ाँ, क्या बात है? इस पर उसने

जवाब दिया—हमारा विनाश हो गया। भीलों ने सभी अफ़-ग़ानों का वध कर डाला। मर जाने का बहाना करके मैं भाग निकला हूँ। मेरे साथ मत आओ। भागकर अपनी जान बचाओ। मैंने कहा—बन्दगी इब्राहीम, भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।

अब मैं उत्तर की ओर दो घण्टे से अधिक समय तक, तेज़ घोड़े की चाल से, लगातार भागता चला गया। खड्डों, ऊबड़-खावड़ टेकरियों तथा तराइयों में गिरकर मर जाने से बाल-बाल बचता गया। कभी कभी मैं इतनी ऊँचाई पर जा पहुँचता जहाँ से मुझे बादल नीचे समुद्र की तरह फैले हुए दिखाई देते, दूसरे समय इतनी गहराई में जा उतरता, मानों पाताल लोक हो। तीन घण्टे की दौड़ से मैं बिलकुल थक गया था। अपने को ताज़ा करने के लिए मैं एक वृक्ष के नीचे गिर पड़ा। अब मुझे भूख और प्यास भी लगी। मैं नहीं जानता था कि कहाँ जा पहुँचा हूँ। मैं इस विचार से बारबार डर जाता था कि कहीं वे हत्यारे आकर मुझे पकड़ न लें और मार न डालें। कोई आधा घण्टे के लगभग सुस्ताकर मैं फिर चला। सूर्यास्त तक पहाड़ के उजाड़ खण्ड तथा घने जङ्गलों को पार करता हुआ मैं चला ही गया। थकावट दूर करने के लिए बीच-बीच में सुस्ताना पड़ा था। गूलरों और बेरों से भूख शान्त करनी पड़ी। डर के मारे मेरा पेट भी बिगड़ गया। उसमें कुछ ठहरता नहीं था।

सन्ध्या हो आने से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मैंने मन में कहा कि रात के अन्धकार में मेरी बड़ी रक्षा होगी। परन्तु इसके साथ ही इस बात का डर भी हुआ कि जङ्गली जानवर आकर कहीं खा न डाले। आस-पास बस्ती के चिह्न दिखाई नहीं दे रहे थे। सारे दिन की यात्रा में मुझे कहीं मनुष्य के पैर का चिह्न तक नहीं दिखाई दिया था। मैं कहाँ था, इसका मुझे ज्ञान नहीं था। एक नाले के किनारे मैं खड़े-

खड़े सोच रहा था। इस अवस्था में भी आशा ने साथ नहीं छोड़ा था। किन्तु मार डाले जाने या जङ्गली जानवर-द्वारा खा लिये जाने का भय व्याकुल किये हुए था। इनसे बचे रहने के विचार से मैं एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गया और एक शाखा पर बैठ गया। घोर सन्नाटा छाया हुआ था, जो जङ्गली जानवरों के चीत्कार से कभी-कभी भङ्ग हो जाता था। विचार-मग्न हो जाने से थोड़ी ही देर में मैं सो गया। जब पीठ और सिर में ज़ोर की एकाएक चोट लगी तब होश ठीक हो गये। मैंने अपने को वृक्ष के नीचे पड़ा पाया। सौभाग्य से वृक्ष के नीचे की ज़मीन बलुई थी, इससे अङ्ग-भङ्ग होने से बच गया। मैं फिर वृक्ष पर चढ़ गया। इस बार मैंने अपनी पगड़ी से अपने को एक शाखा से बाँध दिया और घोड़ा बेचे हुए व्यापारी की भाँति सो रहा।

सबेरे की चिड़ियों की मधुर आवाज़ सुनकर मैं जाग पड़ा। मैंने अपने को तरोताज़ा पाया, पर मुझे अपने अङ्ग कड़े और जकड़े हुए मालूम दिये। नीचे उतरकर मैं पास ही झरने पर गया और अपना नित्य कर्म किया। इसके बाद फिर उत्तर की ओर चला। एकमात्र सूर्य के सहारे मैं चार दिन तक भागा चला गया। चार रातें मैंने पेड़ों पर ही सोकर बिताईं। पाँचवें दिन सबेरे एक पहाड़ी की चोटी से मैंने देखा कि कोई एक मील की दूरी पर कई ग़रीब भील स्त्री-पुरुष सिर पर लकड़ी के गट्ठे लिये चले जा रहे हैं। मुझे स्पष्ट ज्ञात हुआ कि वे उन्हें किसी बस्ती में ही बेचने को ले जायँगे। यथासम्भव तेज़ी के साथ मैं उनकी ओर दौड़ पड़ा और नौ बजे के लगभग उन्हें जा लिया। मैंने सोचा कि अगर मैं इनसे यह पूछता हूँ कि यहाँ से बस्ती कहाँ और कितनी दूर है तो ये मुझको आवारा समझकर इच्छानुसार हानि पहुँचा सकते हैं। अतएव सारा डर छोड़कर मैंने डाँट के साथ उनके गट्ठों का मूल्य पूछा। प्रत्येक ने नाम

मात्र का मूल्य माँगा और मुझसे पूछा कि लकड़ी यहीं लेना चाहते हो या हासिलपुर पहुँचकर लोगे। वृद्ध शेख़ नसरुल्ला का नाम सुनकर मैं जी-सा उठा। मैंने फिर उसी तरह दृढ़ता से कहा कि मेरे साथी पीछे रह गये हैं, उनको लकड़ी की ज़रूरत होगी, यदि वे मेरे साथ वहाँ पहुँच जायँगे तो गाँव में पहुँचकर ख़रीद लूँगा। इस पर वे मेरे साथ चल खड़े हुए। कई पहाड़ियाँ चढ़ते-उतरते लगभग तीन मील चलने के बाद मुझे बस्ती के समीप पहुँचने के चिह्न दिखाई दिये। उस समय मुझे जो अकथनीय आनन्द प्राप्त हुआ वह मैं कभी नहीं भूल सकता। अपने साथियों को पीछे छोड़कर मैं गाँव की ओर दौड़ पड़ा और कोई ग्यारह बजे दिन को मैं वृद्ध शेख़ के घर पहुँच गया। शेख़ अपने कुटुम्बियों के साथ भोजन करने को बैठे हुए थे। एक बड़े बर्तन में मोटे आटे की लपसी बीच में रक्खी हुई थी और प्रत्येक के आगे एक एक प्याला मठा रक्खा था। शेख़ ने मुझे दूर से ही पहचान लिया। उन्होंने दौड़कर बड़ी प्रसन्नता से मुझे गले से लगा लिया। मैंने उनका, उनके कुटुम्बियों का कुशल पूछने और धन्यवाद देने का प्रयत्न किया, पर मेरे मुँह से आवाज़ ही नहीं निकली। शेख़ ने कहा—तुम्हारे ग्वालियर से लौटकर आने की और फिर ग़ायब हो जाने की बात मैंने सुनी थी। तुम कहाँ रहे? इसका उत्तर मेरी आँखों ने दिया। आँसुओं की धारा बहती देखकर वे आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने बहुतेरा सान्त्वना दी और पूछ-ताछ की, पर सब व्यर्थ हुआ। मेरे आँसू बराबर बहते रहे। तब वृद्ध शेख़ ने एक लोटा ठण्डा पानी मँगाया। उन्होंने मेरा मुँह, हाथ और पैर धुलवाये। इस साधारण उपाय से मैं सावधान हो गया।

परस्पर कृतज्ञता-ज्ञापन तथा कुशल-प्रश्न के बाद मुझसे भोजन करने को कहा गया। मैं बड़ी चाह के साथ खाने लगा।

और बहुत ज्यादा खा गया। वृद्ध शेख़ से मैंने अपनी कथा कही। उसे सुनकर उनके आँसू निकल आये। उन्होंने बड़ी सहानुभूति प्रकट की। अधिक खा जाने, सुरक्षा के भाव तथा बच आने की .ख़ुशी से मुझे सुस्ती आने लगी। यह देखकर शेख़ ने मुझको आराम करने के लिए एक कमरा बता दिया। मैं वहाँ अठारह घण्टे तक पड़ा सोता रहा। दूसरे दिन सवेरे शेख़ ने मुझे गहरी नींद से जगाया। नमाज़ पढ़ चुकने पर हम देर तक बातें करते रहे। उन्होंने जो ख़बर सुनाई उससे मैं आकुल हो उठा। उन्होंने बताया कि सूबेदार ने सेंधिया की नौकरी छोड़ दी और अपने साले तथा कुछ सवारों के सहित वे होल्कर के नौकर हो गये। इन्दौर आ जाने पर एक दिन उनका, उनके साले से, झगड़ा हो गया और तलवार चल गई। सूबेदार घायल होकर गिर गये। यह देखकर उनके साले ने भागने का प्रयत्न किया। इस सिलसिले में उसने कई आदमियों को घायल कर दिया। इतने में वहाँ भीड़ लग गई। उसने उसका पीछा किया और उसमें से एक ने उसे गोली मार दी। अपने घावों से दूसरे दिन सूबेदार भी मर गये। उन्हें अपराधी मानकर सरकार ने उनकी सारी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली।

इस ख़बर से मुझे दूसरी चिन्ता हुई। मुझे सूबेदार की मृत्यु से दुःख हुआ, पर मा के लिए अधिक दुःख हुआ। उसका क्या हाल होगा, इसका मुझे पता नहीं था। अतएव मैं शेख़जी के घर केवल तीन दिन रहा।

मैं चौथे दिन शेख़जी की इच्छा के विरुद्ध इन्दौर को रवाना हुआ। दो दिन में मैं वहाँ पहुँच गया। शीघ्र ही मैंने अपनी मा का घर ढूँढ़ लिया। मिलने पर हम दोनों को जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। मा ने उस झगड़े का ब्योरेवार वर्णन किया। सरकार के अन्याय का भी

हाल बताया। लुटेरों की निगाह मेरी सन्दूक़ पर नहीं पड़ी थी। वह बच गई थी। उसमें मेरी चीज़ें और मेरी न्याय की कमाई का कुछ रुपया था। मैंने माँ के स्वास्थ्य का हाल पूछा। मुझे उसका हाल अच्छा नहीं दिखाई दिया। उसने कहा कि हलका ज्वर रहता है, साथ ही खाँसी और दस्त भी आते हैं। इनकी तो उसे उतनी परवा नहीं थी परन्तु वह दिन-दिन कमज़ोर होती जाती थी। उसका यह हाल सुनकर मैं डर गया। परन्तु लापरवाही के साथ मैंने कहा कि रोग कठिन नहीं है। परमात्मा ने चाहा तो शीघ्र ही नीरोग हो जाओगी। इसके साथ ही मैंने कहा कि हवा बदलने से ज़्यादा लाभ होगा, विशेष-कर जन्म-भूमि को जाने से। वह राज़ी हो गई और उसने हाथ का कड़ा उतारकर कहा कि इसको बेंचकर मार्ग के व्यय का प्रबन्ध करो। परन्तु मैंने कहा कि ज़ेवर बेचने की ज़रूरत नहीं है। मेरे सन्दूक़ में कुछ रुपया है, उससे काम चल जायगा।

मैं शीघ्र ही बाज़ार गया। थोड़ी ही देर में सब तैयारी कर ली। दूसरे दिन सवेरे हम इन्दौर से चले और तीसरे दिन राज़ी-ख़ुशी अपने घर पहुँच गये। सभी लोगों ने बड़ी प्रसन्नता से हमारा स्वागत किया। मैंने मामा से एकान्त में मा के रोग की बात कही; परन्तु उसकी दशा देखकर वे पहले से ही जान गये थे। शक्ति भर दवा-दारू की गई, परन्तु व्यर्थ हुआ। कोई बीस दिन में वह सूखकर ठठरी हो गई थी। शुक्रवार, २४वीं अप्रेल को उसकी हालत बहुत ख़राब हो गई। उसने मेरी गोद में ही अपने प्राण त्याग किये। उसकी निर्मल और पवित्र आत्मा स्वर्ग को चली गई। वह मुझको अपना छः वर्ष का अनाथ पुत्र सौंप गई थी।

पाँचवाँ अध्याय

मैं ही अकेला व्यक्ति था जो अन्त्येष्टि-संस्कार के सम्बन्ध में सब कुछ कर-धर सकता था। अतएव मैंने अपनी हैसियत के अनुसार, उस कार्य को शानदार ढङ्ग से किया और उदारतापूर्वक ख़र्च किया। परन्तु इस काम में मेरे पास का रुपया क़रीब-क़रीब सब ख़र्च हो गया। अन्तिम संस्कार में, ख़ैरात में तथा सम्बन्धियों को खिलाने-पिलाने में मुझको ही सब ख़र्च करना पड़ा था। मेरी मा जो थोड़े से जवाहिर छोड़ गई थी उनको मुझे बेच डालना पड़ा, तो भी ख़र्च में पूरा न पड़ा। अब मैं वहाँ से चल देने का कोई बहाना ढूँढ़ने लगा, क्योंकि जिन लोगों से मैंने रुपया उधार लिया था वे तक़ाज़ा करने लगे थे, और यह बात मुझे रुचिकर न थी तथा इससे मेरी कीर्ति में बट्टा लगने का डर था।

उस समय धरमपुर में ब्रिटिश सरकार के एजेंट मुंशी नजफ़-अलीख़ाँ रहते थे। ये ऊपर के प्रान्तों के निवासी एक शरीफ़ आदमी थे। इनसे मेरी मित्रता थी। मैं अक्सर इनके पास जाया करता था। ये मुझ पर बड़ी कृपा करते थे, क्योंकि इनको मुझसे तरह तरह की ख़बरें मिला करती थीं। एक दिन मौक़ा देखकर मैंने इनसे रोते रोते अपनी दुरवस्था का हाल कहा। इनको मुझपर दया आ गई और इन्होंने प्रयत्न करके मुझे १५) मासिक वेतन पर कम्पनी की सरकार में नौकरी दिला दी। मैं डाक-विभाग में मुंशी के पद पर नियुक्त किया गया। १८वीं मई को मुझे हुक्मनामा मिल गया। वह मऊ के सदर से भेजा गया था। उस पर सर जान मालकम की मुहर लगी हुई थी

और उसमें उनके दस्तख़त थे। उसमें लिखा था कि तुम कम्पनी की सरकार में नौकर रक्खे जाते हो। अगर ईमानदारी से अपना कर्तव्य-पालन करोगे तो तुम्हारी उन्नति होगी। उसमें यह आदेश किया गया था कि मैं अपने साथ सात हरकारे लेकर धरमपुर जाऊँ और वहाँ पोस्टमास्टर के रूप में रहकर सिन्दुआ दर्रे से मण्डलेश्वर को और मण्डलेश्वर की सिन्दुआ को डाक भेजा करूँ। साथ ही मण्डलेश्वर की डाक के साथ मैं मऊ में स्थित मिस्टर बेल के नाम एक चिट्ठी भी लिखा करूँ, जिसमें धरमपुर की आवश्यक ख़बरों का विवरण रहे।

यात्रा का प्रबन्ध करके मैं, अपने हरकारों के साथ, धरमपुर को रवाना हुआ। मैं वहाँ तीन दिन की यात्रा के बाद २२वीं को पहुँच गया और एक बड़े से हिन्दू-मन्दिर में मैंने डेरा लगाया। मैं पहला ब्रिटिश अफ़सर था, जो वहाँ नियुक्त किया गया था। इससे सभी लोग मेरा आदर करते थे। धार की सरकार का वहाँ का गवर्नर एक ब्राह्मण था, जिसका नाम नाथूभाई था। उसकी उम्र ५० वर्ष के लगभग रही होगी। उसका रङ्ग काला और शरीर दुबला था। वह अफ़ीमची और बड़ा अत्याचारी था। ऊपर से तो उसने मेरी बड़ी आव-भगत की और सारी आवश्यक सामग्री मुफ़्त में जुटा दी, परन्तु भीतर से वह मुझसे घृणा करता था; क्योंकि उसके प्रजाजन मेरी आज्ञाओं का पालन उसकी अपेक्षा अधिक तत्परता से करते थे।

वीस बरस पहले धरमपुर एक बड़ा क़स्बा था, परन्तु अब वह एक छोटा सा गाँव रह गया था। उसमें केवल सौ घर रह गये थे। वह नर्मदा के दाहिने किनारे पर आबाद था। यहाँ नर्मदा के दोनों तटों पर बहुत से हिन्दू-मन्दिर बने हुए थे। ये मन्दिर प्रसिद्ध महारानी अहल्याबाई के बनवाये हुए थे। महारानी ने होल्कर के विस्तृत राज्य पर सन् १७६९ से सन्

१७९५ तक बुद्धिमानी, परिश्रम और स्वेच्छा से शासन किया था। उनकी नम्रता, निष्पक्ष न्याय, पुरुषार्थपूर्ण साहस और पवित्र उदारता युग-युग तक उनका नाम अमर बनाये रहेंगे।

धरमपुर में मेरे आने के कुछ समय बाद मदरास की देशी पैदल सेना की एक टुकड़ी एक बहुत ही सुन्दर अँगरेज़ के नेतृत्व में वहाँ आई। वह सेना वहाँ ठहर गई, जिससे मैं तथा वहाँ के निवासी बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु वहाँ के गवर्नर नाथूभाई को यह अच्छा न लगा। उस अँगरेज़ अफ़सर ने मुझसे वहाँ का हाल-चाल लिया और अपने सूबेदार की निगरानी में सेना को वहाँ छोड़कर वह एक नायक और तीन सिपाहियों को लेकर दूसरे दिन सवेरे मऊ चला गया। अब उस गाँव में मेरी स्थिति तथा अधिकार और भी अधिक बढ़ गया। जहाँ तक मुझे याद है, मेरा जो समय वहाँ व्यतीत हुआ, अत्यन्त सुख का समय था। मुझे जो सरकारी काम करना पड़ता था उसमें आधा घण्टा से अधिक समय नहीं लगता था। मैं दिन में नदी में स्नान करता, मछलियों का चारा लगाकर चिड़ियाँ पकड़ता और घर आकर फ़ौज के अफ़सरों के साथ शतरंज खेलता। रात को मन्दिर में मेरा दरबार लगता, जिसमें गाँव के मुखिये और उपर्युक्त सैनिक अफ़सर आते और आधी रात तक बैठकर गप-शप किया करते।

दो महीने के बाद वहाँ एक दूसरा अँगरेज़ अफ़सर आया। वह इंजिनियर था। उसका नाम डैनज़रफ़ील्ड था। उसने मुझसे पूछकर धरमपुर की जन-संख्या लिखी। इसके सिवा कई और प्रश्न पूछे, जिनके उत्तर देकर मैं चला आया। वह कुछ रोगी-सा जान पड़ता था, इससे स्वभाव का कठोर और चिड़चिड़ा हो गया था। एक दिन जब मैं उसके पास था, एक मक्खी बारबार उसके मुँह पर आकर बैठ जाती थी। इस पर

वह अपने नौकर को, जो उसके पास खड़ा पंखा से हवा कर रहा था, केवल अभिशाप ही नहीं देता था बल्कि उसके मुँह पर थप्पड़ मारने का प्रयत्न भी करता था और नौकर हर बार अपने को बचा लेता था। उसके इस काम से साहब उत्तरोत्तर उत्तेजित होता गया। अन्त में बेचारा नौकर ख़ेमा छोड़कर बाहर चला गया, हालाँ कि उसके स्वामी ने उससे लौट आने को बहुतेरा कहा। यह सब देखकर मैं तो मुस्करा पड़ा, पर साहब बहादुर के चेहरे पर ज़रा भी प्रसन्नता की झलक न दिखाई दी।

मैं धरमपुर में कोई चार महीने तक रहा। सितम्बर के शुरू में वहाँ सरकारी डाक आनी बन्द हो गई और उसके अन्त में सदर से मेरी बर्ख़ास्तगी का हुक्मनामा आ पहुँचा। उसमें लिखा था—तुमने अपनी कार्यवाही से सरकार को पूरा सन्तोष दिया है। हाल में हिज़ हाइनेस पेशवा पकड़े जा चुके हैं और देश में शान्ति स्थापित हो गई है। अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। अपना हिसाब-किताब लिखकर दूसरी डाक से मऊ को भेज दो। अपने सातों हरकारों को भी मऊ को रवाना कर दो। इस आदमी के हाथ ४५) भेजे जा रहे हैं। इनमें इस महीने की तुम्हारी तन.ख्वाह है, और दो महीने की तन.ख्वाह तुम्हें पुरस्कार के रूप में दी जाती है।

मैं इस सरकारी आज्ञा के पालन करने को बाध्य हुआ। संसार-यात्रा के लिए मुझे कुछ रुपया तो मिल गया, परन्तु तरक्क़ी करने की मेरी सारी आशायें धूल में मिल गईं।

मैंने दूसरे दिन अपने मित्रों से बिदा ली। चाँदनी रात होने से हम लोग छः बजे शाम को रवाना हुए। फ़ौज के नायक मुहीउद्दीन साहब मुझे एक मील तक पहुँचाने गये। ये मेरे घनिष्ठ मित्र थे, शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे। मैं प्रायः इन्हीं के साथ शतरञ्ज खेला करता था। सन् १८४० में इनसे सूरत में

फिर भेंट हुई थी। उस समय इनका भेष साधुओं का था और ये अपने को 'सैयद' कहने लगे थे। परन्तु इस परिवर्त्तन से इनकी स्थिति में कुछ भी सुधार नहीं हुआ था।

अपने सात हरकारों और उक्त हुक्मनामा लानेवाले हरकारे के साथ मैं धरमपुर से महेश्वर को रवाना हुआ। महेश्वर से वे लोग मऊ जाने को थे और मैं अपने जन्म-स्थान को। हम लोग एक-दूसरे से कभी बातचीत करते और कभी गाना सुनते चले जा रहे थे। नया हरकारा बहुत अच्छा गाता था और लोग उससे गाने का आग्रह करते थे। बादल होने से अन्धकार बढ़ गया था। मैंने कहा—हममें से प्रत्येक बारी बारी से जलती हुई लकड़ी लेकर आगे आगे चले, ताकि शिकारी जानवर नज़दीक न आ सकें। परन्तु नौकरी से अलग हो जाने के कारण मेरी सलाह को उन लोगों ने न माना। यही नहीं, उन्होंने कहा—अगर साथ चलना है तो चुपचाप चले आइए; नहीं तो लौट जाइए और जो इच्छा हो कीजिए। उनके इस दो टूक उत्तर से मेरे दिल को चोट लगी और फिर मैंने उनसे कुछ नहीं कहा।

कोई ११ बजे के लगभग हमें अपने बायें झाड़ियों में से चरचराहट-सी सुनाई दी। हम सभी डर गये। क्षण भर में एक शेर जङ्गल से निकला और हममें से जो सबसे आगे था उसे पलक मारते ही वह उठा ले गया। हम लोग डरकर ज़मीन पर गिर गये और बेहोश हो गये थे। होश आने पर कुछ दूर तक बैंयाँ बैंयाँ चले। फिर उठकर अरबी घोड़े की चाल से बेतहाशा भागे और आधा घण्टा तक भागते चले गये। सौभाग्य से हमें एक छोटा सा गाँव मिला और कुत्तों के भूँकने की परवा न करते हुए हम उसमें जा घुसे। कुत्तों के भूँकने से गाँववाले जाग पड़े। उन लोगों ने हमें डाकू समझा। अतएव वे हमें भगा

देने के लिए ख़ूब ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगे। उनके चिल्लाने की परवा न कर हम चौरे या पुलिस की झोंपड़ी में चले गये, जहाँ थोड़ी सी आग जल रही थी। वहाँ एक वृद्ध भील बैठा था, जो पुलिस का आदमी था। उसने समझ लिया कि हम लोग डाकू नहीं हैं, किन्तु हम लोग लूटे गये हैं। अतएव उसने गाँववालों को शान्त किया। कुछ समय तक हम लोगों के मुँह से एक शब्द तक न निकला। परन्तु शीघ्र ही जब हमारे होश-हवास दुरुस्त हुए तब हमने देखा कि रामा हरकारा ग़ायब है। हमने गाँववालों से अपनी कथा कह सुनाई। रात के समय बिना आग के उस जङ्गल से होकर चलने के सम्बन्ध में उन्होंने हमें बुरा-भला कहा। इसके बाद एक बड़े से बर्तन में वे मठा ले आये और हममें से प्रत्येक को वही पीने को दिया। इसके बाद हममें से प्रत्येक को शीतज्वर चढ़ आया और सवेरे तक हम उससे पीड़ित रहे। अब हम महेश्वर को चले, जो वहाँ से कोई पाँच मील था। गाँववालों ने साथ में दो भील कर दिये। हम लोग नौ बजे के लगभग महेश्वर पहुँच गये। यहाँ सरकारी हरकारे अपनी राह लगे और मैं क़ाज़ी के यहाँ ठहर गया। इनसे मेरा दूर का रिश्ता भी था।

मैं क़ाज़ीजी के घर एक हफ़्ते तक आराम से रहा। इसके बाद एक क़ाफ़िले के साथ अपने गाँव चला गया। वहाँ मैं कई महीने तक शान्ति के साथ रहा। परन्तु नौकरी छूट जाने से मेरा मन उदास रहता था। अपना सब क़र्ज़ भुगता देने पर भी, ईश्वर की कृपा से, मेरे पास इतना रुपया बच रहा था कि उससे मैं और मेरा भाई आराम के साथ कोई साल भर तक अपनी गुज़र-बसर कर सके। बात यह हुई कि इन्हीं दिनों सर जान मालकम हमारे यहाँ मस्जिद देखने आये और उन्होंने हम लोगों को काफ़ी बड़ी रक़म भेंट की। उन्हें मस्जिद का

काले पत्थर का एक टुकड़ा बहुत अच्छा लगा। यह ढाई .फुट लम्बा-चौड़ा था और इसमें प्राचीन संस्कृत में एक लेख खुदा हुआ था। यह टुकड़ा मस्जिद के उपासना-गृह में लगा हुआ था। उन्होंने इसे हम लोगों से माँगा और बदले में कुछ रुपये देने को कहा। हम जानते थे कि किसी उपासना-गृह से प्राचीन चिह्नों का हटाना अनुचित है। जिस बादशाह ने मन्दिर को मस्जिद में परिणत किया था उसी ने उस पत्थर को वहाँ लगाया था। ये सब बातें सोचकर हम लोग उस पत्थर को उसी समय देने को तैयार नहीं हुए। परन्तु बाद को हमने सोचा कि इतने बड़े अधिकारी की आज्ञा को न मानना भी ठीक न होगा। वह राजा से कहकर उस पत्थर को प्राप्त कर सकता है। उस दशा में पत्थर तो हमें देना ही पड़ेगा, साथ ही उसके बदले में फिर रुपया भी न मिलेगा। अतएव हमने जनरल के आदमियों से कह दिया कि पत्थर को साहब की आज्ञा के अनुसार उठा ले जाओ। काफ़िरों का यह शिला-लेख यहाँ भूल से लग गया है। यह जितनी जल्दी यहाँ से उठ जाय, उतना ही अच्छा होगा।

पत्थर निकाल लिया गया। जनरल के आदमियों ने उस स्थान को जैसा का तैसा बना दिया। उस पत्थर को पाकर जनरल साहब बहुत .खुश हुए। उन्होंने हमें अपने ख़ेमे में बुला भेजा और केवल मुझे (मेरे चचेरे भाई को नहीं) बातचीत करने के योग्य समझकर वे बिलकुल मेरे पास आकर खड़े हो गये। मेरा सिर उनके सीने तक पहुँचा था। उन्होंने .खुद ही मुझसे बातचीत शुरू की और अच्छी फ़ारसी में। उस पत्थर की तथा हमारे कुटुम्ब आदि की प्रशंसा में वे प्रेमपूर्वक बातें करते रहे। उनका यह व्यवहार उनके दिये हुए रुपयों की अपेक्षा मेरे लिए विशेष प्रसन्नता का कारण हुआ।

अब मैं फिर नौकरी की खोज करने लगा, अन्त में मुझे एक सज्जन अँगरेज़ के यहाँ नौकरी मिल गई। उनका नाम लेफ़्टनेंट बी० मैक मेहन था। वे नालचा में भीलों के एजेंट थे। उन्होंने फ़ारसी पढ़ाने के लिए मुझे रक्खा। ऐसा हुआ कि ये लेफ़्टनेंट सी० एफ़० हार्ट के साथ शिकार खेलने के लिए हमारे क़स्बे में आये और हमारी मस्जिद में दो-तीन दिन तक ठहरे। उन्होंने ख़ुद ही मुझसे नौकरी करने को कहा। मैंने बिना हिचकिचाहट के नौकरी स्वीकार कर ली और उनके साथ मैं नालचा को गया। मैकमेहन साहब दुबले-पतले किन्तु लम्बे शरीर के थे। वे बड़े बुद्धिमान् और हँसमुख स्वभाव के थे। वे बहुत अच्छी हिन्दुस्तानी जानते थे और भीलों की बोली बोलने में तो लासानी थे।

उस नवयुवक अँगरेज़ के कृपापूर्ण संरक्षण में मैं कोई साढ़े चार महीने तक रहा। हम लोग एक पुराने महल में रहते थे। दुर्भाग्य से उन्हें जङ्गल का बुख़ार हो गया। अतएव दवा कराने के लिए वे बम्बई चले गये, जहाँ से बाद को स्वदेश को रवाना हो गये। नालचा से जाते समय उन्होंने मुझे पूर्वोक्त लेफ़्टनेंट हार्ट को सौंप दिया था। उनको हिन्दुस्तानी पढ़नी थी। इस समय से सन् १८३५ तक मैं भिन्न भिन्न अँगरेज़ अफ़-सरों को फ़ारसी, हिन्दुस्तानी, अरबी, और मराठी पढ़ाता रहा। मैंने इस काल में सौ से ऊपर विद्यार्थियों को पढ़ाया होगा और मेरे पढ़ाये हुए विद्यार्थियों ने अपनी परीक्षायें प्रशंसा के साथ पास कीं। मेरे पास प्रशंसा-पत्रों की एक किताब है। मैं कह सकता हूँ कि दूसरों की अपेक्षा मैं इस पेशे में अधिक मज़े में रहा।

लेफ़्टनेंट सी० एफ़० हार्ट के यहाँ नौकर हो जाने के तीन महीने बाद उन्हें यह हुक्म हुआ कि अपनी फ़ौज की टुकड़ी को लेकर वे मालवा की सेना के साथ कर्नल वार्क्ले के सेनापतित्व

में नगर परकर को जायँ और वहाँ के विलोची खोजे डाकुओं का दमन करें। मुझे साहब के साथ जाना पड़ा। हमें इस वर्ष के प्रारम्भ में मऊ की सुखद छावनी का त्याग करना पड़ा। हमारी सेना धीरे धीरे रवाना हुई। वड़ोदा में एक दूसरी सेना की टुकड़ी को साथ लेकर हमें राधनपुर जाना था, जहाँ से हमें रन की मरुभूमि पार करनी थी, जो चालीस मील के लगभग रही होगी। इसके परे परकर का ज़िला था।

मऊ छोड़ने के बाद लेफ़्टिनेंट हार्ट ब्रिगेड के मेजर वना दिये गये। वे मेरे साथ भाईपन का व्यवहार करते थे। उन्होंने मेरे रहने के लिए एक ख़ेमा तथा चढ़ने के लिए एक वढ़िया घोड़ा दिया। वे मुझसे महीने में एक या दो वार पढ़ते थे। अतएव मैंने उनके सद्‌व्यवहार तथा उनका जो नमक खाता था उसके बदले में उनका कोई दूसरा काम करने का निश्चय किया। मैं उनके घरेलू कामों की देख-रेख रखने लगा और ऐसा अच्छा प्रवन्ध रखता था कि वही नहीं, उनके मित्रों को भी बड़ा सन्तोष हुआ।

वड़ोदा पहुँचने पर वहाँ कुछ दिनों के लिए पड़ाव डाल दिया गया, जिससे लोग आराम कर लें, रसद एकत्र कर ली जाय तथा रन की मरुभूमि की यात्रा के लिए चमड़े के थैले वनवाकर उनमें ताज़ा पानी भर लिया जाय। मैं इन दिनों रोज़ साँझ-सवेरे घोड़े पर चढ़कर नगर की सैर किया करता था। ऐसी ही सैर में एक दिन सवेरे मुझे एक मरहठा सवार ने बहुत तङ्ग किया। वह वार-वार अपना घोड़ा कभी मेरे आगे से तो कभी मेरे पीछे से इस ढङ्ग से लेकर निकलता था, मानों मुझे और मेरे घोड़े को चिढ़ाता हो। कभी कभी वह अपने भाले को मेरी ओर इस ढङ्ग से दिखाता था, मानों वह मुझे उससे छेद डालना चाहता हो। कभी कभी वह अपना घोड़ा दौड़ा ले जाता था, और

अपना रूमाल फेंक कर दौड़ते हुए उसे भाले से उठा भी लेता था। उसकी इस अकारण छेड़-छाड़ से मैं उत्तेजित हो उठा। मैंने यह निश्चय कर लिया कि यदि वह मुझे अपने भाले से स्पर्श करेगा तो मैं तत्काल उसे गोली मार दूँगा। मेरे पास दो पिस्तौल थे। आश्चर्य की बात है कि मेरा घोड़ा इस छेड़-छाड़ से मेरी अपेक्षा अधिक शान्त और बेपरवा बना रहा। अन्त में मैंने अपने पड़ाव को लौट जाने का निश्चय किया। और ज्योंही मैं लौटने लगा, वह सवार फिर आ पहुँचा। उसके मेरे घोड़े के पीछे मुड़ते समय उसका घोड़ा लड़खड़ा गया, जिससे वह मेरे घोड़े की पूँछ से छू गया। इस पर मेरे घोड़े ने तुरन्त ऐसी दुलत्ती झाड़ दी कि वह घोड़ा और उसका सवार दोनों तीन गज़ के फ़ासिले पर जा गिरे। अपने घोड़े की यह कार्रवाई देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, मानों वह बदला लेने की प्रतीक्षा कर रहा था। गिरने के बाद वह घोड़ा अपने सवार को छोड़कर एक दूसरे सवार के पीछे दौड़ पड़ा, जो एक घोड़ी पर उधर से आ निकला था। इस सबसे बाज़ार में बड़ा गोल-माल मच गया। इधर उस सवार के घोड़े पर से गिरते समय उसकी तलवार म्यान से बाहर निकल आई, जिससे उसका हाथ कुहनी से कलाई तक कुछ छिल गया और वहाँ से काफ़ी .खून बह निकला। फलतः मैं उस चोट का कारण समझा गया और पुलिस ने मुझे पकड़ लिया। उस बहादुर सवार ने कदाचित् .खून कभी नहीं देखा था। अपने घाव को देखकर वह पीला पड़ गया, स्त्री की तरह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा और बेहोश हो गया।

उस बहादुर सवार को वहीं छोड़कर, पुलिस के कहने पर, मैं मजिस्ट्रेट की कचहरी की ओर चला। वहाँ एक बड़े कमरे के बीच में एक रेशमी गद्दे पर तकिया लगाये एक हृष्ट-पुष्ट मोटे

ब्राह्मण को बैठे देखा। उसके पास तीन लेखक और कई चपरासी थे। मैंने अपने घोड़े को एक खम्भे से बाँध दिया और मजिस्ट्रेट के सामने जाकर खड़ा हो गया और उसको सलाम किया, जिसका जवाब उसने बड़े घमण्ड के साथ दिया। उसने अपना हाथ उठाया तो ज़रूर पर वह ठुड्डी तक मुश्किल से पहुँचा। मुझे उसका यह व्यवहार अच्छा न लगा। मैंने समझा कि मेरा बुरा दिन आया है। उसने एक लेखक से मेरा बयान लिखने को कहा। लेखक मेरा बयान उतनी ही शीघ्रता से लिखने लगा, जिस तरह मैं लिखाने लगा। जब मजिस्ट्रेट को मालूम हुआ कि मैं कौन हूँ और किसका नौकर हूँ, उसका सारा दर्प का भाव दूर हो गया। उसने मुझसे बैठ जाने को कहा, परन्तु पैरों में बूट होने से मैंने कृतज्ञतापूर्वक इनकार कर दिया। इस पर उसने तुरन्त कुर्सी ले आने का हुक्म दिया। मैं सलाम कर उस पर बैठ गया। इसी बीच में वह आहत वीर, उस घोड़ी का सवार जिसे उसके बदमाश घोड़े ने पीठ पर कई जगह काट लिया था, और वह घोड़ा, तीनों कचहरी में लाये गये। ज्योंही मेरा बयान ख़त्म हो गया, घोड़ी के सवार ने अपना बयान दिया। तब थोड़े में उस घुड़सवार ने, जो अब मेमना-सा हो गया था, अपनी बात कही। उसके घाव का ख़ून अभी तक बह रहा था और उसका ध्यान उसी पर लगा था। हाकिम कुछ क्षणों तक मामले पर विचार करता रहा। अन्त में उसने इस प्रकार निर्णय किया—कृष्णाजी होल्कर (यही उस डरपोक सवार का नाम था) गत १४ महीने के भीतर पाँचवीं बार अदालत के सामने लाया गया है। पिछली चार बार उसने आदरयोग्य नागरिकों से झगड़ा किया था और यह समझकर छोड़ दिया गया था कि भविष्य में वह अपना आचरण सुधार लेगा। इस बार उसने

अँगरेज़-सरकार के एक अधिकारी का अकारण अपमान किया है। यह बहुत बड़ा अपराध है और क्षमा के योग्य नहीं है, क्योंकि हमारे प्रजाजनों और नौकरों के ऐसे व्यवहार से एक शक्तिशाली सरकार हमसे नाराज़ हो सकती है। अतएव होल्कर महाराज की नौकरी से बरख़ास्त किया जाता है, उसका सारा माल-असबाब ज़ब्त किया जाता है और वह महाराज के राज्य से देश-बाहर किया जाता है। अँगरेज़ी अधिकारी को उसके द्वारा जो मानसिक कष्ट सहना पड़ा है उसके बदले में उसे होल्कर की तलवार मिलेगी और होल्कर उससे क्षमा-प्रार्थना करेगा। और, पटेल को जो शारीरिक चोट पहुँची है उसके लिए वह होल्कर का घोड़ा पावेगा। इसके बाद मजिस्ट्रेट ने इस मामले का एवं अपने निर्णय का वर्णन करते हुए एक पत्र लिखवाया और उसने ब.ख्शी के पास भेज दिया। और मैं अपराधी की तलवार तथा क्षमा-याचना लेकर, प्रसन्न मन से, अपने पड़ाव में चला आया।

दोपहर तक अनुपस्थित रहने के कारण मेरे लिए कैपटन हार्ट बड़े चिन्तित थे। वे सोचते थे कि मैं किसी न किसी दुर्घटना में पड़ गया हूँ। ख़ेमे में मुझे देखकर वे मेरे पास नङ्गे सिर दौड़े आये और एक असली अँगरेज़ की सरगर्मी के साथ मुझसे हाथ मिलाकर और यह भूलकर कि मैं उनकी भाषा न तो बोल सकता हूँ, न समझ सकता हूँ, मुझसे अँगरेज़ी में उन्होंने पूछा—मेरे प्यारे लुत्फ़ुल्ला, इतनी देर कैसे हुई? उनके प्रश्न को अन्दाज़ से समझकर मैंने उनसे सारा हाल कह दिया जिसे सुनकर वे बहुत हँसे।

छठा अध्याय

पूर्वोक्त घटना के दूसरे दिन सवेरे हम लोग बड़ौदा से अहमदाबाद, कर्री, राधनपुर और सुइगाम होकर नगर परकर को चले। हम लोग प्रायः दस मील प्रति दिन चलते थे। सुइगाम से रात में लम्बी यात्रा करके नर्रा पहुँचे। यह रन के बीचोबीच में था और उजाड़ था। यहाँ हम ८ बजे सवेरे पहुँचे। यहाँ से दूसरे दिन वीरवाव गये। यह भी बड़ी लम्बी और थकानेवाली यात्रा थी। हम सभी लोग इतना अधिक थक गये थे कि यदि विद्रोहियों की एक छोटी टुकड़ी भी मौक़ा देखकर आक्रमण कर देती तो हमारी सारी सेना का संहार कर डालती। मीठे पानी के अभाव के कारण पिछली दोनों यात्राओं में सेना को घोर कष्ट से सामना करना पड़ा। यद्यपि हम काफ़ी पानी ऊँटों, बैलों और टट्टुओं पर लादकर ले गये थे, तथापि नर्रा पहुँचने के बाद वह लगभग समाप्त हो चला था। अतएव पशुओं के लिए तथा कुछ अपने लोगों के लिए भी हमें वहाँ का खारा पानी काम में लाना पड़ा। यह खारा पानी पीने के योग्य तो था, परन्तु इससे लोगों के पेट ख़राब हो गये। खारे पानी का मनमाना उपयोग करने से वह भी ख़त्म हो चला। यदि सेना ८-१० घण्टे वहाँ और ठहरती तो नर्रा-द्वीप का वह पानी भी समाप्त हो जाता। रेजीमेण्ट के ब्राह्मण सिपाहियों की दशा और भी ख़राब थी। वे चमड़े के थैलों का पानी छू नहीं सकते थे। उनके लिए घड़ों में पानी ले जाने की व्यवस्था की गई थी, पर वह दो दिन के लिए भी पूरा नहीं उतरा। अधिकारियों के सुप्रबन्ध और अपने लोगों के किफ़ायत से पानी

ख़र्च करने के कारण हम लोग उस मरुभूमि के पार सही सलामत पहुँच गये।

रन का दृश्य अरुचिकर नहीं है। यह एक बहुत बड़ा मैदान है, जो समतल और चमकीला है। इसमें मार्ग के चिह्न भी बने हुए नहीं दिखाई देते। जहाँ तक दृष्टि पहुँच सकती है, आकाश से ढँकी और क्षितिज से घिरी एक सफ़ेद चादर-सी बिछी देख पड़ती है। मीलों तक न वनस्पति के दर्शन होते हैं, न कोई जानवर ही दृष्टि में पड़ता है। छोटी-छोटी चीज़ें जैसे झाड़ियाँ Mirage के कारण बहुत बड़े आकार में दिखाई देती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि कोई सुन्दर बाग़ लगा हुआ है और उसमें बादलों को छूते हुए वृक्ष लहरा रहे हैं। ज़ेबरों का एक झुण्ड हम लोगों के आगे से असाधारण तेज़ी से निकल भागा। वे हमें तीन या चार मील की दूरी से बड़े बड़े घोड़े-से जान पड़े, मानों हवा में हाथी से उड़ रहे हों। जब वे और आगे निकल गये तब वे आकाश और पृथ्वी के बीच में पहाड़ी दुर्ग से लटकते हुए जान पड़े। इसके बाद उनका आकार छोटा पड़ता गया, यहाँ तक कि वे नज़रों से ग़ायब हो गये।

वीरवाव पहुँचने के दूसरे दिन सवेरे मैं पड़ाव से बाहर निकलकर इधर-उधर घूमने लगा। वहाँ एक जगह एक योरपीय सज्जन को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे एक ध्वस्त मस्जिद के अरबी शिलालेख के पढ़ने में संलग्न थे। वे उसकी नक़ल कर रहे थे। मैंने उनको एक साधारण नक़ल करने-वाला समझा। अपनी पेंसिल लेकर मैंने उस शिलालेख को पाँच मिनट में लिख लिया और असली से मिलाते हुए मैं उसे ज़ोर ज़ोर से पढ़ने लगा। परन्तु यह देखकर कि वे योरपीय सज्जन मेरा पढ़ना ध्यान से सुन रहे हैं मैं, उन्हें धोखा देने के लिए, एक जगह जान-बूझकर ग़लत पढ़ गया। तब उन्होंने

मुझे रोककर मेरी भूल का संशोधन बड़ी योग्यता से किया। मैं जान गया कि वे बड़े योग्य और पूर्ण विद्वान् हैं। मेरी उनकी, फ़ारसी में, गुजरात के इतिहास पर थोड़ी देर तक बात-चीत होती रही। इसके बाद एक-दूसरे के नाम और पते से परिचित होकर हम लोग विदा हुए। वे पालनपुर के रेज़ीडेंट कर्नल माइल्स थे। सन् १८४४ के मध्य में जब मैं लन्दन गया था, वहाँ उनके घर पर मेरी भेंट हुई। मैं उनको अच्छी तरह जानता था, पर उन्हें मेरी याद नहीं रही थी।

वीरवाव से नगर परकर कोई तीस मील दूर था। इस दूरी को हमने चार दिन में पार किया। मार्ग में किसी तरह के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। परन्तु एक शाम को हमारे ब्रिगेडियर को गुप्त रीति से यह सूचना मिली कि कोई ४० मील के अन्तर पर विद्रोहियों का एक दल हम पर अचानक आक्रमण करने के लिए पड़ाव डाले पड़ा है। चुने हुए सवारों का एक दल लेकर वे तुरन्त उस ओर चल पड़े और उन्होंने दूसरे दिन सवेरे वहाँ पहुँचकर उन पर आक्रमण कर दिया और उनमें से कुछ को मार तथा घायल कर वहाँ से भगा दिया। दूसरे दिन हमारे ब्रिगेडियर विजयी होकर लौट आये। परन्तु बाद को हमें मालूम हुआ कि वे सिन्ध की सरकार के एजेंट थे, जो विद्रोहियों का दमन करने या शान्त करने में हमारी मदद करने को भेजे गये थे। उनकी इस कृपा के लिए हमारी ओर से धन्यवाद दिया गया। परन्तु यह बहुत बड़ी भूल थी। षड्यन्त्रियों ने झूठी ख़बर देकर यह बदमाशी की थी।

वीरवाव से चलने के बाद हमारी सेना के जो अफ़सर पुरातत्त्व के प्रेमी थे उन्होंने उस सम्बन्ध में काफ़ी खोज की। भिन्न भिन्न आकार-प्रकार की सङ्गमरमर की सुन्दर मूर्तियाँ तथा बौद्ध-मूर्तियाँ ज़मीन से खोदकर निकाली गईं, जिन्हें उन्होंने अपने साथ ले लिया।

नगर परकर पहुँचने पर जिस समय नगर से कुछ दूरी पर हमारे खेमे लग रहे थे और सेना का एक दल उनके पास से अपना दल बाँधे गुजर रहा था, विद्रोहियों ने हम लोगों पर गोलियाँ चलाना शुरू किया। उन्होंने समझा था कि कुछ को मार तथा घायल कर वे सेना को ध्वंस कर डालेंगे और तब पड़ाव पर आक्रमण कर, लूट मार कर, मालामाल हो जायँगे। किन्तु हमारा सेना-दल खेमों की ओर आने के बजाय शत्रु की ओर मुड़ गया और उन्हें नगर से मार भगाया। नगर के समीप के पहाड़ में आश्रय लेकर वे उसकी दुर्गम चट्टानों और वृक्षों की आड़ से दिन के कोई २ बजे तक हम पर गोली चलाते रहे, परन्तु हमारी कोई हानि नहीं हुई। कई गोलियाँ मेरे सिर के पास से भनभनाती हुई निकल गई थीं। चार बजे शाम को विद्रोही लोग पहाड़ों और घाटियों में गायब हो गये।

इस मुठभेड़ में कैप्टन हार्ट अपनी जान गँवा बैठे होते। वे एक सिपाही की बन्दूक़ लेकर खोजों पर गोली दाग रहे थे। इस तरह बढ़ते बढ़ते वे एक खड्ड के किनारे पहुँच गये थे, जहाँ वे गिर पड़े। परन्तु उन्होंने जिस सिपाही की बन्दूक़ ले ली थी उसने उन्हें गिरते समय पकड़ लिया और वे बाल-बाल बच गये। उन्होंने उस आदमी को बड़ी उदारता के साथ पुरस्कृत किया। उसे इतना अधिक रुपया मिल गया कि उसने नौकरी छोड़ दी और सुख के साथ जीवन बिताने के लिए वह अपने घर ऊपरी प्रान्तों को चला गया।

इस साधारण घटना के बाद हमारी सेना लौट पड़ी और लोडरानी होकर भुज को चली। रन के पार करने पर हमें पहले की-सी कठिनाइयों का फिर सामना करना पड़ा, परन्तु उस उजाड़खण्ड से विजयी होकर लौटने के कारण वह सब उतना कष्टप्रद नहीं प्रतीत हुआ। शीघ्र ही हमने कच्छ के

प्रदेश में प्रवेश किया और भुज की ओर चले। भुज उस प्रदेश की राजधानी थी और हम अञ्जार नाम के नगर होकर गये। अञ्जार के पहाड़ी क़िले को पिछले भूकम्प से भारी हानि हुई थी। यह भूकम्प बुधवार १६ जून १८१९ को हुआ था। भुज पहुँचने पर कैप्टन हार्ट को बड़े ज़ोर का ज्वर आ गया। वे रेज़ीडेंसी में रह गये और सेना खैरा को चली गई। खैरा भुज और माण्डवी के बीच में एक छोटा सा गाँव था। यहाँ सेना ने छावनी डाल दी। पैदलों और घुड़सवारों की कई रेजिमेण्टें तथा एक तोपख़ाना उससे यहाँ आ मिला। ये सब यहाँ आनरेबल कर्नल एल० स्टैनहोप के सेनापतित्व में सिन्ध की सरकार को भयभीत करने के लिए एकत्र हुए।

कैप्टन हार्ट की बीमारी कड़ी थी। वे तीन हफ़्ते तक बीमार पड़े रहे। मैं बराबर उनके पास डटा रहकर भाई की तरह उनकी शुश्रूषा करता रहा। नीरोग हो जाने पर उनका स्वभाव चिड़-चिड़ा हो गया था। कृतज्ञ होने के स्थान में वे कदाचित् यह समझते थे कि मैंने उनके साथ जो कुछ किया था वह मेरा कर्तव्य था। अतएव हम एक-दूसरे से मित्र के रूप में नहीं विदा हुए। उनकी नौकरी छोड़ने पर मेरा मन संसार से खिन्न हो गया और मैंने माण्डवी में जहाज़ पर चढ़कर मक्का जाने का विचार किया। मैंने समुद्र-यात्रा की तैयारी की और अञ्जार के अपने मित्रों से अपनी यात्रा की बात कही। परन्तु उन्होंने मेरे पास काफ़ी रुपया न देखकर मना किया।

मैं अपने मित्रों की बात मान गया। मुंशी अव्वा मियाँ कृपा कर मुझे भुज से खैरा की छावनी को लिवा गये। उनकी सिफ़ारिश से मुझे छठी रेजिमेण्ट के लेफ़्टिनेण्ट एच० स्पेंसर को हिन्दुस्तानी पढ़ाने और कैप्टन बैगनाल्ड के लिए फ़ारसी के बम्बई के इतिहास की नक़ल करने का काम मिल गया। खैरा में डेरा

डालने के पहले मैं समुद्र का दर्शन करने के लिए माण्डवी गया। अपने जीवन में समुद्र को पहली बार देखकर मैं आश्चर्य से मुग्ध हो गया। दूसरे दिन मैं खैरा आ गया और अपने काम में लग गया। मुझे सबेरे से शाम तक काम करना पड़ता था। रात मेरी अब्बा मियाँ के साथ बीतती थी। उनसे मैंने अँगरेज़ी की वर्णमाला सीखी। इस समय से १८२९ ईसवी तक मैं अँगरेज़ी पढ़ता रहा। इस प्रकार ८ वर्ष के घोर परिश्रम के बाद मैं संसार की सबसे कठिन भाषा अँगरेज़ी सीख गया।

अब मैं कच्छ देश के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। यह भूभाग भारत के अन्य उपजाऊ प्रदेशों जैसा सुन्दर नहीं देख पड़ता। यहाँ मीठे जलवाली नदियाँ नहीं हैं। जो कुछ पहाड़ी नदियाँ हैं वे बरसात के बाद सूख जाती हैं। लोग इन नदियों के गर्भ में कुएँ खोदकर अपनी जल की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। शहरों और गाँवों में बड़े बड़े कुएँ हैं, पर उनका पानी अच्छा नहीं है।

इस भूखण्ड पर ईश्वरी कोप के चिह्न काफ़ी मिलते हैं। पहाड़ों के आस-पास की भूमि पर ज्वालामुखी पहाड़ों के गर्भ से निकले पदार्थ फैले हुए पाये जाते हैं। हाल के भूकम्प से अञ्जार और भुज के दुर्ग कई जगह टूट-फूट गये हैं। इनके सिवा यहाँ के अन्य सभी नगरों के क़िले तथा इमारतें ध्वंस हो गई हैं। निवासियों की एक बड़ी संख्या मकानों के नीचे आज भी दबी पड़ी है। बाहर से तो यहाँ के लोग अच्छे जान पड़ते हैं, परन्तु उनके बीच में कुछ समय तक रहने पर प्रकट हो जाता है कि उनमें सदाचार का अभाव है, यहाँ तक कि उनको उसका ज़रा भी ज्ञान नहीं है। लूट, चोरी और डाका आदि बहादुरी के काम समझे जाते हैं। व्यभिचार और बाल-हत्या का बाज़ार गर्म रहता है।

बाल-हत्या का दुष्कर्म यहाँ के साधारण लोग नहीं, किन्तु शासक जाति के लोग करते हैं। ये लोग जारजा (जाड़ेचा?) राजपूत हैं, जो सिन्ध की सुम्मा जाति के हैं और जिन्होंने जाम के नाम से प्राचीन समय में उस भूभाग पर शासन किया था। ये लोग इस दुष्ट रवाज को अपने साथ सिन्ध से लाये होंगे। यह हिन्दुओं का काम नहीं हो सकता। हिन्दू तो ऐसे काम के विचार तक से घृणा करते हैं। ये जारजा लोग अपने को इतनी ऊँची जाति का समझते हैं कि किसी को अपनी बेटी व्याह देने में अपनी जाति का अपमान समझते हैं। इसी मिथ्याभिमान ने इनके हृदय को इस दुष्कर्म के करने के लिए बहुत कठोर बना दिया है। जाँच करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि कच्छ की पाँच लाख आबादी में १२ हजार जारजा राजपूत हैं और इन राजपूतों में कुल ३५ स्त्रियाँ हैं। सौभाग्य से इस देश पर अँगरेज़ों की प्रभुता स्थापित होती जा रही है। यहाँ के भूतपूर्व राव अपनी दुश्चरित्रता के कारण गद्दी से उतार दिये गये थे। उनके पुत्र राव देसलजी के नाबालिग़ होने के कारण राज्य के शासन पर अँगरेज़ों की निगरानी रही, जिससे इस राज्य में अनेक सुधार किये गये।

मैं खैरा में छावनी के पास कुछ महीनों तक एक मस्जिद में रहा। जब मैं कैप्टन बैगनोल्ड की पुस्तक की नक़ल कर चुका तब उन्होंने उसके लिए मुझे काफ़ी अधिक पुरस्कार दिया। वह वर्ष समाप्त हो आया था। उस समय कर्नल स्टेनहोप के सेनापतित्व में फ़ौज के एक भाग को विद्रोहियों का दमन करने के लिए जहाज़ से द्वारका और बेट जाने का हुक्म हुआ। स्पेन्सर साहब की भी फ़ौज उस फ़ौज के साथ थी। हम लोग माण्डवी के बन्दरगाह में एक दोपहर को जहाज़ पर सवार हुए।

सबेरा होने के पहले ही हम अपने गन्तव्य स्थान को पहुँच गये। तोप की भयानक आवाज़ से मैं जाग पड़ा। हम लोग

गोमती के मुहाने से कुछ दूर पर उतर पड़े, परन्तु क़िले पर जो युद्ध हो रहा था, वह उस स्थान से साफ़ दिखाई पड़ रहा था। शत्रु की तोपों के कुछ गोले हम लोगों के सिर पर से निकल गये। इसी समय बन्दर पर एकाएक एक जङ्गी जहाज़ आ पहुँचा और उसने क़िले पर अपनी तोपें दागनी शुरू कर दीं। मेरियट नाम के एक नौजवान के नेतृत्व में वालंटियरों की एक टुकड़ी एक ओर से क़िले की दीवार पर चढ़ गई। उधर फाटक की ओर सेना धावा कर रही थी। बेचारा मेरियट ज्योंही दीवार के ऊपर जा चढ़ा, अपने साथियों के साथ काटकर नीचे गिरा दिया गया। परन्तु यह युद्ध बहुत देर तक नहीं ठहरा। क़िले के भीतर की सेना शिक्षित सैनिकों का मुक़ाबला करने में असमर्थ थी, अतएव उसमें घबराहट फैल गई और अँगरेज़ी सेना ने ज्योंही दूसरा धावा किया, उसका क़िले पर अधिकार हो गया। शत्रु संख्या में छः सौ थे। कुछ को छोड़कर वे सब के सब मार डाले गये। उन्होंने बहादुरी के साथ युद्ध किया और पुरुष की तरह युद्ध में काम आये। हमारी ओर नाममात्र की ही हानि हुई।

जोगीदास के नेतृत्व में कुमन जाति के काठी डाकू गिरनार के पहाड़ में रहते थे। उनका पीछा करके उन्हें विनष्ट करने का हुक्म हमारी रेजिमेण्ट को दिया गया। हम एक देशी जहाज़ पर सवार हुए और १८ घंटे की कष्टप्रद यात्रा कर सूर्य बन्दर में जा उतरे। यहाँ हमारी सेना दो कम्पनियों में विभक्त हो गई, जिन्होंने गिरनार में काठियों को ढूँढ़कर मार गिराया।

यह गिरिमाला भारत के अन्य पहाड़ों की अपेक्षा ज़्यादा ऊँची नहीं है, तथापि उपजाऊ और हरी-भरी होने के कारण बहुत ही अधिक नेत्र-सुखद है। इसे सभी हिन्दू अपना तीर्थ मानते हैं। श्वेताचल इसी का पुराना नाम है। यहाँ शेर से

लेकर सभी तरह के शिकारों की अधिकता है। जङ्गल में इधर-उधर जाने पर कभी कभी कोई हिन्दू साधु भी मिल जाता है।

एक दिन हमारी टुकड़ी तुलसी-श्याम के मठ को रवाना हुई। यह मठ पहाड़ के बीचोबीच था और वहाँ पहुँचने में तीन दिन लगते थे। वहाँ सेना की दूसरी टुकड़ियाँ भी एकत्र होने को थीं। हम लोग तुलसी-श्याम सही-सलामत पहुँच गये। वहाँ कई टुकड़ियाँ पहले से ही पहुँच गई थीं। उस छावनी में रसद की कमी की आम शिकायत थी। इस अवस्था की ओर सेनापति का ध्यान आकृष्ट किया गया। उसने मठ के महन्त को बुलाकर डाटकर कहा कि अगर वह उसे डाकुओं का ठीक-ठीक पता तथा सैनिकों को रसद नहीं देगा तो मठ को लूट लेने का हुक्म दे दिया जायगा। इस धमकी से महन्त का दिमाग़ ठिकाने आ गया। उसने कहा कि उसके यहाँ गेहूँ या चावल तो नहीं हैं, पर बजरी है, जो अभी पिसवा दी जायगी। चार बैलों की बड़ी भारी चक्की चलने लगी और कुछ घंटों के भीतर सारी सेना के एक दिन के लिए बाजरे का काफ़ी आटा तैयार हो गया। महन्त ने फ़ी आदमी एक पौण्ड आटा और उसी हिसाब से राब और घी सेना में बँटवा दिया। इसके लिए उसे जो रुपया दिया जाने लगा, उसने नहीं लिया। ख़ैर, इससे हम लोगों का काम चल गया।

तुलसी-श्याम को हिन्दू लोग पवित्र स्थान मानते हैं। यहाँ कृष्ण की एक छोटी सी मूर्ति है और उसके आगे गरम पानी का एक झरना है, जिसका पानी दो पक्के बने हुए कुण्डों में बहकर जाता है। इनके पानी से स्नान करना हिन्दू लोग बड़े पुण्य की बात मानते हैं।

तुलसी-श्याम में हम लोग चार दिन तक ठहरे रहे। इसके बाद फिर छोटी छोटी टोलियों में विभक्त हो गये। पहाड़ों में

छः हफ़्ते के भ्रमण में हमें एक भी जीवित डाकू नहीं मिला। इस प्रकार हम लोग पहाड़ों में तीन महीने तक घूमते रहे। अन्त में हमें सूचना मिली कि डाकू कई जगहों में पकड़े गये और मार डाले गये हैं। अतएव अब हमें धारी गाँव को जाना था, जहाँ हमें बरसात भर ठहरना था।

मेरा विद्यार्थी परिश्रमी और मन लगाकर पढ़नेवाला युवक था। उसने अपना सबक़ लेने में कभी त्रुटि नहीं आने दी। बरसात शुरू होने तक वह हिन्दुस्तानी भले प्रकार जान गया। अतएव उसने बम्बई जाकर परीक्षा देने को छुट्टी ले ली। गोगो तक मैं उसके साथ गया। यहाँ हम १७ सितम्बर १८२१ को एक-दूसरे से मित्र के रूप में बिदा हुए। मेरे बाक़ी वेतन के रुपयों के अलावा उसने एक अच्छी रक़म मेरी भेंट की और वह बम्बई चला गया। मुझे शीघ्र ही उसके 'पास' हो जाने की सूचना मिली और वह रेजिमेण्ट का क्वार्टर-मास्टर बनाया गया।

खम्भात के पश्चिम की ओर गोगो एक छोटा सा क़स्बा है। कहते हैं कि इसके बन्दरगाह के पास का पेरिम का टापू जब गुजरात के प्रायद्वीप से स्थलडमरूमध्य के द्वारा जुड़ा हुआ था तब वह प्राचीन गोयल राजपूतों की राजधानी था। अब टापू उजड़ गया है और वहाँ सरकार ने एक लाइटहाउस बनवा दिया है। उसमें भिन्न भिन्न आकार और रूप-रङ्ग के साँप रहते हैं। वहाँ की ज़मीन कुछ ही गहराई तक खोदने पर अति प्राचीनकाल के पशुओं और वनस्पतियों के फ़ोसिल प्राप्त होते हैं। अनेक योरपीय यात्री उनमें से कुछ को अपने देश ले गये हैं। गोगो के मुसलमान अधिवासी फ़ुर्त, मज़बूत और अच्छे डील-डौल के होने से बड़े कुशल मल्लाह होते हैं। गोगो में मैं तीन दिन रहा। चौथे दिन एक छोटे जहाज़ पर सवार हुआ और पाँचवें दिन सूरत पहुँच गया। जहाज़ पर ही मुझे मालूम हो

गया था कि चुङ्गीघर में यात्रियों को बहुत परेशान होना पड़ता है, भले ही उनके पास बिक्री का कोई माल न हो। मैंने मल्लाहों से तय कर लिया कि मुझसे आठ आना लेकर मुझे और मेरे सामान को चुपचाप बाहर-बाहर निकाल ले चलें। यह काम अँधेरे में ही हो सकता था, अतएव मैं सन्ध्या तक जहाज़ पर ही रुका रहा। इसके बाद दो मल्लाह मेरा सामान लेकर चले और मैं उनके पीछे हो गया। हम लोग बादशाही भागल (शाही फाटक) नामक जगह पर उतरे। वास्तव में वहाँ कोई फाटक नहीं था, किन्तु शहरपनाह के गिरे हुए दो सिरे थे जिनके बीच से लोग पानी लेने आया-जाया करते थे। यहाँ छोटी नावें भी बँधी रहती थीं। इस घाट से उस अँधेरे में मैं अपने पथ-प्रदर्शकों के पीछे-पीछे कुछ दूर तक गया। दुर्भाग्य से चुङ्गीघर के एक चपरासी ने आकर उन आदमियों को पकड़ लिया। वह उन्हें गालियाँ देने लगा। उसने उनसे चुङ्गीघर चलने को कहा। उसने कहा कि तुन्हें रात भर बन्द रक्खूँगा, दूसरे दिन जुर्माना कराऊँगा और माल भी ज़ब्त कर लिया जायगा। उसकी ये बातें सुनकर मैं बहुत डर गया। परन्तु मल्लाह इन बातों के आदी थे। उन्होंने कहा कि ये न तो व्यापारी हैं, न इनके पास बिक्री का माल है, इसके सिवा ये तुम्हारी फ़ीस देने को तैयार हैं। यह कहकर उनमें से एक ने मेरे हाथ को कोंचकर यह सङ्केत किया कि मैं चपरासी को उक्त फ़ीस दे दूँ। इस पर मैंने उसको फ़ीस दे दी और वह बिना कुछ कहे अपनी राह चला गया। मैं सबसे निकट की मस्जिद में ठहर गया, क्योंकि उस अँधेरी रात में मुझे रहने को कोई जगह न मिल सकी।

सूरत को मुसलमान लोग बाब-उल-मक्का (मक्के का दरवाज़ा) कहते हैं। यहाँ से यात्री मक्का शरीफ़ को जाते हैं। मैं यहाँ

चार दिन रहा। यह नगर तापती के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। इसके चारों ओर ईंट की शहरपनाह बनी हुई है। नगर छः मील के घेरे में है। शहरपनाह में जगह-जगह छोटे-छोटे बुर्ज़ बने हुए हैं। यह १३ से १८ फ़ुट तक ऊँची है। यह ज़्यादा मज़बूत नहीं बनाई गई थी। कभी इसकी मरम्मत भी नहीं हुई। इस समय यह बुरी दशा में थी। इसमें १२ फाटक हैं। इसके भीतर एक और शहरपनाह है, जिसके भीतर मुख्य शहर है। वह तीन मील के लगभग है। यह बाहरी दीवार जैसी ही बनी है, पर इसकी दशा उससे भी बुरी है और कहीं कहीं तो बिलकुल ज़मीन के सम हो गई है।

१५१२ ईसवी में यहाँ शहरपनाह नहीं थी और पुर्तगालवालों ने शहर को ख़ूब लूटा था। इसे जंज़ीरा के हबशी और ईसाई प्रायः लूटते रहते थे। यह हाल देखकर अहमदाबाद के अधिकारियों ने शहरपनाह और क़िला बनाने की आज्ञा दी, जो १५३० में बनकर तैयार हो गये। ये रूमी ख़ाँ नाम के एक तुर्की की देख-रेख में बनाये गये थे। शहर उजड़ा हुआ सा जान पड़ता है। जन-संख्या केवल १,२०,००० रह गई है। साठ वर्ष पहले इससे छःगुनी जन-संख्या थी। नगर पर अँगरेज़ों का पूरा शासन है। यहाँ कोई २० अँगरेज़ अफ़सर हैं। अँगरेज़ी दबदबा बनाये रखने के लिए यहाँ दो रेजिमेण्टें और गोलन्दाज़ों का एक दल भी रहता है। नवाबों के समय की अपेक्षा अँगरेज़ सरकार का यहाँ कहीं अधिक व्यय बढ़ गया है।

मुझे मालूम हुआ कि नगर के समीप ही पारसियों के कई अन्त्येष्टि-गृह हैं। उनके देखने की मुझे बड़ी इच्छा हुई और एक दिन सवेरे मैं वहाँ जाने को तैयार हो गया। मेरे मित्र मुइज्ज़िन ने मुझसे कहा कि जोखिम उठाना मूर्खता होगी,

क्योंकि वहाँ एक पुरोहित सदा पहरा देता रहता है। यदि कोई वहाँ के स्थानों को छूकर या देखकर अपवित्र कर देता है तो या तो वह मार डाला जाता है या उस पर बड़ी मार पड़ती है। यह सब सुनकर मेरी उत्सुकता और अधिक बढ़ गई। मैंने कहा—चाहे जो हो, मैं देखूँगा ज़रूर। मुझे वहाँ जाने को तुला हुआ देखकर मेरे मित्र ने कहा कि साँझ तक ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। दोपहर के बाद हम रवाना हुए। पूर्वी फाटक से निकलकर जब हम एक मील आगे गये तब हमें कई बुर्ज़ दिखाई दिये, जिनकी दीवारों पर बड़े बदसूरत गिद्ध बैठे हुए थे। हम एक वृक्ष के नीचे ठहर गये। सन्ध्या होने पर अपने मित्र को वहीं छोड़कर मैं बुर्ज़ की ओर चला। मेरे मित्र ने कहा—सावधान रहना। अगर कोई तुम्हारी तरफ़ जायगा तो मैं खाँस दूँगा। तुम तत्काल यहीं भाग आना। मैं एक मिनट में वहाँ जा पहुँचा और सीढ़ियाँ पार कर दरवाज़े पर पहुँच गया। दीवार चढ़ने में अभ्यस्त होने के कारण मैं तत्काल दीवार पर चढ़ गया। वहाँ से मुझे वहाँ का भयानक दृश्य दिखाई दिया। अपने पूर्ण रूप में एवं कफ़न के चिथड़ों में मिश्रित टुकड़ों के रूप में नर-कङ्काल वहाँ पड़े हुए थे। कुछ तो बाहर पड़े हुए थे और कुछ गड्हे के बीच में गिर गये थे। वहाँ की तीक्ष्ण बू के कारण मैं पाँच मिनट से अधिक समय तक नहीं ठहर सका। मैं शीघ्रता से उतरने लगा, परन्तु दुर्भाग्य से मेरे हाथ दीवार से खिसक गये और मैं दीवार की रगड़ से छिलता हुआ नीचे आ गिरा। मेरे गिरने की आवाज़ से वहाँ का पारसी रक्षक सचेत हो गया। उसकी छोटी-सी झोंपड़ी मुझसे २०० गज़ के लगभग दूर रही होगी। वह उसके भीतर से गाली देता, हाथ में लाठी लिये, बड़े क्रोध के साथ निकला। वह चिल्लाने लगा कि डाकू मारे डाल रहे हैं। उसका शोर

करना और मेरे मित्र का खाँसना एक ही साथ हुआ। मैं वृक्ष के नीचे भाग आया। वहाँ से हमें मालूम हुआ कि बेचारा पहरेदार बुड्ढा है और आँख से भी कम देखता है। उसकी मदद को कोई नहीं आया और हम लोग चुपचाप घर चले आये।

२९वीं सितम्बर को सवेरे मैं सूरत से भड़ोच को चला। माल-असबाब ले चलने के लिए तीन बेगारी कर लिये। मार्ग में प्रत्येक गाँव में इन्हें बदल देना पड़ता था। मैं इनको उदारता के साथ मज़दूरी देता आया। पैसे दो पैसे की ताड़ी पिला देने से ये ग़ुलाम से हो जाते थे। दो तो असबाब लेकर चलते थे। तीसरा मेरा पाइप जब तब ठीक करता, धूप से बचाने के लिए मेरे सिर पर छाता लगाकर चलता और जहाँ ठहरते वहाँ देह मल देता। बरसात अभी-अभी ख़त्म हुई थी, तो भी धूप बहुत तेज़ थी। इस ज़िले के नीच लोगों के लिए ताड़ी एक विपत्ति सी आई है। प्रत्येक गाँव में उसकी दूकानें हैं और सड़क भी उससे बचने नहीं पाई है। एक-एक, दो-दो मील पर ताड़ी की दूकान मिलती है। दूकानदार आम तौर से पारसी हैं, जो बड़े मधुर ढङ्ग से पीनेवालों को बुलाते हैं।

मैं ३०वीं सितम्बर की शाम को भड़ोच पहुँच गया। वह सूरत से ३० मील है। मुझे क़रीब-क़रीब आधोआध में चौकी नामक जगह में एक रात ठहरना पड़ा था। भड़ोच एक हरे-भरे ज़िले के बीच में स्थित है, परन्तु है गिरा-पड़ा ही। वह कुछ तो एक छोटी पहाड़ी पर और कुछ उसके आस-पास नर्मदा के उत्तरी तट पर बसा हुआ है। नर्मदा खम्भात की खाड़ी में गिरती है, जो वहाँ से २५ मील दूर है। यहाँ के मकान सूरत के जैसे बने हुए हैं, परन्तु गलियाँ तङ्ग और गन्दी हैं। सन् १८०३ में अँगरेज़ों ने इसे दौलतराव सिन्धिया से लिया था। मैं यहाँ एक दिन और दो रात रहा।

मैं भड़ोच में सैयद इस्माइल साहब का 'पीर छत्तर' देखने गया। यह मक़बरा तीन सौ वर्ष का बताया जाता है। शहर के पश्चिमी फाटक के बाहर यह एक ऊँची जगह पर बना हुआ है। इसके बीच में एक हौज़ है, जो ५ .फुट ४ इञ्च लम्बा, १ .फुट ८ इञ्च चौड़ा और १ .फुट २ इञ्च गहरा है। इसके बीच में एक इञ्च ऊपर उठा हुआ एक टापू है, जिस पर चार .फुट लम्बा और एक .फुट चौड़ा मक़बरा बना हुआ है। यह हौज़ लबालब ठंडे पानी से भरा रहता है। पानी कुछ नमकीन है। प्रत्येक गुरुवार को यहाँ सैकड़ों आदमी आते हैं और हौज़ से सभी लोग एक एक गिलास पानी निकालते हैं। परन्तु वह जैसा का तैसा ही भरा रहता है। उसका पानी न निकाला जाय तो भी वह कभी बहने नहीं लगता है। जब मैं वहाँ गया था तब पचास आदमी मौजूद थे। सभी ने हौज़ का पानी पिया, पर वह मुँह तक ज्यों का त्यों भरा रहा।

मैं भड़ोच से दो दिन में बड़ौदा पहुँच गया। १०वीं अक्टूबर को बड़ौदा से अपने घर को चला और १३ दिन की यात्रा में राज़ी .खुशी घर पहुँच गया।

घर पहुँचने पर मैंने देखा कि हमारे नौजवान राजा रामचन्द्र-राव सिंधिया की लड़की के साथ विवाह करने के लिए ग्वालियर जाने की तैयारी कर रहे हैं। मैंने एक छोटा सा घोड़ा ख़रीद लिया और नौकरी प्राप्त करने की आशा से बारात के साथ हो गया। कुछ मञ्ज़िलें तय करने के बाद राबिनसन नाम का एक अँगरेज़ राजनैतिक अफ़सर राजा के साथ चलने के लिए हम लोगों से आ मिला। राजा ने उसे बड़े सम्मान के साथ लिया। उसने राजा को और उसके मन्त्री रघुनाथराव बापू को कुछ पत्र दिये, जो फ़ारसी में थे। कुछ देर तक राजा के पास रहकर वह अपने ख़ेमे में लौट आया। राजा के साथ

के लोगों में कोई भी फ़ारसी नहीं जानता था। मन्त्री ने पूछ-ताछ की कि बारात में कोई फ़ारसी जाननेवाला है या नहीं। इस पर एक चोबदार ने मुझे ले जाकर उनके सामने पेश किया। मैंने यथाविधि राजा का अभिवादन किया और उनके आसपास बैठे हुए सरदारों को हाथ उठाकर सलाम किया। मुझे बैठ जाने की अनुमति मिली और वे काग़ज़-पत्तर मुझे पढ़ने को दिये गये। मैंने उन्हें भले प्रकार पढ़कर और उनका मराठी में अनुवाद करके उपस्थित मण्डली को चकित कर दिया। मन्त्री बड़ा चतुर, बहादुर और बुद्धिमान् आदमी जान पड़ता था। वह मेरे काम से बहुत .खुश हुआ। जब मैं दरबार से चला आया तब उसने अपने एक क्लर्क को मेरे पास भेजा। उसने कहा कि मन्त्री महोदय आपको अपने पास रखना चाहते हैं और १५) मासिक वेतन के सिवा सरदारों के साथ कलेवा और रात का भोजन एवं घोड़े का भत्ता भी दिया जायगा। मैं तो यह चाहता ही था। मैंने उस प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया।

मुझे नित्य दो बार दरबार में राजा या मन्त्री या दोनों को सलाम करने जाना पड़ता था। मुझे उनके लिए महीने में तीन या चार चिट्ठियाँ लिखनी पड़ती थीं और कभी कभी दोपहर में एक या दो बार शतरञ्ज खेलनी पड़ती थी जिसमें मुझे जान-बूझकर हार जाना पड़ता था। परन्तु इससे भी अधिक दुःख की बात यह थी कि मन्त्री सदा इस बात के लिए सावधान रहता था कि कहीं राजा साहब मेरी योग्यता पर मुग्ध न हो जायँ।

विधिवत् विवाह हो जाने पर हम सब लोग सिंधिया महाराज के महल में बुलाये गये। हमें बहुत बढ़िया दावत दी गई और नाच-गान से हमारा सत्कार किया गया। महाराज सिंधिया स्वयं तो रवाज के कारण वहाँ नहीं आये, परन्तु उनके सभी सरदार हम लोगों को खिलाने का प्रबन्ध कर रहे थे।

भोजन के बाद हम लोगों को अपने अपने दर्जे के अनुसार बढ़िया बढ़िया पोशाकें दी गईं। इसके बाद इत्र, गुलाब-जल और विदाई-सूचक सोने के वर्क़ लगे पान दिये गये। दूल्हे को छोड़कर हम सब लोग अपनी जगह चले आये। दूल्हा वहीं महल में अपने कमरे में सोने के लिए चला गया।

उक्त भोज के एक सप्ताह के बाद हम लोगों के लौटने की तैयारी होने लगी। सिंधिया की छावनी में दो महीने तक रहने के बाद हम लोग विदा हुए। अब हमारा दल बहुत बड़ा हो गया था। विवाह में जो हाथी-घोड़े तथा दास-दासियाँ एवं माल-असबाब मिला था उससे हमारा लवाज़मा पहले से कहीं अधिक बढ़ गया था। एक अनुभवी मरहठा अफ़सर के नेतृत्व में एक सुदृढ़ रक्षक दल भी हम लोगों के साथ कर दिया गया था। धीरे धीरे चलकर हम लोग राज़ी ख़ुशी दुल्हिन को लेकर अपने स्थान पर पहुँच गये।

एक और बात से मेरा क्षोभ अधिक बढ़ गया था। भोज के दिन हम लोगों को जो पोशाकें दी गई थीं वे सब की सब लौटने के समय हम लोगों से लेकर सरकारी भाण्डार में जमा कर दी गई थीं और उनके बदले कम मूल्य की पोशाकें बाज़ार से ख़रीदकर हम लोगों को बाँट दी गई थीं। परन्तु इस प्रसाद के लिए भी १५ दिन तक मेरी सुध नहीं ली गई। भिलसा पहुँचने पर एक नौकर के साथ मेरे पास एक क्लर्क आया। वह नौकर एक बण्डल लिये था। मेरे पास बैठकर क्लर्क ने उस बण्डल को खोल डाला और एक पगड़ी तथा दो दुशाले लेकर मुझे दिये। वे उनसे बहुत ही घटिया थे जो दावत के दिन हमें मिले थे। इसके सिवा उनके से मोतियों की वह कण्ठी भी नहीं थी, जो कपड़ों के साथ हमें दी गई थी और जो दो सौ रुपये तक की रही होगी। मैंने क्लर्क से कण्ठी के बारे में पूछा

कि वह क्यों रोक ली गई है। पर उसे वह सब नहीं ज्ञात था। लाचार होकर मैंने उस भेंट को स्वीकार कर लिया और रवाज के मुताबिक़ उसके लानेवालों को काफ़ी रुपया पुरस्कार में दे दिया ताकि उनके मालिक को मालूम हो जाय कि मैं उदार और स्वतन्त्र विचार का हूँ। घर पहुँचकर मैंने इस्तीफ़ा दे दिया, यद्यपि मन्त्री ने वेतन बढ़ा देने को कहा तथा बहुत कुछ अनुरोध भी किया। कुछ समय के लिए मैं फिर स्वाधीन और स्वतन्त्र हो गया।

मैंने घर में रहकर योंही कुछ दिन बिता दिये। इसी बीच में वहाँ सर डेविड आक्टरलोनी आये। वे ऊपर से तो राजा को विवाह की बधाई देने आये थे, पर भीतर से राज्य का कोई काम था। वे हमारा रौज़ा भी देखने आये और हमें पुष्कल-धन पुरस्कार में दिया।

सदा उससे उसके गँवारू ढङ्ग, भद्दी पोशाक और बात-चीत के कारण घृणा ही की, उसके साथ कभी विनम्रता का व्यवहार नहीं किया। जिस व्यक्ति ने मेरा उत्तम आतिथ्य किया था उसके साथ जो रूखा व्यवहार मैंने किया था उसके लिए मुझे दुःख हुआ। उससे माफ़ी माँगना मेरे लिए लाज़िमी हो गया था। अतएव उससे मिलने के लिए मैं उसके दफ़्र में गया। हाजी जी एक पुरानी गद्दी पर एक पुराना तकिया लगाये बैठे थे। उनके नौकर-चाकर अच्छे कपड़े-लत्ते पहने हुए थे। उनमें से प्रत्येक हाजी जी की अपेक्षा अधिक भड़कीला दिखाई देता था। वहाँ कुछ अँगरेज़ भी, हाथों में हैट लिये, उनके आदेश की प्रतीक्षा में खड़े थे। हाजी जी ने वड़े शिष्टाचार के साथ मेरा स्वागत किया और मुझे अपने पास विठाया। अब मैंने अपने रूखे व्यवहार के लिए उनसे क्षमा माँगी। उन्होंने कहा, मनुष्य मिट्टी का ही वना है, उसे सदा विनम्र होना चाहिए। मैंने उनसे अपने लिए एक पासपोर्ट माँगा, क्योंकि उन दिनों विना ऐसा कागज़ दिखाये कोई वम्वई से जा नहीं सकता था। उन्होंने कहा, शपथ लो कि तुम मुझे धोखा नहीं दे रहे हो। मैंने शपथ की और उन्होंने अपने आदमियों को पासपोर्ट लिख देने का आदेश किया। उसी समय वह लिखा गया और उस पर दस्तख़त कर हाजी जी ने वह मुझे दे दिया। मैं उन्हें धन्यवाद देकर मस्जिद को लौट आया।

वम्वई में चार दिन रहने के वाद मैं पनवेल जाने के लिए एक देशी नौका पर सवार हुआ। पनवेल वम्वई से लगभग २१ मील दूर है। हम लोग ५ वजे सन्ध्या को चले और दूसरे दिन सवेरे छः वजे वहाँ पहुँच गये। अनजान लोग इस छोटी यात्रा को साधारण वात समझ सकते हैं, परन्तु मेरे लिए तो वह एक कठिन परीक्षा ही सिद्ध हुई।

पनवेल में सवेरे उतरने पर मैंने वहाँ एक बरगद के नीचे दिन भर विश्राम किया। बम्बई के उस समय के गन्दे शहर में चार दिन रहने और उस अत्यन्त गन्दी नौका में एक रात यात्रा करने के बाद मैंने यहाँ अच्छी तरह स्नान किया और अपने सारे वस्त्र धो डाले। मैंने दूसरे दिन पूना की राह ली, जो वहाँ से ७० मील पर है। खण्डाला के दर्रे तक सड़क बहुत अच्छी थी। यह जगह पनवेल से कोई ३० मील थी। यह दर्रा बहुत ऊँचा नहीं है, केवल दो हज़ार .फ़ुट के लगभग ऊँचा है, तो भी उससे होकर गाड़ियों का जाना असम्भव था और बोझ से लदे हुए जानवरों का उस पर चढ़ना बहुत ही कठिन था। पनवेल से २५ मील प्रतिदिन के हिसाब से चलकर मैं तीन दिन में पेशवा की राजधानी पूना पहुँच गया। भूतपूर्व पेशवा के राज्य पर १८१८ ईसवी में अँगरेज़ों ने चढ़ाई की थी, और पूना अब एक अँगरेज़ी ज़िला हो गया था। यह नगर उज्जैन जैसा है। अन्तर इतना ही है कि यह पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यहाँ का क़िला, जिसे राजमहल कहते हैं, ज़रा भी ध्यान देने योग्य नहीं है। यह जेलख़ाना जैसा है और इसमें एक ही प्रवेश-द्वार है। यह चौड़ी और ऊँची दीवारों का बना है और इसमें चार गोल बुर्ज हैं। उत्तर की ओर से नगर में प्रवेश करने पर मुझे भूता नदी पार करनी पड़ी। यह कुछ दूर आगे चलकर मूला से मिल जाती है। इनका यह सन्धि-स्थल सङ्गम कहलाता है। पेशवा के समय में रेज़ीडेण्ट का मकान यहीं था। मैं यहाँ दो दिन रहा। नगर को देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई। मैंने यहाँ की धन-दौलत और शान-शौकत के बारे में बहुत कुछ सुन रक्खा था। लोगों ने बताया कि इसकी सारी शान-शौकत इसके पहले के स्वामियों के साथ चली गई। यहाँ तक कि आबादी भी पाँच लाख से घटकर १ लाख १२ हज़ार के लगभग रह गई है।

मेरे मन में आया कि 'पर्वती' पहाड़ी पर चढ़कर उसकी चोटी से नगर का दृश्य देखा जाय। एक पथ-प्रदर्शक साथ लेकर मैं शीघ्र ही पहाड़ी पर जा चढ़ा। वहाँ से नगर का भव्य दृश्य दिखाई दिया। नगर, अँगरेज़ी छावनी, नगर के उपनगर और पेशवा का आम का नौलखा बाग़, सब अलग अलग दिखाई दिये।

मैं दूसरे दिन पूना से सतारा को चला। वहाँ से सतारा ५६ मील के लगभग था। मैं तीन दिन में, ३० मार्च १८२३ को सतारा पहुँच गया। सतारा पहाड़ी भूभाग में है और तीन ओर से ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ है। यहाँ के क़िले को देखकर मुझे उसके पतन की एक घटना याद हो आई। जिस दिन इस क़िले पर शाही सेनाओं का क़ब्ज़ा हुआ, इसकी सूचना देने के लिए औरङ्गज़ेब का सेक्रेटरी नियामतख़ाँ उसके पास दौड़ा गया। उस समय बादशाह अपने ख़ेमे के बाहर बैठे क़िले की ओर देख रहे थे और अँगुलियों से ईश्वर का नाम जप रहे थे। बादशाह ने पूछा कि क्या ख़बर है। नियामतख़ाँ ने कहा कि श्रीमान् की प्रार्थना के फल-स्वरूप क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो गया है और इस घटना का सन् भी आपकी अँगुलियों से व्यक्त होता है। जप करने से अँगूठा तो भीतर की ओर था और चार अँगुलियाँ बेंड़ी बेंड़ी फैली हुई थीं, जिसका अर्थ हुआ सन ११११, अर्थात् सन् १७०० ईसवी।

अँगरेज़ी छावनी और रेज़ीडेंसी नगर से कोई दो मील पूरब ओर थी। मैं छावनी को गया, जहाँ तुलसी-श्याम के मेरे पुराने मित्र सिकन्दरख़ाँ से भेंट हो गई। ये अब रेजिमेण्ट के हवलदार मेजर थे। मैं छावनी में इन्हीं के यहाँ ठहर गया। ये बड़े स्नेही, विनम्र और अतिथि-प्रेमी निकले।

मेरे आने की ख़बर छावनी भर में फैल गई। उस समय वहाँ कोई योग्य शिक्षक नहीं था, अतएव मुझे पढ़ाने को छः

अँगरेज़ मिल गये। आय जरूर अच्छी थी, परन्तु काम भी बड़े परिश्रम का था। सारा दिन पढ़ाने में ही बीत जाता था। रात में डाक्टर गिलक्राइस्ट की किताबों की सहायता से मैं अँगरेज़ी पढ़ा करता। इस प्रकार मैं उस छावनी में छः वर्ष तक रहा। इस अवधि में मुझसे जितने नौजवान अफ़सरों ने पढ़ा, वे सब भाषाओं की अपनी परीक्षाओं में पास हो गये। मेरा नाम भी हुआ और दाम भी ख़ूब मिले।

अपने मित्र के साथ कुछ समय तक रहने के बाद मैंने शहर में एक अच्छा सा घर ले लिया। मैं रात में वहीं रहता था। मैं अपना समय एकान्त में व्यतीत करता था, परन्तु नौकरों की लापरवाही से जब घर-सम्बन्धी झमेले उठ खड़े होते तब मेरे कार्य में बाधा पड़ती थी। अतएव लाचार होकर मैंने २३ सितम्बर १८२४ को एक नौजवान स्त्री के साथ शादी कर ली। इससे मेरी भेंट कच्छ में हुई थी। दुर्भाग्य से वह यहाँ मेरे आने के पहले ही आ गई थी। मनुष्य स्वभावतः प्रलोभनों के चक्कर में पड़ जाता है। वैवाहिक जीवन के सुख की कल्पना क्षणिक ही सिद्ध हुई, और मैं पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गृहस्थी की चिन्ताओं में फँस गया। जब मैं क्वारा था, मुझे केवल अपनी चिन्ता रहती थी; परन्तु अब मुझे एक दूसरे व्यक्ति की भी चिन्ता करनी पड़ती थी। इसी तरह जहाँ पहले मेरी थैली भरती जाती थी, वहाँ वह ख़ाली होने लगी। परन्तु सबसे अधिक दुःख की बात यह थी कि मेरी स्त्री का स्वभाव ओछा था।

एक सुबह को मैं लेफ़्टिनेण्ट इ० एम० इयर्ले के पास बैठा था। ये मुझसे फ़ारसी पढ़ते थे। हमें ख़बर मिली कि नदी के किनारे महोली गाँव में एक स्त्री सती हो रही है। हमें विश्वास हुआ कि राजधानी के समीप अँगरेज़ रेज़ीडेण्ट के रहते

भी ऐसी भयङ्कर घटना हो सकती है। हम लोगों की इस विषय की बात-चीत मुश्किल से ख़त्म हो पाई थी कि सती के जुलूस को देशी बाजे के साथ सड़क पर से रेज़ीडेण्ट के फाटक के पास से जाते देखा। यह देखकर हम लोग दौड़कर अपने घोड़ों के पास गये और उन पर सवार होकर उस हत्या-काण्ड के स्थान को चले। लगभग आध घण्टे में हम वहाँ पहुँच गये। सूर्य की धूप बहुत कड़ी थी। हम लोगों के बाद ही मेरे एक दूसरे विद्यार्थी डाक्टर एम० एफ़० केई भी उस बुरी ख़बर को सुनकर वहाँ आ गये।

नदी-किनारे के एक सघन पीपल की छाया के नीचे १५ मिनट तक प्रतीक्षा करने के बाद वह जुलूस वहाँ आ गया और ब्राह्मण-शव-वाहकों ने शव को नदी के पानी से छूते हुए रख दिया, ताकि शव के पैर पानी से धुलते रहें। शव का चेहरा और हाथ खुले छोड़ दिये गये थे। मृत ब्राह्मण शरीर से बलिष्ट, लगभग ४० वर्ष का जान पड़ता था।

उस मृत व्यक्ति को देखकर हम लोग उस नौजवान स्त्री के पास गये। वह लाश से कुछ दूर, एक दूसरे पीपल के नीचे, बैठी थी। उसके सम्बन्धी तथा दूसरे लोग उसे घेरे हुए खड़े थे। वे सब बीस के लगभग थे। वह इनसे बातें कर रही थी और भविष्य की अनेक बातें बता रही थी। वह सुन्दर थी। उसकी अवस्था कोई १५ वर्ष की रही होगी। उसके चेहरे से भय या क्लेश का भाव ज़रा भी नहीं व्यक्त हो रहा था। लेफ़्टिनेण्ट इयर्ले अच्छी मरहठी बोलते थे। मौक़ा पाते ही वे उससे बातचीत करने लगे। सती हो जाने का विचार त्याग देने के लिए उन्होंने उसे बहुतेरा समझाया और यहाँ तक कहा कि उसका यह काम धर्म के विरुद्ध होगा, जिससे उसके इहलोक-परलोक दोनों बिगड़ जायँगे। उसने जवाब दिया कि आप चाहे जो कहें, पर

मैं तो अपने स्वामी के साथ जाऊँगी। मैंने एक उसी से प्रेम किया है। जहाँ वह जायगा, उसके साथ जाऊँगी। साहब, आप इस सम्बन्ध में अधिक कष्ट न करें।

मेरे और डाक्टर केई के कहने पर इयर्ले साहब ने उससे फिर कहा कि एक बार फिर विचार करो और बुद्धि के विरुद्ध कार्य न करो। तुम्हारे ज़रा सा 'हाँ' कहने पर हम लोग तुम्हें मृत्यु से बचा लेंगे। यहीं नहीं, तुम्हारे जीवन भर के लिए जीविका का भी प्रबन्ध कर देंगे। अपना यह सुन्दर शरीर आग के मुँह में झोंकने के पहले तुम्हें अपनी छोटी अँगुली जलाकर परीक्षा कर लेनी चाहिए। इस पर उसने घृणा की मुस्कराहट के साथ कहा कि आपकी इस कृपा के लिए मैं अति कृतज्ञ हूँ; परन्तु अब जो एक बार कह दिया, कह दिया। उसे बदलूँगी नहीं। इसके बाद उसने अपना रूमाल फाड़कर उसकी चिट से अपनी अँगुली को लपेटा। फिर सामने जलते हुए चिराग़ के तेल में डुबोकर उसने बड़े उत्साह से उसे जला दिया। थोड़ी देर तक उसकी अँगुली मोमबत्ती की तरह जलती रही और उससे मांस के जलने की दुर्गन्ध आने लगी। इस बीच में वह पास बैठे हुए लोगों से बराबर बातें करती रही और उसने एक बार भी आह तक न की। इस समय तक चिता तैयार हो गई थी। शव को भी स्नान कराके चिता पर लिटा दिया गया था। लगभग [आ]धा पौण्ड कपूर की एक पोटली उसके गले से बाँध दी गई थ। वह तेज़ी से उठ खड़ी हुई और देवताओं की प्रार्थना क[र]ती हुई चिता की ओर दौड़ गई। उसने सात बार चिता की [प]रिक्रमा की और फिर उसमें प्रवेश कर अपने पति [का] सिर अपनी गोद में रख लिया और अपने बायें पैर के तथा [दा]के बग़ल की अँगुली से एक जलती हुई बत्ती [से] चिता [में] खुद आग लगा ली। चिता में उसके

पर ब्राह्मण तथा दूसरे लोग 'राम राम' कहने लगे तथा बाजे बजाने का आदेश दिया। ज्यों ही चारों ओर से लपटें निकलने लगीं, उन्होंने चिता के चारों कोनों की रस्सियाँ काट दीं, जिससे सारी लकड़ियाँ उस लड़की के ऊपर गिर पड़ीं और वह उनके नीचे दबकर थोड़ी देर में जलकर राख हो गई। बाजे बन्द हो गये और जो लोग अभी तक खड़े थे, चिता के बुझ जाने की प्रतीक्षा में पीपल के नीचे जाकर बैठ गये ताकि राख को नदी में फेककर घर को लौटें। हम लोग दुखी और खिन्न-मन होकर अपने-अपने स्थान को लौट आये।

हिन्दुओं का धर्म स्वच्छ और श्रेष्ठ है। उनका धर्म उन सभी अपराधों का निषेध करता है जो वर्तमान सभ्य संसार में दण्डनीय समझे जाते हैं। इसके सिवा आत्म-हत्या, बाल-वध एवं सभी प्रकार के बलिदान हिन्दू-धर्म में घृणित अपराध समझे जाते हैं। परन्तु मिथ्या विश्वासों, कल्पित कथाओं और धर्माचार्यों के स्वार्थपूर्ण चरित्र ने युगान्तर में इस दर्जे की चरित्र-हीनता तथा अनाचार को जन्म दे दिया है कि वर्तमान समय के हिन्दू स्वयं अपने वेदान्तियों की दृष्टि में धर्मच्युत हैं।

सतारा में रहते समय मुझे एक बड़े प्रसिद्ध अँगरेज़ के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये बम्बई के गवर्नर ऑनरेबुल माउण्ट स्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन थे। राज्य में किसी राजनैतिक कार्य से आये थे और आये थे उस समय जब राजा की कन्या का विवाह पूना के घोरपड़े के लड़के के सा[illegible] हो रहा था। इस अवसर पर नगर के रईसों को महल[illegible] पन्द्रह दिन तक दावत दी गई थी। मैं भी मेहमानों में [illegible]। गवर्नर और राजा की बातचीत भी मैंने सुनी थी। एक बात मुझे याद भी है। राजा ने पूछा था कि गवर्नर महोदय [illegible]नसे हिन्दुस्तानी में क्यों बातचीत करते हैं जब कि वे मरह[illegible] .खूब

जानते हैं। उन्होंने केवल यही जवाब दिया था कि मैं श्रीमान् की अपेक्षा हिन्दुस्तानी अच्छी बोलता हूँ और श्रीमान् की मरहठी मेरी अपेक्षा स्वभावतः अच्छी होगी।

मैं छः वर्ष तक सतारे में रहा था। इस काल में मैंने खा-पीकर अपने पास इतना रुपया बचा लिया था कि हम बिना नौकरी किये छः महीने तक आराम से रह सकते थे।

परन्तु जब छठी रेजिमेण्ट दूसरे स्टेशन को चली गई और उसके साथ मेरे अनेक अच्छे मित्र भी चले गये, तब वहाँ मुझे अच्छा न लगने लगा। इसके सिवा वहाँ का जलवायु और मरहठों की नीरस सङ्गत मुझे अरुचिकर प्रतीत होने लगी। मौक़ा पाते ही मैंने उस जगह को छोड़ देने का विचार किया। सौभाग्य से इसी बीच में तोपख़ाने के लेफ़्टिनेंट वेब को सूरत जाने का हुक्म हुआ। पहले कुछ समय तक उन्होंने मुझसे पढ़ा था। उन्होंने मुझसे पढ़ाने के लिए साथ चलने को कहा। मैंने स्वीकार कर लिया और तुरन्त सूरत को प्रस्थान कर दिया, जहाँ मैं अपने कुटुम्ब के साथ अप्रेल १८२८ को पहुँच गया। यहाँ मुझे आशा से अधिक विद्यार्थी मिले, अतएव दक्षिण की अपेक्षा मैं यहाँ ज्यादा मज़े में रहा।

इस समय तक मैं काफ़ी अँगरेज़ी सीख चुका था। मैं अच्छी तरह लिख और पढ़ सकता था। बोलता तो इतना अच्छा था कि मेरे अँगरेज़ मित्र मुझसे हँसी में प्रायः पूछने लगते थे कि क्या तुम्हारे माता-पिता दोनों भारतवासी हैं या उनमें से एक अँगरेज़ है। ऐसे गँवारू प्रश्न के उत्तर में मैं केवल मुस्कराकर धन्यवाद दे देता था और कहता था कि उस प्रशंसा के योग्य मैं नहीं हूँ। सूरत में मुझे वैज्ञानिकों और साहित्यिकों के साथ उठने-बैठने का अवसर मिला। परन्तु अरबी का कम ज्ञान होने के कारण मैं उनसे समुचित लाभ नह

उठा सका। अतएव मैंने अँगरेज़ी के बाद दुनिया की सबसे कठिन भाषा अरबी के सीखने का तन, मन और धन से विचार किया।

मैं धैर्य के साथ अरबी पढ़ने लगा और इस सिलसिले में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, सबका मैंने प्रसन्नता से स्वागत किया। दिन तो मैं जीविकोपार्जन में ख़र्च करने लगा और रातें किताबें पढ़ने में बीतती थीं। तीन वर्ष के घोर परिश्रम के बाद मुझे अपने नये प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई। शेख़ ताजुद्दीन ने मुझे मुसलमानी क़ानून के और मीर ईसा ने चिकित्सा-विज्ञान के पण्डित होने के सर्टीफ़िकेट दिये।

सूरत के मेरे विद्यार्थियों में १२वीं रेजिमेण्ट के एक डब्ल्यू० जे० ईस्टविक थे। ये बड़ी प्रखर बुद्धि के थे। स्वभाव के भी वैसे ही उदार थे। थोड़े ही समय में इन्होंने मुझसे हिन्दुस्तानी और फ़ारसी सीख ली और वैसे ही अरबी का व्याकरण भी पढ़ डाला। जब तक ये भारत में रहे, मैं बराबर इनके साथ रहा। कुछ ही बार, अधिक प्राप्ति के लोभ से, मुझे इनका साथ छोड़ना पड़ा। परन्तु इनके कृपापूर्ण व्यवहार के कारण मुझे जल्दी-जल्दी इनके पास लौट-लौट आना पड़ा।

शोलापुर से जान राम्से (इन्साइन) ने मुझे बुलाया था, अतएव १८२९ की मई में मैं वहाँ गया। शोलापुर सूरत से ४५० मील दूर था। बम्बई और पूना होकर मैं वहाँ १४ दिन में पहुँचा। यह शहर उजड़ा हुआ था। यह एक मज़बूत शहरपनाह से घिरा हुआ है। इसके दक्षिण-पश्चिम ओर पत्थर का एक सुदृढ़ क़िला है जो एक गहरी खाई से घिरा हुआ है। खाई का सम्बन्ध क़िले के दक्षिणस्थ तालाब से है। नगरनिवासी मुख्यतः मरहठा हैं, जो संख्या में २२ हज़ार के लगभग हैं।

दक्खिन एक गर्म मुल्क है, परन्तु वृक्ष-रहित शोलापुर तो विशेष रूप से गर्म है। वहाँ पहुँचने पर मैं छावनी में गया, जो शहर से बाहर कुछ ही दूर पर थी। जान राम्से साहब ने बड़े सम्मान के साथ मुझे लिया। उनके साथ मैं सात महीने रहा। इस बीच में उन्होंने अच्छी तरह हिन्दुस्तानी सीख ली; मैं भले प्रकार पुरस्कृत होकर सूरत लौटा। यहाँ मिस्टर ईस्टविक ने आदर के साथ लिया और पूर्ववत् नौकर रख लिया।

दुर्भाग्य से १८३१ के सितम्बर के प्रारम्भ में मिस्टर ईस्टविक को बड़ा कड़ा बुख़ार हो गया। लगातार पाँच दिन तक वे ज्वर से पीड़ित रहे। उनके अँगरेज़ मित्रों को उनके बचने की कोई आशा न रही। मैं दिन-रात उनकी शुश्रूषा में रहा। वे बहुत कमज़ोर हो गये। मेरी सलाह के अनुसार वे बम्बई चले गये। अपने घोड़े और अपना सारा सामान वे मुझे सौंप गये। अगर दो-तीन दिन और न जाते तो निस्सन्देह उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता। जो डाक्टर उनकी दवा करता था, हरवक़्त शराब के नशे में चूर रहता था और रोगी की ज़रा भी परवा नहीं करता था।

२० अक्टूबर को मुझे मिस्टर ईस्टविक का पत्र मिला। उसमें उन्होंने अपने अच्छे हो जाने की बात लिखी थी। उन्होंने यह भी लिखा था कि मैं उनके घोड़े और सामान लेकर टनकरिया जाऊँ। वहाँ वे लार्ड क्लेर के साथ के सैनिकों के अफ़सर होकर उनके साथ जा रहे हैं। तदनुसार मैंने काम किया और टनकरिया बन्दर में उनसे मिलकर हम सब लोग लार्ड क्लेर के साथ हो गये।

हल्की हल्की पाँच मन्ज़िलों के बाद हम बड़ौदा पहुँचे। यहाँ गायकवाड़ और लार्ड क्लेर की भेंट-मुलाक़ात का आदर प्रदान हुआ। चलते समय लार्ड क्लेर और उनके

सभी बड़े आदमियों को गायकवाड़ ने मूल्यवान् भेंटें दीं। मुझे एक सोने की कंठी, एक पगड़ी और एक शाल मिला था। परन्तु शीघ्र ही वह सब सामान लार्ड क्लेर ने हम लोगों से कदाचित् सरकार में जमा करने के लिए ले लिया।

बड़ौदा से अहमदाबाद होते हुए हम लोग दीसा पहुँचे। यह एक बड़ी छावनी थी, जो उस ओर के उजाड़ खण्ड और पहाड़ी अञ्चल के डाकुओं की रोक-थाम रखने के लिए स्थापित की गई थी। यहाँ से हम लोग उत्तर-पूर्व की ओर आबू पहाड़ को गये। यहाँ पहाड़ के नीचे हम लोग तीन दिन ठहरे रहे। लार्ड महोदय ने पहाड़ पर चढ़कर वहाँ की प्राचीन इमारतें आदि देखने की इच्छा प्रकट की। कुछ चुने हुए लोगों के साथ दूसरे दिन सवेरे वे पहाड़ पर चढ़े। मुझे भी उनके दल में शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यद्यपि मैं कुछ व्यक्तियों से बहुत पीछे रह गया था, तथापि बाद को मैं लार्ड महोदय के पास उनके एक एड-डी-कैम्प के साथ पहुँच गया। उस समय हम लोग आधी चढ़ाई पार कर गये थे। लार्ड महोदय और उनके एड-डी-कैम्प दोनों बहुत थके से जान पड़ते थे, यद्यपि उनके साथ पहियेवाली कुर्सियाँ थीं, जिन पर बीच-बीच में वे चढ़ भी लेते थे। तो भी उस एड-डी-कैम्प ने, कदाचित् मेरी द्रुतगति से ईर्ष्यालु होकर, मेरी मजबूत छड़ी लार्ड महोदय के लिए माँगी। इनकार करना अनुचित समझकर मैंने तुरन्त अपनी छड़ी दे दी। लार्ड महोदय ने उसे अपने हाथ से लेकर उसके लिए मुझे धन्यवाद दिया। उसे पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु वह छड़ी उन्होंने फिर मुझे वापस नहीं की।

देलवाड़ा के मन्दिरों तक मैं लार्ड महोदय के साथ गया। वहाँ से मैं थोड़ी देर के लिए इधर-उधर चला गया। जब शाम

होने लगी तब मैंने पहाड़ से उतरना शुरू किया। राह में पानी बरसने से मैं भीग गया। कोई नौ बजे रात को मैं पड़ाव में पहुँचा। इस समय थकावट से मैं अस्त-व्यस्त था। इसके फल-स्वरूप मुझे ज़ोर का बुख़ार आ गया। परन्तु मेरे नेक मालिक ने ऐसी देख-रेख रक्खी एवं चिकित्सा की व्यवस्था कर दी कि मैं शीघ्र नीरोग हो गया।

आबू सिरोही शहर से कोई २० मील पर है। सिरोही के राजा राव शिवसिंहजी हैं। आबू हिन्दुओं का, विशेषकर जैनों का, एक प्राचीन पवित्र स्थान है। यह समुद्र की सतह से एक मील के लगभग ऊँचा है। इस पर चढ़ने को १२ मार्ग प्रसिद्ध हैं। अन्नादरा का मार्ग सबसे अच्छा है और इसी से होकर ज़्यादातर यात्री इस पर चढ़ते हैं। सिरोही से अन्नादरा का गाँव २० मील के लगभग है और यहाँ से पहाड़ तीन मील है, जहाँ से चढ़कर यात्री पहाड़ के ऊपर 'नाखी तालाब' को जाते हैं, जो साढ़े चार मील पड़ता है। इस तालाब के इधर-उधर घाटियों और खोहों में साधु-तपस्वी निवास करते हैं, पर वे यदा-कदा ही दिखाई पड़ते हैं। अगस्त के महीने में कन्या के सूर्य होने पर इस तालाब में स्नान का बड़ा माहात्म्य है और उस समय दूर-दूर से लोग यहाँ आते हैं।

उक्त बारह मार्गों में दो अत्यन्त दुर्गम समझे जाते हैं। ये काचोली और निटोरी नाम के गाँवों से गये हैं। काचोलीवाले मार्ग से तो यात्री को कहीं-कहीं चलने में हाथों से भी काम लेना पड़ता है। इसी प्रकार दूसरे मार्ग की चढ़ाई और उतार दोनों ही कठिन हैं। इसके सिवा इस मार्ग में बड़ा घना जङ्गल पड़ता है, जो जङ्गली जानवरों से भरा होने के कारण जोखिम का है। इस मार्ग में एक घाटी पड़ती है, जिसका पार करना बहुत ही कठिन समझा जाता है। सिरोही के पहले के राजाओं का

बनवाया हुआ यहाँ एक क़िला है, जिसमें सङ्कट के समय भागकर वे आश्रय लिया करते थे।

पहाड़ के ऊपर १३ गाँव हैं। इनमें से तीन उजड़ गये हैं। शेष दस गाँवों में देलवाड़ा और अचलगढ़ बड़े गाँव हैं, जिनमें सात हज़ार के लगभग निवासी हैं।

यहाँ जैनों और आधुनिक शैव-सम्प्रदाय के अगणित मन्दिर हैं। इनमें से कुछ बहुत ही सुन्दर बने हुए हैं। देलवाड़ा गाँव के पाँच जैन-मन्दिर तो और भी सुन्दर हैं। इन मन्दिरों में से एक के पिछवाड़े पत्थर के १० हाथी खड़े हैं। इसी तरह एक के प्रवेश-द्वार पर उतने ही हाथी और एक घोड़ा है। ये सब सङ्गमरमर के हैं और उँचाई में बैल के बराबर होंगे। उस पहाड़ के ऊपर इन सबको चढ़ा लाने में निस्सन्देह बड़ा व्यय एवं परिश्रम करना पड़ा होगा। कहते हैं कि इनका बनवानेवाला एक महाजन था, जिसके कोई सन्तान नहीं थी, अतएव उसने अपनी सारी सम्पत्ति इनके निर्माण में लगा दी। ये मन्दिर १२४३ ईसवी में बने थे। इस पहाड़ की आय का आधा भाग पहले सिरोही के राजा तथा वहाँ के कुछ जागीरदार लिया करते थे और आधा भाग मन्दिरों की मरम्मत तथा दूसरे धार्मिक कार्यों में ख़र्च होता था। परन्तु वर्तमान सिरोही-नरेश राव शिवसिंहजी ने गङ्गा-स्नान कर आने के बाद से सारी की सारी आय दान-पुण्य के कामों में लगा देने का आदेश कर दिया है। हमारा पड़ाव २ जनवरी १८३२ को यहाँ से उखड़ा और धीरे धीरे चलकर हम पन्द्रह दिन में अजमेर पहुँचे, जो सूरत से २८९ मील के लगभग है।

आठवाँ अध्याय

आबू के परे का देश उन भागों को छोड़कर जहाँ अरवली पहाड़ के उभड़े हुए अञ्चलों ने उसे पथरीला बना दिया है, सारा का सारा रेतीला है। यह अनुर्वर भूखण्ड मेवाड़ कहलाता है, जो उसके उदयपुर, पाली और पुष्कर नाम के नगरों को छोड़कर—जिनसे होकर हमें जाना था—एक बहुत विस्तृत उजाड़-खण्ड जान पड़ता है। इनमें से उदयपुर सिसोदिया राजपूतों की क्रीड़ा-भूमि है। ये राजपूत भारत के अन्य राजपूतों की अपेक्षा अधिक ऊँची श्रेणी के समझे जाते हैं। इनके राजा 'राना' कहलाते हैं। राजतिलक के समय इनके माथे पर मनुष्य के रक्त का तिलक किया जाता है। इस अवसर पर यह रक्त कैसे प्राप्त किया जाता है, यह एक रहस्य है। उदयपुर एक सुन्दर नगर है और एक ऊँची जगह पर बसा हुआ है। इसके पश्चिम ओर एक बड़ी भारी झील है, जिसके बीच में एक टापू है। इस टापू पर दो राजमहल बने हुए हैं। गर्मी के दिनों में यहाँ राजा आकर रहता है।

पाली मरुभूमि के सिरे पर एक मण्डी है। मैंने यहाँ कुछ योरपीय वस्तुयें बम्बई की अपेक्षा कम दाम में मोल लीं। यहाँ के निवासी धनाढ्य हैं। इस नगर में ग्यारह हज़ार से ऊपर मकान होंगे।

तीसरा पुष्करजी अपने बहुत बड़े और गहरे तालाव के नाम से प्रसिद्ध है। यह तीन ओर पत्थर का बना हुआ है और पानी के भीतर तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके तट मन्दिरों से सुशोभित हैं। नगर बहुत वड़ा नहीं है। परन्तु पूर्व ओर से

इसका दृश्य बहुत ही मनोमोहक है। यहाँ हम १७वीं जनवरी को पहुँचे। दूसरे दिन सवेरे हम राजपूताना की राजधानी अजमेर पहुँच गये और शहर से कुछ दूर गवर्नर-जनरल के पड़ाव के सामने अपने ख़ेमे लगा दिये। उन दोनों बड़े आदमियों ने किसी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक प्रश्न पर गुप्त रीति से परामर्श किया। पड़ोस के राज्यों के राजे बुलाये गये थे। उन्होंने आकर भारत के सबसे बड़े शासक के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित की। हम लोग अजमेर में छः हफ़्ते तक रहे। इसके बाद नसीराबाद और लूनवारा होते हुए बड़ोदा लौट आये। हमने आबू को अपने दाहने छोड़ दिया था और एक बहुत ही घने जङ्गल तथा उजड़े हुए भूखण्ड से होकर यात्रा की थी।

मुझे यहाँ अजमेर का विवरण देना चाहिए। यह प्राचीन नगर पुष्कर से छः मील दक्षिण है। यह पहाड़ के नीचे बसा है और पहाड़ पर तारागढ़ का क़िला है। यहाँ के मकान पक्के और सुन्दर बने हुए हैं। निवासी धनाढ्य हैं। निवासियों की संख्या तीस हज़ार से ज्यादा न होगी। सेंधिया-द्वारा इसके अँगरेज़ों को दे दिये जाने पर यहाँ मिस्टर वाइल्डर नियुक्त किये गये। अच्छे प्रबन्ध की बदौलत यह नगर जयपुर से शीघ्र ही होड़ करने लगा। नगर का एक महल्ला वाइल्डर का बाज़ार कहलाता है। यहाँ की इमारतों की एकरूपता और सुन्दरता की समानता इस ओर का एक भी नगर नहीं कर सकता।

सैयद हुसेन मशहदी और ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती नाम के प्रसिद्ध दो मुसलमान सन्तों के यहाँ मक़बरे हैं। सैयद हुसेन का मक़बरा तारागढ़ पहाड़ी पर है और ख़्वाजा साहब का पहाड़ के नीचे शहर से मिला हुआ है। सैयद साहब वहाँ

दिल्ली के तत्कालीन बादशाह क़ुतुबुद्दीन ऐबक की ओर से गवर्नर थे। ख़्वाजा साहब उन्हीं के समय अजमेर में आये थे। ये बड़े साहसी यात्री थे और तीर चलाने में बड़े कुशल थे। इनका जन्म सीजिस्तान में, ५२७ हिजरी में, हुआ था और ये १०८ वर्ष तक जीवित रहे। अजमेर में रहते समय ये दो बार दिल्ली गये। वहाँ इनके दूसरी बार जाने पर अजमेर के गवर्नर के चचा ने, जो दिल्ली में रहते थे, एक दिन स्वप्न में अपने पूर्वजों को देखा। उन्होंने उन्हें यह आदेश किया कि अपनी एकमात्र पुत्री का विवाह ख़्वाजा साहब के साथ कर दो। इस बात की ख़बर पाकर ख़्वाजा साहब ने कहा कि यद्यपि मेरा समय पूरा हो आया है तो भी मुझे इस पवित्र दान को स्वीकार करना चाहिए। अतएव विवाह हो गया और विवाह के बाद वे सात वर्ष तक जीवित रहे और उनके कई सन्तानें हुईं।

इस मक़बरे को सभी मुसलमान बड़े आदर की वस्तु समझते हैं। बादशाह अकबर ने यहाँ की यात्रा आगरे से पैदल की थी। आगरे से अजमेर २३२ मील है। अनेक हिन्दू भी इसे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। महादजी सिन्धिया और यशवन्तराव होल्कर दोनों यहाँ प्रतिवर्ष भेंट में रुपये भेजते थे। दौलतराव सिन्धिया ने भेंट के सिवा यहाँ के सभी मक़बरों की मरम्मत करवा दी थी। बड़े मक़बरे का भीतरी दृश्य बड़ा शानदार है। क़ब्र के सिर पर धूप का पात्र हर समय सुलगता रहता है। यहाँ तक पहुँचने के लिए लोगों को फ़ीस के रूप में काफ़ी रक़म देनी पड़ती है।

मार्च १८३३ में, मैं सूरत लौट आया। इस वर्ष आय कम हो जाने से मैं चिकित्सा का काम करने लगा। शीघ्र ही मेरी कीर्ति फैल गई। मैं ग़रीबों को बिना मूल्य दवा देता था। दवा का दाम उन्हीं से लेता था जो दे सकते थे। कठिन

रोग के रोगी की दवा नहीं करता था। पन्द्रह महीने तक मैं हिकमत करता रहा। मैंने ६६४ रोगियों की दवा की, जिनमें तीन मर गये—दो ज्वर से और एक हैज़े से।

नवम्बर में मेरे यहाँ पुत्र का जन्म हुआ। इसका नाम मैंने क़ुदरतुल्ला रक्खा। इसके जन्म से मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। दाई आदि के भारी ख़र्च और इस अवसर की दान-दक्षिणा के कारण मुझे हकीमी का काम छोड़कर अपना पढ़ाने का काम फिर हाथ में लेना पड़ा। अहमदाबाद से लेफ़्टिनेन्ट होई ने मुझे बुलाया था, अतएव मैं वहाँ चला गया। मिस्टर होई बड़े कुशाग्रबुद्धि थे। थोड़े ही समय के भीतर वे अच्छी उर्दू जान गये। वे मुझे अपने साथ लेकर बम्बई गये। वहाँ उन्होंने परीक्षा दी। वे परीक्षा में उच्च श्रेणी में पास हो गये। उन्होंने मुझे आशा से अधिक पुरस्कृत किया। अतएव मैं कोई साल भर के ख़र्च की रक़म लेकर घर लौट आया।

मैं जून में सूरत आया था और कोई तीन हफ़्ते तक बेकार रहा। सूरत के नवाब मीर अफ़ज़लुद्दीन ने मुझसे अपना सेक्रेटरी बनने को कहा। मैंने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मैं दूसरे दिन कलेऊ के लिए महल में बुलाया गया। नवाब साहब ने मुझे अपना सदा के लिए साथी बनाने को कहा और वर्तमान समय के लिए कुछ भत्ता देने की बात कही। उन्होंने यह भी कहा कि जब वे वर्तमान कठिनाइयों से मुक्त हो जायँगे तब वेतन बढ़ा दिया जायगा। अन्त में उन्होंने दो शाल और नियुक्ति-पत्र मुझे दिये। इस पर मैं उठ खड़ा हुआ और झुककर नवाब साहब को सलाम किया।

घर पहुँचने पर मुझे वहाँ नवाब साहब के चोबदार, ख़िदमतगार और गवैये मिले। वे मुझे धन्यवाद देने गये थे। प्रसन्नता की उमङ्ग में मैंने उन सबको इनाम दिया।

अवकाश मिलने पर मैंने अपना नियुक्ति-पत्र देखा। उसमें यह लिखा था—

सूरत के नवाब कमरुद्दौला हशमतजङ्ग बहादुर की सरकार का, मुंशी लुत.फुल्लाखाँ साहब के मासिक अलाउन्स का पत्र।

इक्कावन रुपये नक़द, मुफ़्त का भोजन, कुटुम्ब के लिए कच्चा अन्न, साईस के सहित एक घोड़ा और दो चपरासी, वर्ष में दो जोड़े कपड़े।

यह वेतन भारत के एक शरीफ़ आदमी के लिए काफ़ी था। भविष्य में वेतन-वृद्धि की आशा से मैं इससे सन्तुष्ट था। मैं नित्य ठीक समय पर नवाब साहब के पास जाता। वे मुझसे बहुत प्रसन्न रहते और जब-तब मुझे तरह-तरह की भेंटें दिया करते।

नवाब साहब लगभग ५३ वर्ष के थे। वे पाँच .फुट तीन इञ्च ऊँचे थे। उनका रङ्ग भूरा मायल था और उनकी सज-धज राजसी तथा सुरुचिपूर्ण थी। वे सैयद थे। उनके पितामह बुर-हानपुर के निवासी थे। सन् १७३२ में वे सूरत आये और उन्होंने वहाँ के तत्कालीन गवर्नर सफ़दरखाँ के कुटुम्ब में ब्याह कर लिया। फिर अपना प्रभाव बढ़ाकर वे सूरत के गवर्नर बन बैठे। उनके वंशजों ने सन् १८०० की १३वीं मई तक सूरत का शासन किया। इसके बाद वर्तमान नवाब के पिता शहर और उसके आस-पास का प्रदेश अपने संरक्षक अँगरेज़ों को दे देने को बाध्य हुए। इसके बदले में उनके लिए १५ हज़ार पौण्ड की वार्षिक पेंशन नियत कर दी गई। इसके सिवा उनकी नवाब की कोरी पदवी और उनके कुछ विशेष अधिकार भी रहने दिये गये। १८२१ में उनकी मृत्यु हो जाने के बाद उनके पुत्र वर्तमान नवाब को अधिकारियों ने सिंहासन पर बिठाया। ऐसे ही नाम मात्र के सत्ताधारी नवाब की मुझे नौकरी करनी पड़ी। नवाब के मिनि-

स्टर ने मुझको बताया कि दो महीने हुए, देशी एजेण्ट ने नवाब के प्रति बड़ा अपमानजनक व्यवहार किया था। उसने उनके एक नौकर को पिटवाया और पुलिस द्वारा अपनी कचहरी में पकड़ मँगवाया था। अपराध यह था कि उसने शराब पी ली थी। उस समय नवाब मिनिस्टर के घर में थे। उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने पुलिस को आज्ञा दी कि वे क़ैदी को उनके सामने लाया जावे। उसके आने पर उन्होंने उसे तत्काल छोड़वा दिया और पुलिसवालों को ठोकरें मारकर निकलवा दिया और उन्हें ख़ूब गालियाँ दीं। इस तरह अपमानित होने से देशी एजेण्ट नाराज़ हो गया है और वह नवाब के विरुद्ध यहाँ के एजेण्ट, मजिस्ट्रेट एवं जज अर्थात् सब कुछ मिस्टर लम्सडेन के कान भरता रहता है।

मुझे एजेण्ट के ग्यारह पत्रों का जवाब देना था। अभी तक इनके उत्तर नहीं दिये गये थे। मैंने जो उत्तर लिखे थे उनके पढ़ने में नवाब ने तीन दिन लगा दिये। मेरे लिखे उत्तरों की भाषा, शैली तथा उनका भाव नवाब ने बहुत पसन्द किया। उनके हिन्दू लेखक शुद्ध फ़ारसी नहीं लिख सकते थे और कभी-कभी वे पत्रों की विचार-धारा भी नहीं समझ पाते थे।

सरकारी एजेण्ट और नवाब का मनमुटाव एक समझौते के द्वारा दूर हो गया। देशी एजेण्ट ने नवाब की कृपा की याचना की और वह शीघ्र ही उनका कृपापात्र फिर हो गया। नवाब अब फिर अपने विश्वासपात्र अफ़सर को एजेण्ट के दरबार में भेजने लगे। उसके उत्तर लिख लाने के लिए कभी-कभी मुझे भी जाना पड़ता था।

साढ़े पाँच महीने तक मुझपर नवाब साहब की कृपा रही। उसके बाद मुझे मालूम हुआ कि मुझसे छिपाकर नवाब का एजेण्ट से कोई गुप्त परामर्श हो रहा है। उसका नतीजा अपने

आप शीघ्र ही प्रकट हो गया। लगभग छः महीने तक नवाब के साथ रहने से मुझे मालूम हुआ कि बेचारे वृद्ध नवाब दूसरे लोगों के हाथों के खिलौने बने हुए हैं। वे ख़ुद कोई बात नहीं तय कर सकते थे, उन्हें नीचों का साथ पसन्द था और वे पूरे नशेबाज़ थे। मुझे पूरा विश्वास है कि उनके कमीना और सन्तापी मिनिस्टर ने (जो गँवार, अशिक्षित और पतित था और जो पहले कैप्टन रैनकिन का ख़िदमतगार था) कदाचित् एजेण्ट की सलाह या उसके इशारे पर नवाब को इस बात के लिए बाध्य किया था कि वे अपने पहले के मिनिस्टर की सम्पत्ति लूट लें। देशी एजेण्ट ने अपने घोर शत्रु भूतपूर्व मिनिस्टर का विनाश करने में इस शर्त पर सहायता दी कि नवाब अपने कुछ नौकर निकाल दें और उनके स्थान पर उसके बताये हुए लोगों को भर्ती कर लें। यही गुप्त सलाह-मशविरे थे। फलतः दीवान हृदयराम शीघ्र ही नौकरी से हटा दिये गये। एकाएक रक्षक-दल ने जाकर उन्हें दफ़्तर में घेर लिया। जिन सन्दूक़ों में नक़द रुपया एवं काग़ज़-पत्तर आदि रक्खे हुए थे उनमें तुरन्त मोहर लगा दी गई और उनसे कह दिया गया कि वे नौकरी से निकाल दिये गये हैं, क्योंकि उन्होंने भूतपूर्व मिनिस्टर से गुप्त रीति से पत्र-व्यवहार किया है। बेचारे हृदयराम ने दृढ़ता से उत्तर दिया कि मिनिस्टर से मेरा कोई गुप्त पत्र-व्यवहार नहीं हुआ है किन्तु देशी एजेण्ट से गुप्त विरोध ज़रूर है। उसने कहा—ईश्वर सबसे बड़ा है। मैं निरपराध हूँ। अन्त में सत्य की जीत होगी और पाप का फल मिलेगा। यह कहकर उसने चाभियाँ दे दीं और चला गया।

दूसरे दिन मिनिस्टर और मैं यह कहने को आत्माराम के पास भेजे गये कि नवाब साहब ने उसे दीवान के पद पर नियुक्त किया है।

आत्माराम कृपाराम का पुत्र है। सन् १८०० में कृपाराम ने नवाव के स्वर्गीय पिता की ओर से मिस्टर जोनाथन डनकन से उपर्युक्त सन्धि की वातचीत तय की थी। उसी सिलसिले में अपनी सेवाओं के लिए उसने ब्रिटिश अधिकारियों से अपने तथा अपने वंशजों के लिए तीन सौ रुपया मासिक की पेंशन बँधवा ली थी। तभी से कृपाराम के कुटुम्ब पर स्वर्गीय तथा वर्तमान नवाव की घृणा की दृष्टि रही है, क्योंकि उन्हें बाद को मालूम हुआ कि कृपाराम ने उस मामले में नवाव के साथ विश्वासघात किया है और अपने स्वार्थ के लिए अपने स्वामी के अधिकार और राज्य की वलि दे दी है। इसलिए नवाव ने उसे नौकरी से निकाल दिया था। कृपाराम की मृत्यु के बाद आत्माराम वर्षों तक अपने उपयुक्त नौकरी प्राप्त करने के लिए एजेण्ट को घेरे रहा। वह संस्कृत और फ़ारसी का पण्डित है। नौकरी पाने के लिए उसने अपनी तीन सौ रुपया मासिक पेंशन के सिवा वहुत अधिक रुपया ख़र्च कर डाला। यहाँ तक कि उस पर पैंतीस हज़ार रुपये से अधिक क़र्ज़ हो गया। अन्त में देशी एजेण्ट की सहायता से उसे दीवान का पद मिल गया, जिसका वेतन केवल पचास रुपया मासिक है। परन्तु इससे वड़े लाभ की वात यह हुई कि कोई महाजन उसे ऋण के लिए अदालत में नहीं घसीट सकता था।

आत्माराम के साथ मतिराम नाम का एक दूसरा धूर्त हिन्दू अकौण्टेण्ट के पद पर नियुक्त किया गया। अव भूतपूर्व मिनिस्टर को नवाव के क़ब्ज़े में लाना था, अतएव नवाव के दरवार में हाज़िर होने के लिए उसके पास सन्देश भेजा गया।

वह आदमी गँवार और निरक्षर था। पहले वह रोटी वेचने का काम करता था। तथापि अपनी स्वाभाविक वुद्धिमानी से वह जान गया कि नवाव साहव ने उसे क्यों वुलाया है। वह

मिस्टर लम्सडन के पास गया। उनसे उसने कहा कि मैं ब्रिटिश-प्रजा हूँ। हिसाब जाँचने के बहाने नवाब साहब ने मुझे बुलाया है। मुझे सन्देह है कि नवाब के आदमी मुझे किसी जाल में फाँसना चाहते हैं। मिस्टर लम्सडन ने उससे कहा कि तुम देशी एजेण्ट के पास जाओ। इस सम्बन्ध में उन्हें नवाब का पत्र मिल चुका है और विश्वास है कि नवाब तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकते और वे देशी एजेण्ट से समुचित प्रबन्ध कर देने को कह देंगे। ब्रिटिश-प्रतिनिधि के कथन का वह अविश्वास नहीं कर सका, यद्यपि उसे बहुत अधिक सन्देह था। उसने सलाम किया और वह वहाँ से चला आया।

दूसरी सन्ध्या को वह देशी एजेण्ट के पास गया और उससे एकान्त में बातचीत करने की प्रार्थना की। जब एजेण्ट के पास के दूसरे लोग उठ गये तब उसने और कोई उपाय न देख अपनी पगड़ी उतारकर उसके पैरों पर रख दी। उसने कहा—मैंने पन्द्रह वर्ष तक अपने स्वामी की सेवा ईमानदारी के साथ की है और ऋण से उसका उद्धार किया है। मैंने जिस ख़ूबी से उसका काम किया है, इसका उल्लेख नवाब के अँगरेज़ी अधिकारियों के साथ के पत्र-व्यवहार में हुआ है। अपनी सेवा और ईमानदारी से मैंने धनोपार्जन किया है। हिसाब के जाँचे जाने का मुझे डर नहीं है, क्योंकि उसपर मैंने नवाब के दस्तख़त करा लिये हैं। अतएव मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। मेरे और आपके बीच में जो कुछ हो चुका है उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। यह कह कर उसने उसके आगे अपना सिर टेक दिया। देशी एजेंट ने उसका सारा कथन ध्यान से सुना और उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठा लिया। उसने राजनीति की भाषा में भले प्रकार उसे आश्वासन दिया और कहा कि मुझे उस बात की ज़रा भी याद नहीं है जो पहले उनके बीच में हुई है।

दूसरी सन्ध्या को नये मिनिस्टर और मुझे देशी एजेण्ट के पास जाने की आज्ञा हुई। उसके पास हम लोगों के पहुँचने पर जो दूसरे लोग वहाँ थे, विदा कर दिये गये और हमीं लोग रह गये। देशी एजेण्ट ने मुझसे अपनी टूटी-फूटी अँगरेज़ी में कहा—नवाव साहव कृतघ्न हैं। मैंने उनके साथ अनेक बार कृपापूर्ण व्यवहार किया है और उनके अपराधों पर पर्दा डाला है। पर सब व्यर्थ। वे तो तुम्हारे पास बैठे, सोने का कण्ठा पहने हुए नर-पिशाच जैसे लोगों के कामों की ही प्रशंसा करते हैं। (मेरे साथी मिनिस्टर अँगरेज़ी नहीं जानते थे।) मैंने अँगरेज़ी में जवाव दिया—मैं नया आदमी हूँ। नवाव साहव से उतना परिचित नहीं हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि अच्छे कामों का परिणाम अच्छा ही होगा। इसके वाद उसने मिनिस्टर से हिन्दुस्तानी में कहा—नवाव साहव से कहिएगा कि उनके शत्रु ने ख़ुद ही आत्म-समर्पण कर दिया है। मैंने उसे महल में हाज़िर होने के लिए राज़ी कर लिया है। वे उसे वुला सकते हैं और इच्छानुसार उसके साथ व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु शुरू में ही कड़ा व्यवहार करना ठीक न होगा। इसके वाद मेरी ओर मुँह करके उसने कहा—यह एक साधारण मसला है। हमें केवल उसका हिसाव जाँचना है और नवाव के सारे ख़र्च का उससे सन्तोपजनक जवाव लेना है एवं उसकी भूलें पकड़ना है। इसके वाद भिन्न-भिन्न विपयों पर वातचीत होती रही। फिर उसकी अनुमति से हम लोग महल को लौट आये और नवाव साहव से सव हाल कहा।

इसी वीच में मुझ पर वड़ी भारी विपत्ति पड़ गई। मेरा पुत्र दो वर्ष तीन महीने की उम्र में स्वर्गवासी हो गया। इसके दुःख से मेरा हृदय फट गया। परन्तु धीरज धरने के सिवा इसका कोई उपाय नहीं था। इस दुःखद घटना के वाद १०

दिन तक मैंने कुछ काम-धाम नहीं किया। तदनन्तर महल के पास के एक बाग़ में दो क्लर्क और हिसाब के रजिस्टर लेकर जाने की आज्ञा हुई। यही जगह भूतपूर्व मिनिस्टर के हिसाब की जाँच करने के लिए नियत की गई थी। मुझे बहुत कड़ाई से हिसाब की जाँच करनी थी, साथ ही किसी न किसी तरह उसको फाँसने का अपनी शक्ति भर प्रयत्न करना था। मैं अपने साथियों के साथ नियत स्थान पर गया, जहाँ हमने भूतपूर्व मिनिस्टर को प्रतीक्षा करते पाया। मैंने अपने भरसक दस दिन तक उसके हिसाब-किताब की जाँच की। परन्तु भिन्न-भिन्न मदों में नवाब साहब के हस्ताक्षर दिखलाकर वह सभी अभियोगों से साफ़ बच गया। कभी कभी स्वयं मिनिस्टर ने भी आकर जाँच की। मैंने अपने मित्र मिनिस्टर से कहा कि यह आदमी हिसाब-किताब के मामले में निर्दोष है। इसे फँसाने के लिए आपको कोई दूसरा उपाय करना चाहिए। उसने कहा—क्या तुम कुछ रक़में बदल नहीं सकते? मैंने जवाब दिया कि यदि मुझे ऐसे अत्याचार करने पड़े तो नवाब साहब की नौकरी की अपेक्षा मेरा विवेक मेरे लिए अधिक मूल्यवान् है। उसने कहा—क्या तुम अपने स्वामी के लिए सब कुछ करने को तैयार नहीं हो? मैंने जवाब दिया—विवेक के विरुद्ध मैं कोई काम नहीं करूँगा। इस पर हममें कड़ी बातचीत हो गई। इस दिन से नवाब साहब मुझसे अप्रसन्न हो गये, यद्यपि इस परिवर्तन को मैं ताड़ नहीं सका। मैं अपना जाँच का काम करता रहा। परन्तु यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरा एक मातहत मोतीराम मेरी अवज्ञा करने का प्रयत्न कर रहा है और रुखाई तथा अधिकार के साथ फ़र्यादी का काम कर रहा है जब कि उसे मेरे अनुशासन में, जैसा कि वह अब तक करता आया था, काम करना चाहिए था। वह

भूतपूर्व दीवान से बहुत ही अनुपयुक्त भाषा में झगड़ने लगता था। वह कहता था कि मुझे नवाब साहब के हस्ताक्षरों की परवा नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि हस्ताक्षर या तो जाली हैं या सोते समय या नशे की हालत में करा लिये गये हैं। नवाब साहब तथा मिनिस्टर ने मोतीराम के इस व्यवहार की बड़ी प्रशंसा की। अब मुझे मालूम हुआ कि मुझको अपनी योग्यता से अधिक काम करना था।

मैंने मिनिस्टर से कहा कि जाँच के काम में मेरी उपस्थिति की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मोतीराम बड़ी योग्यता और सन्तोषजनक रूप से उस काम को कर रहा है। इधर कुछ दिनों से नवाब साहब तथा आप मेरे साथ जो व्यवहार कर रहे हैं वह मुझको अविदित नहीं है और यदि उसका क्रम पूर्ववत् जारी रहा तो मैं दूसरे हफ़्ते में नौकरी से इस्तीफ़ा दे दूँगा। मेरी यह बात मिनिस्टर ने चुपचाप सुन ली। उसने कहा कुछ भी नहीं; परन्तु मुझे मालूम हुआ कि उसने तुरन्त जाकर नवाब से मेरी बात कह दी। इसपर नवाब ने उसे देशी एजेण्ट से उस सम्बन्ध में उसी दिन सन्ध्या को सलाह लेने का आदेश दिया। मेरी सूचना का समय बीत गया और मेरे प्रति मेरे स्वामी के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं हुआ, अतएव सात महीने और दस दिन नौकरी करने के बाद मैंने अपना इस्तीफ़ा नवाब साहब के पास भेज दिया। इसके बाद मैं ब्रिटिश एजेंट के पास गया और उससे सब हाल कहा, साथ ही यह निवेदन किया कि इस्तीफ़ा दे देने पर अब मैं फिर अँगरेजी प्रजा हो गया हूँ। मिस्टर लम्सडन ने कहा कि इस तरह एकाएक नवाब की नौकरी छोड़कर तुमने भूल की है। बेचारा बुड्ढा आदमी सब तरह के पाजियों और बद-माशों से घिरा हुआ है। ये सब उसे बर्बाद कर डालेंगे। मैंने जवाब दिया कि मैं लाचार हूँ। दूसरों के लाभ के लिए मैं अपने

नवाँ अध्याय

मैंने फ़रवरी महीने में नवाब की नौकरी छोड़ी थी। और मुश्किल से अपने विद्यार्थियों को अठारह दिन पढ़ा पाया होगा कि मुझे सूरत ज़िले के कलेक्टर मिस्टर विवर्ट के द्वारा काठियावाड़ के पोलिटिकल एजेंट मिस्टर जे० इर्सकाइन का बुलावे का पत्र मिला। पहली मार्च को मैं राजकोट पहुँच गया। वहाँ कुछ समय रहने के बाद मैं पड़ोस के बाब्रिआवार के ज़िले में सौ रुपये मासिक पर सुपरिंटेंडेंट बनाया गया। परन्तु मुझे उक्त पद का भार कभी नहीं सौंपा गया, क्योंकि मैं पोलिटिकल एजेंट के दफ़्तर के कुछ देशी अधिकारियों पर लगाये गये अभियोगों की जाँच करने के लिए रोक लिया गया। वे अधिकारी नागर ब्राह्मण थे और उन्होंने अपने पक्ष का ऐसी बुद्धिमानी से समर्थन किया कि उल्टा अभियोग लगानेवाले फँस गये। दूसरों के साथ मैं भी रोक लिया गया और शीघ्र ही काठियावाड़ छोड़ने का मौक़ा पाने से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ।

इस वर्ष के शुरू शुरू में कैप्टन ईस्टविक के इँगलेंड से लौटने की बात सुनकर मैं बहुत ख़ुश हुआ। उनकी रेजिमेण्ट संयोग से यहीं आकर ठहरी और वे भी शीघ्र ही आकर उसमें शामिल हो गये। उनसे हाथ मिलाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनको पूर्ववत् स्नेह-सिक्त पाकर मुझे प्रसन्नता हुई।

कुछ सप्ताह तक अपनी रेजिमेण्ट के साथ रहने के बाद वे गवर्नर-जनरल के हाथ में कर दिये गये, अतएव वे सिन्ध को रवाना हुए जहाँ वे कर्नल, अब सर, एच० पाटिंजर की अधीनता में असिस्टेंट रेज़ीडेण्ट नियुक्त किये गये। कर्नल

पाटिंजर सालोमन के समान चतुर और अलेक्ज़ेंडर के सदृश साहसी थे।

अपने पहले के स्वामी कैप्टन ईस्टविक के साथ जाने का निश्चय कर मैंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

शुक्रवार २३ नवम्बर को मैं विदा होने के लिए पोलिटिकल एजेण्ट के दफ़्तर में गया। दफ़्तर के मेरे सभी मित्र मेरी जुदाई से बहुत दुखी हुए। उन्होंने चन्दा करके मुझे एक मूल्यवान् खिलत प्रदान की। मिस्टर इर्सकाइन ने एक कश्मीरी शाल मुझको भेट में दिया। डाक्टर ग्रेहम ने दवाइयों की एक छोटी सी पेटी दी। इस प्रकार अपने मित्रों और स्वामी से सम्मानित होकर मैं प्रसन्नता के साथ घर लौटा। जिन मित्रों के साथ मैं तीन वर्ष तक रहा था उनसे अलग होने का मुझे दुःख था।

घर आने पर राजकोट के पुरुषोत्तम ठाकरसी से भेट हुई। वे मेरी प्रतीक्षा में बैठे थे। मैंने उनके आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि वे और उनके परिवार के ६५ आदमी मेरे कृतज्ञ हैं, क्योंकि मैंने उनका दस हज़ार रुपये का माल उन्हें दिला दिया है जिसे डाकू लूट ले गये थे और उनके परिवार के तीन आदमियों को जान से मार गये थे। और चूँकि मैं जा रहा हूँ, अतएव वे दुखी हैं और उनका फ़र्म मुझे कुछ भेंट करना चाहता है। यह कहकर उन्होंने मेरे आगे दो सौ रुपये थैली से निकालकर रख दिये। मैंने उनको इसके लिए धन्यवाद दिया और कहा कि इन रुपयों की अपेक्षा वह कृपा का भाव, जो मेरे प्रति उनका है, मेरे लिए कहीं अधिक मूल्यवान् है। यह कहकर मैंने उन्हें बिदा किया। यह समझकर कि उस भेंट को मैंने बहुत अल्प समझा है, वे आध घंटे में एक सोने का हार लेकर लौटे जो पाँच सौ रुपये का रहा होगा। उन्होंने बहुत आग्रह किया कि मैं उसे ले लूँ। मैंने उनके हृदय को दुखाना ठीक नहीं समझा और

उस हार को लेकर मैंने पहन लिया। इससे वे बहुत प्रसन्न हुए। जब वे चलने लगे तब उस हार को उतार कर मैंने उन्हें पहना दिया और कहा कि अब इसे मेरी ओर से ग्रहण करो। इस बात से वह बुड्ढा बहुत दुखी हुआ। मैंने कहा कि यदि ऐसा है तो आप मेरे लिए कुछ मिठाई भेज दें, पर ऐसी चीज़ मैं नहीं लूँगा।

सन्ध्या-समय एक वृद्धा और उसकी दो लड़कियाँ मेरे पास आईं। बड़ी लड़की की उम्र ढल चुकी थी, पर छोटी १८ वर्ष की थी। उसका नाम सारा था। वह सुन्दरता का प्रतिरूप थी। वे तीनों बड़ी दुःखावस्था को प्राप्त थीं, जुरिया तक मेरे सामान की गाड़ियों के साथ-साथ जाना चाहती थीं। मैंने अपने नौकरों से कह दिया कि उन्हें अपने साथ ले लें और उनका सामान गाड़ी में रख लें। इसके लिए उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया। वृद्धा ने अपनी कथा इस प्रकार कही—

हम लोग मैमून जाति के मुसलमान किसान हैं। भुज के निवासी हैं। मेरे पति की माली हालत बहुत अच्छी थी। हमारे केवल यही दो लड़कियाँ हुईं। जब मेरी छोटी लड़की दो वर्ष की थी, मेरे पति का स्वर्गवास हो गया। उसकी मृत्यु के बाद सरकार ने हमारी सारी जायदाद ले ली, क्योंकि कुछ वर्ष पहले मेरे पति ने एक गाँव ठेके पर लिया था, जिसका रुपया बाक़ी रह गया था। मेरे पति के स्वर्गवास के कुछ महीनों के बाद मेरे दामाद का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार हम निस्सहाय और आश्रयहीन हो गये। दूसरे के खेतों में मज़दूरी करके अपना निर्वाह करने को बाध्य हुए। मेरी बड़ी लड़की एक अँगरेज़ भले आदमी मिस्टर......के साथ भाग गई। अब हम लोग और भी सङ्कट में पड़ गईं। अभी हाल में हमें उसका पता लगा जब उसने हमें यहाँ से लिखा। उसके प्रेमी की हैज़े

२४ नवम्बर १८३८ को मैंने राजकोट छोड़ा और ११ मील दूर परधारी कोई नौ बजे सवेरे पहुँच गया। ज़मींदार के एजेण्ट ने मेरा आतिथ्य किया। परधारी एक छोटी जगह है। नवानगर के जाम साहब के १२ गाँवों का वह प्रधान नगर है। जाम साहब इसे अपने कृपापात्र भूतपूर्व जमादार के लड़के को दिये हुए हैं।

जाम साहब पढ़े-लिखे नहीं हैं, पर हैं ऊँचे विचार के पुरुष। उनका नाम रणमल्लज़ी है और नाम के अनुसार वे एक वीर पुरुष हैं। पोलिटिकल एजेण्ट के साथ रहते समय मुझे उनसे कई बार सीमा-सम्बन्धी झगड़ों और कन्या-वध के सम्बन्ध में बातचीत करने का मौक़ा मिला है। उनके पुरुषोचित व्यवहार और समझदारी की बातचीत से मैं प्रत्येक बार प्रसन्न हुआ। वे जारेजा राजपूत हैं, परन्तु उन्होंने अपनी कन्या का वध नहीं किया।

२५वीं को सूर्योदय के समय मैं परधारी से चला और दस बजे जारेजा भूपतिसिंह के मुख्य गाँव धरोल पहुँच गया। नगर से बाहर मेरे पड़ाव में आकर राजा ने मुझसे भेंट की। उनके साथ उनका कोई चौदह वर्ष का पुत्र और छः वर्ष की एक सुन्दर लड़की थी तथा अपरन के राजा थे। राजा मेरे पास तीन घंटे तक रहे और रूस की होनेवाली लड़ाई के सम्बन्ध में बातें करते रहे। रूस-साम्राज्य का जो विवरण मैंने उन्हें सुनाया उसके सुनने में उन्होंने दिलचस्पी दिखाई।

२६वीं को सवेरे मैंने धरोल छोड़ा। हम साढ़े आठ बजे जुरिया पहुँच गये। यह एक बड़ा क़स्बा था। यहाँ मेरा बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। ऐसा स्वागत-सत्कार काठियावाड़ में मेरा और कहीं नहीं हुआ था। यहाँ के गवर्नर अहमद खवास ने अपने आदमी मेरा स्वागत करने के लिए भेजे थे। उन्होंने

ले जाकर मुझे एक बहुत अच्छी जगह ठहराया। हमारे आने के पहले से ही वहाँ मेरे और मेरे साथवालों के लिए कलेवा का सामान तैयार रक्खा था। हम लोगों ने इस सौजन्य के लिए गवर्नर को धन्यवाद दिया।

२७वीं को मैं अपने कुटुम्बियों और मित्रों को पत्र लिखने के लिए वहाँ ठहर गया, क्योंकि यही आख़िरी मुक़ाम था जहाँ से मेरे पत्र सही-सलामती के साथ यथास्थान पहुँच सकते थे। मैंने यहाँ से गायकवाड़ के सवारों को लौटा दिया, क्योंकि उन्हें यहीं तक पहुँचाने की आज्ञा थी। इसके बाद सिन्ध जाने के लिए नाव ठीक करने को मैं बन्दर पर गया, जो वहाँ से दो मील था। गवर्नर भी मेरे साथ गया। बन्दर बिलकुल मामूली था। वहाँ छोटे-छोटे कुल २६ जहाज़ थे, जो सौ खंडी या २५ टन से अधिक माल नहीं ले जा सकते थे। मैंने ६० खण्डी का एक जहाज़ ठीक किया।

मैंने छः बजे शाम को गवर्नर के साथ खाना खाया। मेरे रसिक वृद्ध मेज़बान साहब ने खाना खाने से एक घंटा पहले ही कच्ची ब्रांडी पीनी, या यह कहें कि चखनी, शुरू कर दी। उन्होंने मुझसे भी बहुत आग्रह किया, परन्तु मैंने इनकार कर दिया। खाना खाने के समय तक वे मज़े में हो गये। खाना खाने के बाद उन्होंने अपनी सरकार के दो महल दिखलाये। यद्यपि वे अच्छी तरह सजे नहीं थे, तो भी बने अच्छे थे।

बिदा होने के समय उन्होंने मुझे अपने मालिक की ओर से वस्त्र भेंट किये, जिनमें एक पगड़ी और एक दुपट्टा था। दोनों सौ रुपये मूल्य के रहे होंगे। मैंने उनके लेने से बहुतेरा इनकार किया, परन्तु उन्होंने उनको ले लेने के लिए बहुत ज़ोर दिया। उन्होंने कहा कि आपके आने के पाँच दिन पहले इस सम्बन्ध में महाराज की आज्ञा मिली थी और अगर आप इन्हें

नहीं लेंगे तो महाराज मुझसे नाराज़ हो जायँगे। सारांश यह कि उन्होंने बहुत दबाव डाला और मुझे लेना पड़ा। यह देखकर कि उन्हें चाय का बहुत शौक़ है और उनके पास वह है नहीं, मैंने अपने पास की आधी चाय उन्हें दे दी। उन्हें मेरे घोड़े का चारजामा बहुत अच्छा लगा था। वह भी मैंने उन्हें दे दिया। उसकी मुझे कोई ज़रूरत भी नहीं थी; क्योंकि मैंने अपना घोड़ा बेच दिया था।

२८ तारीख़ को ग्यारह बजे सवेरे मैं बन्दरगाह को चला। गवर्नर साहब मुझे पहुँचाने चले। मैंने वहाँ एक योरपीय पादड़ी को देखा, जो भुज से आकर उसी समय जहाज़ से उतरा था। उससे उसके राजकोट आदि जाने के सम्बन्ध में मैंने दो-चार बातें कीं। लोगों का कहना है कि यात्रा करते समय यदि पादड़ी से यात्री की भेंट हो जाय तो उसके लिए अशुभ होगा। यह बात मेरे सम्बन्ध में सच साबित हुई; क्योंकि मैं जिस समय उससे बातें कर रहा था, ज्वार-भाटा जो मेरे जहाज़ को बन्दर से बाहर करता, लौट गया और हमें वहाँ नौ बजे तक ठहरना पड़ा। धूप में वृद्ध गवर्नर को रोक रखना मुनासिब न समझकर मैंने उन्हें विदा कर दिया। मैं दोपहर के बाद एक बजे जहाज़ पर चढ़ा और काठियावाड़ से विदा ली—उस काठियावाड़ से जो अज्ञान, अफ़ीमचियों और कन्या-वध का घर है और जिसमें दस लाख छ: सौ लोग तथा दो सौ चवालीस राजे निवास करते हैं।

२९ तारीख़ को नौ बजे रात में हमने लङ्गर उठाये। शान्त समय था, रात और दिन मज़े में बीत गया। निर्मल वायुमण्डल, ठण्डी मन्द वायु आदि के प्रभाव से मुझमें ताज़गी आ गई। मेरी भूख शान्त ही न होती थी। जहाज़ में मांस प्राप्त नहीं था। जुरिया में मांस दुर्लभ था। केवल गवर्नर

ही भेड़ मारता था और सो भी चुराकर ताकि उसकी जैन प्रजा के मन को क्लेश न पहुँचे।

३० तारीख़ को तड़के जब मैंने आँख खोली, अपने को माण्डवी के बन्दर में पाया। उन्नीस वर्ष पहले का दृश्य याद हो आया। मेरा टिण्डल जुम्मा, जो मिआन (समुद्री डाकू) जाति का था, मेरे पास आया। उसने कहा कि सिन्ध जाने-वाला माल लादने के लिए मैं यहाँ एक दिन ठहरूँगा। आप किनारे पर जायँ और अपने नौकरों को पाँच दिन के लिए आव-श्यक सामग्री ख़रीदने की आज्ञा दे दें, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मांस के अभाव में आप भूखों मरें।

इस कृपा के लिए मैंने जुम्मा को धन्यवाद दिया और कहा कि मेरे आदमियों को साथ ले जाकर सामान ख़रीद लाओ और इन तीन स्त्रियों को किनारे पर उतार दो। मेरे पाँव में घाव है, इसलिए मैं किनारे नहीं जाऊँगा। मेरे आदमी तो नगर को गये और मैं अपनी किताबों में व्यस्त रहा।

१ दिसम्बर की आधी रात के समय एक वेड़े के साथ, जिस पर एक इँग्लिश रेजिमेण्ट सवार थी, हम रवाना हुए। पर-मात्मा की कृपा से तीसरी तारीख़ को हम घोरी कीचर नाम के एक वालू के टापू के पास से निकले। इसी समय शार्क नाम के जल-जन्तुओं का एक जोड़ा हमारे जहाज़ के नज़दीक आया। उनमें से प्रत्येक हाथी से कुछ वड़ा था। वे दोनों एक-दूसरे से खेल सा रहे थे। वे कभी हमारे जहाज़ के नीचे से निक-लते या उसका चक्कर लगाते। ऐसा करते समय वे हमारे जहाज़ को धक्का देते, जिससे हमें कष्ट मिलता। हमारे टिण्डल ने मुझसे कहा कि कभी-कभी ये जानवर जहाज़ों के लिए वड़ा संकट उपस्थित कर देते हैं; परन्तु डरिए नहीं। ये जितने

बड़े होते हैं, उतने ही डरपोक भी। मैं शीघ्र ही इनकी दवा करता हूँ। अब वह नौका के किनारे गया और उन्हें हमारे जहाज़ के साथ साथ उतराते देखकर उनसे इस तरह कहने लगा, मानो वे उसकी भाषा समझते हों—'तुम समुद्र के बादशाह हो। परमेश्वर और सुलेमान के नाम पर हमारा पीछा न करो। हम ग़रीब आदमी हैं। हमारे जहाज़ में दस आदमी से ज़्यादा नहीं हैं। दूसरे जहाज़ों के पास जाओ। वे कम्पनी सरकार के मोटे-मोटे सैनिकों से भरे हैं।' बुड्ढे जुम्मा की इस प्रार्थना का उल्टा असर हुआ। उसने उन जानवरों को क्रुद्ध कर दिया। उन्होंने अपने बड़े-बड़े नथुनों से हमारे जहाज़ में पानी का फ़ौवारा फेंका। वे और भी अधिक तेज़ी के साथ हमारी नौका के आस-पास लुका-छिपी का खेल सात बजे सवेरे से सवा आठ बजे तक खेलते रहे। अब हमारे टिण्डल का धैर्य छूट गया था। उसने एक नोकीला पत्थर उठा लिया और ईश्वर का नाम लेकर सबसे बड़े जन्तु के सिर को अपने ज़ोर भर ताककर मारा। इस प्रसाद के मिलने पर वह जानवर अपने साथी के साथ नीचे चला गया और फिर नहीं दिखलाई दिया। इस तरह बच निकलने के लिए हम सबने परमात्मा को धन्यवाद दिया। अपनी बन्दूक़ साथ न लाने के लिए मुझे खेद हुआ।

'घोरी कीचर' अब एक बड़ा बालू का घाट है। बीस वर्ष पहले वहाँ घोरी बन्दर था, जो अब सबका सब समुद्र के गर्भ में चला गया है।

उक्त बालू के घाट के पास पहुँचने पर जुम्मा ने मुझसे समुद्र का जल चखने को कहा। मैंने चखा और जहाज़ के एक ओर का पानी खारा और दूसरी का मीठा पाकर मुझे आश्चर्य हुआ। पूछने पर मालूम हुआ कि सिन्ध नदी की धारा पर यहाँ तक

समुद्र का प्रभाव नहीं पड़ता है। हमने वीकर बन्दर से दस मील दूर नौ बजे रात में लङ्गर डाल दिया।

४ तारीख़ को वायु बिलकुल शान्त रही, अतएव वीकर पहुँचने में सारा दिन लग गया। यहाँ हमें १२ जङ्गी जहाज़, २ स्टीमर और कोई सौ बटेला लङ्गर डाले हुए मिले। सब में अँगरेज़ी झण्डा फहरा रहा था और अँगरेज़ सैनिक चढ़े थे तथा सामग्री लदी थी। मेरा मित्र बुड्ढा टिण्डल एक जहाज़ के पास से निकला, जो बालू के किनारे से टकराकर टूट गया था। मैंने उससे कहा कि वह जहाज़ सूचित करता है कि अधिक समीप मत आओ, नहीं तो यही दशा होगी। परन्तु उस बुड्ढे जलदस्यु ने कहा—उस नौका का टिण्डल या तो अन्धा रहा होगा या जहाज़ के नष्ट करने का उसका कोई ख़ास मतलब रहा होगा; क्योंकि यहाँ के किनारों का हाल तो यहाँ का बच्चा बच्चा जानता है। घाट में रात के लिए लङ्गर डाल दिया।

५ तारीख़ को हमने सिन्ध नदी के मुहाने में प्रवेश किया और ६ तारीख़ को उस जगह पहुँच गये जहाँ से वीकर ७ मील था। बायें किनारे पर एक छोटा-सा गाँव था। उसे देखने के लिए मैं किनारे पर गया। गाँव के मुखिया से भेंट की। बुड्ढे टिण्डल के द्वारा उससे बातचीत की। हमारे प्रश्नों का उत्तर बुड्ढे मुखिया ने ज़ोर-ज़ोर से दिया। मैंने समझा कि वह मुझे या तो बहरा समझता है या वह मेरे प्रश्न करने से नाराज़ हो गया है। इसका कारण पूछने पर जुम्मा ने कहा कि यहाँ के लोग इस तरह ज़ोर-ज़ोर से बातचीत करते ही हैं। ये लोग बहुधा विपन्न दिखाई दिये। ऐसी झोपड़ियों में रहते हैं जैसी भारत के ग्रामीण अपने पशुओं के लिए बनाते हैं। घर के सब लोग—पति, पत्नी, पुत्र, पुत्र-वधू आदि—एक ही बिस्तर

पर सोते हैं। थोड़ी सी घास पर एक चटाई बिछी रहती है। यही उनका बिस्तरा है। वे चावल की भद्दी रोटी सूखी या ताज़ी मछली के साथ खाते हैं। तम्बाकू और प्याज़ के बड़े शौक़ीन होते हैं। ये चीज़ें मुखिया ने हमसे माँगीं। कर ज़्यादातर वस्तु के रूप में लिये जाते हैं। खेती धान की होती है। किसान को उपज का पाँचवाँ हिस्सा मिलता है। शेष दो भागों में बँट जाता है। एक भाग सरकार लेती है और दूसरा आधा भाग ज़मींदार पाता है।

७ तारीख़ को मैं वीकर के पड़ाव में उतरा। मेरे स्वामी और मित्र कैप्टन ईस्टविक ने मुझे बड़ी आव-भगत से लिया।

८वीं को मैं वीकर गाँव देखता-भालता रहा। उसमें दो दर्जन के लगभग दरिद्र झोपड़ियाँ थीं। कर्नल एच० पाटिञ्जर शाम को हैदराबाद से आ गये।

९वीं को हमने अपने ख़ेमे फ़ौजी पड़ाव से ले जाकर रेज़ीडेण्ट के ख़ेमे के पास लगाये। इस दिन से मैंने नियमित रूप से अपना काम शुरू कर दिया। यहाँ तुलसी-शाम के अपने पुराने मित्र सिकन्दर ख़ाँ को देखकर ख़ुशी हुई। ये अब सूबेदार मेजर थे। फ़ौज में यही सबसे ऊँचा दर्जा था, जिसे देशी सैनिक पा सकते थे। उन्होंने अपने मित्र मिर्ज़ा अली अकबर से परिचित कराया। ये कैप्टन एस० पावेल को फ़ारसी पढ़ाते थे। यह नौजवान मुग़ल होनहार जान पड़ता था।

मैंने सिन्धी का व्याकरण पढ़ना शुरू कर दिया, जो मुझे बहुत सरल जान पड़ा।

१४वीं को दफ़्तर का मामूली काम कर चुकने पर मुझे सरकारी ख़ज़ाने की सन्दूक़ें गिनने और रखने का काम सौंपा गया। वे एक सौ अठहत्तर थीं और बम्बई से आई थीं।

१५वीं को मैं रेज़ीडेण्ट कर्नल पाटिञ्जर के सामने उपस्थित किया गया। पहली ही निगाह में वे बहुत ही योग्य और दृढ़ निश्चय के आदमी प्रकट हुए।

अब मैं सिन्धी लोगों में आने-जाने और उनसे बातचीत कर उनकी भाषा के मुहावरे सीखने लगा। सिन्धी लोग बड़े आलसी होते हैं। नदी के टिण्डल लोग प्रायः सारा दिन मेरे ख़ेमे के सामने बैठे गप-शप करते तथा झगड़ते रहते। सरकारी मामले ही उनकी बातचीत का विषय होता। एक दल कहता कि अब देश गया—अँगरेज़ शीघ्र ही उसपर क़ब्ज़ा कर लेंगे। उस दल के लोग कहते—शक्तिशाली अँगरेज़ों से इतनी अधिक मित्रता करने का दोष स्वयं तालपुरियों पर, विशेष कर मीर सूबेदार पर, है। इन्होंने सारा भारत ले लिया है। इसी तरह ये इस देश को भी शीघ्र ले लेंगे। दूसरा कहता—मेरे मित्रो, तुम भूल कर रहे हो। हैदराबाद के तालपुरी भले ही ईसाई बन जायँ; परन्तु डरो नहीं, मीरपुर के शेर मुहम्मद तो हमारी ओर हैं। स्वर्गीय नवाब मीर करमअली की विधवा ने सारे संसार के फ़िरङ्गियों से लगातार युद्ध करते रहने के लिए उन्हें धन दिया है और आगे भी काफ़ी धन देती रहेगी। अगर ईश्वर ने कृपा की तो हम सारे सोने और हथियारों के मालिक हो सकते हैं, जो हमारे देश में वे ढोये ला रहे हैं। क्या तुम्हें पाक क़ुरान की यह बात याद नहीं है कि दस काफ़िरों को हराने के लिए एक मुसलमान काफ़ी है। एक तीसरे सफ़ेद दाढ़ीवाले मुसलमान ने आह भरकर कहा—अरे मित्रो! तुम्हारा यह स्वप्न बहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण है। तुमने युद्ध-भूमि में तीन रङ्गवालों को—गोरों, भूरों और कालों को—एक साथ लड़ते नहीं देखा है। जब मैं पेशवा महाराज के यहाँ नौकर था, दक्खिन में मैंने उनके भयानक युद्ध देखे थे। यह कहकर उसने अपनी आस्तीन

चढ़ा ली और एक घाव का चिह्न दिखलाया, जिससे प्रकट हुआ कि उसके बायें हाथ में गोली लगी थी जो पार करती हुई निकल गई थी। उसने अपनी बात यह कहकर समाप्त की—यदि तलवार से निपटारा करना है तो एक आदमी एक आदमी को या दो या तीन को हरा सकता है, परन्तु इन शैतानों के पास तलवार नहीं होती है, और होती भी है तो तुम्हारी छड़ी जैसी कुन्द होती है। वे तो तुम्हें उस समय अपने पाजी निशानों से मार गिरायेंगे, जब तुम उनसे एक मील या कुछ अधिक दूर रहोगे। ऐसी दशा में क्या उपाय हो सकता है ?

मेरे खेमे के पास इस प्रकार के जो वाद-विवाद होते रहते थे उनसे कभी-कभी मुझे बहुत ही प्रसन्नता होती थी। कभी-कभी मैं अपनी जगह से उठकर उनके पास जाकर अपनी टूटी-फूटी सिन्धी में कहने लगता—अँगरेज़ केवल चावल और मछली पैदा करनेवाले इस दरिद्र देश को नहीं लेंगे, चाहे वह उन्हें ज़बर्दस्ती दिया जाय। राज्य करने के लिए उनके पास काफ़ी धन-धान्यपूर्ण देश हैं। वे तो यहाँ के अमीरों के घनिष्ठ मित्र हैं। विदेशी आक्रमण से भारत के अपने राज्य को तथा सिन्ध को बचाने के लिए उनकी फ़ौजें इस देश से होकर जा रही हैं। वे लोग एक साथ हँसकर इसका यह उत्तर देते—जनाब, आप जो कहते हैं वह सच होगा। हम लोग गँवार हैं। सरकार की ऊँची राजनीति हम लोग नहीं जान सकते हैं।

अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार मैंने कराची के एक सिन्धी हिन्दू व्यापारी नौमल से परिचय प्राप्त किया। सिन्ध में अँगरेज़ अधिकारियों के ये बड़े काम आये। ये जब-तब मेरे पास आते। हमारी सेनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्होंने अपने भरसक बराबर कोशिश की। ये एक धनाढ्य आदमी थे। इनके परिवार में इनके पिता, छः

भाई, स्त्रियाँ और बच्चे थे। निम्न सिन्ध में इनका ख़ासा प्रभाव था।

१९वीं दिसम्बर को ईदुल फ़ितर पड़ा। यह मुसलमानों का एक ख़ुशी का त्योहार है। सेना में कोई मुल्ला नहीं था, अतएव, कुछ मित्रों के अनुरोध से, मुझे मुल्ला का काम करना पड़ा। यद्यपि वर्षों से मैंने यह कार्य नहीं किया था, तो भी कम्पनी के घुड़सवार और पैदल मुसलमान सैनिकों के समूह में नमाज़ शुरू की तथा उपदेश किया। पगड़ी और रूमाल में मुझे नियमित फ़ीस मिली। पगड़ी और रूमाल ४० रुपये के थे। ये रुपये कमीशण्ड अफ़सरों ने आपस में चन्दा करके एकत्र किये थे।

इन दिनों हमें प्रायः इस बात का झूठा डर लगा रहता था कि शेर मुहम्मद रात में हम लोगों पर आक्रमण करेगा। २०वीं को सभी लोग सावधान रक्खे गये और बारी बारी से अफ़सर लोग सारी रात देखते-भालते रहे। मैंने देखा कि सिन्ध में मुर्ग़े सवेरे और दोपहर के बाद बोलने के सिवा रात में भी ८ से १० बजे तक बोलते हैं। भारत में तथा फ़ारस में यह अशुभ समझा जाता है। परन्तु सिन्धी लोगों को इसकी परवा नहीं है।

लगभग एक मील की दूरी पर स्थित घोरबारी नाम का गाँव देखा। इसमें सौ दरिद्र झोपड़ियाँ हैं। प्रान्त के इस भाग में नदी, इस शीत काल में, ९ फ़ुट गहरी है। इसकी चौड़ाई २५० गज़ से ज़्यादा न होगी। यहाँ की मिट्टी के अनुरूप इसका पानी मटमैला और बालू से मिला हुआ है।

२३वीं को यह सुनकर ख़ुशी हुई कि अगले दिन ठट्टा की ओर को कूच होगा। हमने अपना सारा असबाब सेना के साथ भेज दिया। सवेरे अपना छोटा ख़ेमा उखाड़कर ज्योंही हम अपने घोड़ों पर चढ़ने को हुए, रेज़ीडेंट ने मेरे स्वामी को

वहाँ ठहर जाने को कहा ताकि वे कुछ और ऊँटों का प्रवन्ध कर दें। ऊँटों का प्रवन्ध करने में २४वीं बीत गई और दूसरे दिन के लिए भी कुछ बाक़ी रह गया। रात को मैं कैप्टन ईस्टविक के ख़ेमे में सोया। वेहद सर्दी थी। भारत में ऐसी सर्दी का कभी अनुभव नहीं हुआ था। हमें बहुत ही अरुचिकर एकाकी-पन से सन्तोष करना पड़ा। एक दिन पहले हम दस हज़ार की फ़ौज के बीच में थे। आज हमारे साथ केवल दो चपरासी और दो सिन्धी साईस थे। वे चारों सर्दी से काँप रहे थे। हमने उन्हें ख़ेमे के भीतर आ जाने को कहा, परन्तु वे भीतर नहीं आये और बाहर ख़ेमे से लगकर सो रहे। दिन भर काम करने के वाद हमारे पास भूख शान्त करने के लिए न कोई नौकर था, न कोई सामग्री ही थी। सौभाग्य से मैंने कुछ पैसों से थोड़े से छुहारे और चावल की भद्दी सिन्धी रोटी का एक टुकड़ा ले लिया था। इन्हीं का हमने रात में भोजन किया। मेरे मालिक को तो वह खाना अच्छा लगा और मैंने भी उन उत्तम भोजनों की अपेक्षा उसे अधिक अच्छा समझा जो बाद को लण्डन के मिवार्ट के होटल में मुझे खाने को मिले थे। हम लोग तब तक बातें करते रहे जब तक कैप्टन ईस्टविक सो न गये। बाद को अपना चुरट पी चुकने पर मैं भी अपने विस्तरे पर जा लेटा।

२५वीं दिसम्बर पैग़म्बर जीसस क्राइस्ट का जन्मदिन होने से संसार भर में ईसाइयों के लिए आनन्द मनाने का दिन है। इस दिन तड़के ही मिस्टर जेनकिंस और कैप्टन वार्ड नाम के दो अफ़सरों ने हमें आ जगाया। वे माण्डवी से आ रहे थे। सेना में जा पहुँचने के लिए उन्होंने कैप्टन ईस्टविक से साथ चलने को कहा। परन्तु उनको वहाँ ऊँटों के मालिकों से इक़रारनामे के शेष अंश की पूर्ति के लिए अभी कुछ घण्टे ठहरना ज़रूरी था। इसलिए उन्होंने मुझसे अफ़सरों के साथ जाने को कहा।

तीस झोपड़ों के दरिद्र सोमरिआ गाँव को हमने प्रस्थान किया। वह बारह मील दूर था। वहाँ हमने फ़ौज को पकड़ लिया। क़ैप्टन ईस्टविक भी दोपहर तक वहाँ राज़ी-खुशी आ गये। सेना के साथ करमपुर के लिए हमारा दूसरा मार्च बीस मील का था। करमपुर में कोई पचास झोपड़े रहे होंगे। यह सिन्ध की एक शाखा के इसी किनारे पर स्थित था। उस शाखा की दूसरी ओर उतना ही बड़ा ग़ुलाम का गोत नाम का गाँव था।

२७ वीं को हमने मुक़ाम किया। २८वीं को हम ठट्टा नाम के पुराने नगर में पहुँच गये। तड़के ही कूच कर हम अपने ठहरने की जगह मकल्ली सवेरे नौ बजे पहुँच गये। यह गाँव शहर से दो मील पर था। हमारा मार्ग कुछ तो बलुआ और कुछ पथरीला तथा ऊबड़-खाबड़ था। यह कलानकोट के ध्वंसावशेषों से होकर गया था, जो मार्ग से दो मील था। इस स्थान की क़िलेबन्दी बहुत ही पुरानी और मज़बूत जान पड़ती थी। वह ईंट-गारे की बनी थी। ईंटें इतने दिन बाद भी बिलकुल नई और पत्थर जैसी मज़बूत मालूम पड़ती थीं। इन ध्वंसावशेषों में यहाँ के निवासियों को पुराने सिक्के जैसी प्राचीन चीज़ें कभी-कभी मिल जाती हैं, जो अच्छे मूल्य पर बिक जाती हैं।

३०वीं को बदली, तूफ़ान और विकट सर्दी थी। यहाँ तक कि जब मैं सवेरे उ.ज़ू करने को उठा, मुझे बर्तन का पानी जमा हुआ मिला। लाचार होकर मैंने धूल से अपने को शुद्ध किया। आज रविवार होने से आफ़िस का काम नहीं करना था, अतएव मैं शहर घूमने चला गया।

ठट्टा में शहरपनाह नहीं है। उसका एक बड़ा भाग ध्वंस हो गया है। आबाद घर संख्या में दस हज़ार होंगे। बाज़ार

तङ्ग और गलियाँ गन्दी हैं। अधिकांश निवासी बुनकर हैं। ऊपरी सिन्ध की अपेक्षा यहाँ लम्बी रेशमी लुङ्गियाँ और कम्बल ज़्यादा अच्छे बनाये जाते हैं। इस शहर की स्त्रियाँ, नहीं सारे सिन्ध की स्त्रियाँ, साधारणतः बहुत सादी होती हैं और भद्दे ढङ्ग से कपड़े पहनती हैं। आटा और तेल की मिलों में ऊँट काम करते हैं। नगर में चार सौ से अधिक मस्जिदें रही होंगी। परन्तु प्रायः सभी गिरती जा रही हैं।

शाहजहाँ की (१६४७ ई०) शुरू की हुई और औरङ्गज़ेब की (१६६१ ई०) समाप्त की हुई जामा मस्जिद को देखा। यह २०० गज़ लम्बी और १०० गज़ चौड़ी है। पक्की ईंट की बनी है। इसमें सौ गुम्बज़ हैं, जिनमें से प्रत्येक भिन्न प्रकार से रँगा है। यह एक बहुत ही सुन्दर और शानदार इमारत है।

इस शहर की ईंटें और मिट्टी के बर्तन बहुत मज़बूत और टिकाऊ होते हैं। मेरी समझ में यह यहाँ की मिट्टी की विशेषता है, जो सफ़ेद मिट्टी और बालू के मिश्रण से बनी है। मकान आम तौर से एक मञ्ज़िल के हैं, जो मिट्टी और भद्दी लकड़ी के बने हैं। छतें चिपटी हैं और उनके ऊपर मिट्टी पड़ी है। दो मञ्ज़िल के कुछ ही मकान हैं, जो ईंट के बने हैं और अमीर आदमियों के हैं। पवित्र नगर मदीना के सईद मोहम्मद नाम के एक सुन्दर अरब से बाज़ार में संयोगवश भेंट हो गई। मैंने उसका परिचय प्राप्त किया और उसके साथ जाकर नगर के सबसे बड़े मुल्ला मखदूम शेख़ अब्दुल्ला से भेंट की। इन दोनों आदमियों का नगर में बहुत अधिक प्रभाव है। दो घण्टे तक इन महानुभावों से बातचीत करता रहा। सईद मोहम्मद ने अपने को एक यहूदी की तरह धनाढ्य बना लिया है। एक अरब की दृष्टि से वह फ़ारसी काफ़ी अच्छी बोलता है। अरब लोग स्वभावतः बहुभाषाविद् नहीं होते। शेख़ साहब एक कुलीन

और विद्वान् पुरुष हैं। उनके पास एक बड़ा और सुन्दर पुस्तकालय है, जिसमें अरबी और फ़ारसी दोनों के महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ हैं।

१ जनवरी १८३९ को हैदराबाद के दरबार के चार या पाँच ऊँचे अफ़सरों का एक मिशन छावनी में आया। सर जान कीन और कर्नल पाटिञ्जर ने रेज़ीडेण्ट के ख़ेमे में उसका स्वागत किया। दोनों सरकारों के बीच मेल-मिलाप तथा मित्रता के सम्बन्ध में बातचीत हुई। राजदूतों की बातचीत से उनके अमीरों के भेद-भाव तथा असन्तोष की बातें झलक गईं। इसके बाद बैठक स्थगित हो गई। परन्तु उन्होंने सेना के आगे बढ़ने में यथाशक्ति सहायता करने की पूरी स्वीकृति दे दी।

४ तारीख़ को मैंने पड़ाव के पास के मकल्ली की पहाड़ी को देखने की छुट्टी ले ली। मैं तड़के ही चला गया और चार बजे शाम तक वहाँ घूमता रहा। वह प्रसिद्ध पहाड़ी ठट्टा से एक मील पर है। यह नगर के पश्चिम से उत्तर को गई है। आठ मील लम्बी और एक मील के भीतर चौड़ी है। इसकी औसत ऊँचाई ५५ फ़ुट है। इसका नाम एक मछुये की स्त्री के नाम पर रक्खा गया है, जिसकी दूकान अति प्राचीन काल में वहाँ थी। इस पहाड़ी पर लगभग पाँच सौ गुम्बज़दार और असंख्य खुली क़ब्रें हैं। इनमें मैं केवल १४ इमारतें देख सका।

अपने सरकारी कामों में मुझे उस सन्धि-पत्र की तेरह शर्तों का अनुवाद करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जो सिन्ध के अमीरों पर लादी जाने को थीं। इस काम को मैंने रातभर जागकर दस घंटे में पूरा किया। सवेरे वह अनुवाद रेज़ीडेण्ट के पास पहुँचाया गया। रेज़ीडेण्ट ने अँगरेज़ी मसविदा (जो उनका लिखा था और जिसका पढ़ना बहुत कठिन था) अपने हाथ में लिया और मुझे अनुवाद पढ़ने की आज्ञा दी। अनुवाद शुद्ध निकला

और रेज़ीडेण्ट ने उसे स्वीकार किया। मेरी सेवाओं से ख़ुश होकर कैप्टन ईस्टविक ने अपने पास से मुझे पाँच सौ रुपये इनाम में दिये। रेज़ीडेण्ट ने ऊँचा पुरस्कार देने का वादा किया।

८वीं को पाँच बजे शाम को हमारे पहरेदार ने एक बिलूच को मार डाला। यह पड़ाव में शराब बेचते हुए पकड़ा गया था और इसको कोड़े लगाये जाने की आज्ञा दी गई थी। परिणाम न जानने के कारण उस बेचारे ने यह अपराध किया था। क्वार्टर गार्ड में ले जाने के बाद वह अपनी ढाल और तलवार घुमाने लगा और सन्तरी के तीन घाव कर दिये, यद्यपि उसने अपनी बन्दूक़ से उसके वार बचा जाने की भरसक पूरी कोशिश की, यहाँ तक कि उसकी बन्दूक़ के कुन्दे के सिरे के दो टुकड़े हो गये। इसके बाद क़ैदी ने भाग निकलने का प्रयत्न किया और नङ्गी तलवार तथा ढाल हाथों में लिये वह पहरेदार से पाँच सौ गज़ दूर निकल भी गया। जब वह सर जान कीन और कर्नल मैक्डानल के ख़ेमों के बीच से निकला, उसकी ओर तीन बन्दूक़ें दाग़ी गईं। उनमें से एक की गोली उसके बग़ल से पार कर गई और वह जहाँ का तहाँ ढेर हो गया। इस प्रकार वह कोड़े खाने से बच गया।

ख़बरें फिर उड़ रही थीं कि रात में हमारे पड़ाव पर अचानक आक्रमण होगा। लकपत के समीप पड़ाव के कई आदमियों को पचीस सशस्त्र सिन्धियों के एक दल ने लूट लिया था।

१६वीं को कैप्टन ईस्टविक को हैदराबाद जाने की आज्ञा हुई। अतएव हमने वहाँ जाने की तैयारी की और दूसरे दिन घाट पर गये, जो लगभग दो मील पर था। वहाँ हमें स्नेक नाम के एक छोटे स्टीमर पर चढ़ना था। यहाँ कैप्टन जे० आउटराम हमारे साथ हो गये। नदी के ऊपर की ओर हमने सारे दिन लगभग बीस मील की यात्रा की और एक गाँव के समीप

लङ्गर डाला। राह में अमीरों के कई शिकारगाह मिले। नदी के किनारे बड़े-बड़े जङ्गली भूभाग चारों ओर से घेर लिये गये थे। इनमें तरह-तरह के शिकार के जीव-जन्तु भरे हुए थे।

चार दिन की यात्रा के बाद २०वीं को सवेरे हम हैदराबाद के बन्दर में पहुँचे। नदी के दोनों ओर के देश और पहाड़ियों का दृश्य रास्ते भर उत्कृष्ट था। गुलाबी रङ्ग की शिखावाले पक्षियों के समूह पानी पर तैरते हुए जब तब मिलते। १८वीं को सवेरे हमने नदी के दाहने किनारे पर एक बड़ा भारी मगर पड़ा सोता देखा। वह बन्दूक़ की मार में था। कैप्टन आउट-राम ने गोली से उसका स्वागत किया, जो उसकी पीठ से लग-कर लौट पड़ी। परन्तु इसका यह असर हुआ कि वह भयानक जन्तु घबराकर जाग पड़ा और पानी में कूद गया। अमीरों के निकट सम्बन्धी खैरुल्लाखाँ के पुत्र नवयुवक सरदार दोस्त-अलीखाँ उनकी ओर से स्वागत को आये। एक-दूसरे से कुशल-प्रश्न कर चुकने के बाद वे चले गये और हम रेज़ीडेन्सी में जाकर ठहरे। यहाँ के देशी एजेंट मुंशी जेठानन्द यह जानने को दरबार में भेजे गये कि अमीरों को ब्रिटिश प्रतिनिधि और उनके साथियों से मिलने की कब सुविधा होगी। २१वीं को वे यह उत्तर लाये कि उस दिन अमीर अँगरेज़ अफ़सरों से नहीं मिल सकेंगे।

परन्तु २२वीं को मीर सूबेदारखाँ ने सबसे पहले बदरुद्दीन नाम का अपना विश्वासपात्र एजेण्ट कैप्टन ईस्टविक के पास भेजा। वह यह गुप्त सन्देश लाया था कि उन्होंने पहले से ही अँगरेज़ों का पक्ष किया है और इस सम्बन्ध में वे सदैव सचाई के साथ तैयार मिलेंगे; अपने चचेरे भाइयों के कामों के लिए वे ज़िम्मेदार न समझे जायँ। वे इस बात के लिए उत्सुक हैं कि मिलने से पहले इस अवसर पर कैप्टन ईस्टविक उसी तरह का

आश्वासन दें। इस पर वदरुद्दीन के साथ मैं उक्त मीर के पास नये किये गये आश्वासन के वाहक के रूप में भेजा गया।

तीन मील से कुछ अधिक जाने पर हमें हैदराबाद का क़िला, जिसके सम्बन्ध में मैं बहुत कुछ सुन चुका था, दिखाई दिया। परन्तु समीप से देखकर बड़ी निराशा हुई। वह केवल एक प्रकार की पँचकोनी क़िलेबन्दी थी, जो ईंट की बनी थी। इसके चारों ओर खाई भी नहीं थी। इसमें अमीरों के कुटुम्ब, उनके सम्बन्धी और नौकर रहते हैं। नगर से जाते हुए मुझे विलूचियों के कई दल बैठे हुए दिखाई दिये। उनके हुक्क़े रक्खे थे और गाँजा तैयार हो रहा था। उन्होंने मुझे घुड़की दी और कुछ ने अपनी बोली में गालियाँ दीं। मैंने अपने मित्र वदरुद्दीन से कहा—इसके बारे में आप क्या कहते हैं? क्या आपके देश में विदेशियों के साथ व्यवहार करने का यही ढंग है? उन्होंने जवाव दिया—ये देहात के कमीने सैनिक हैं। ये फिरंगियों को नहीं चाहते। आपको फिरंगी समझकर अनाप-शनाप वक रहे हैं। इन्हें उसी तरह अनसुनी कर जाइए, जिस तरह स्वयं रेज़ीडेंट कभी-कभी करते हैं। मैंने अपने मित्र की सलाह मान ली और मीर सूबेदार के महल में प्रवेश किया। मैं उनके सामने नियमानुसार उपस्थित किया गया। वे एक पलँग पर बैठे थे। उनके पास उनका सुन्दर पुत्र फ़तहअली बैठा था। वह दस वर्ष का रहा होगा। मीर का सेक्रेटरी और ग़ुलाम भी मौजूद थे। वे एक बड़े लम्बे-चौड़े कमरे में बैठे थे। उसमें किसी तरह की सजावट नहीं थी। मुसलमानी ढङ्ग से मेरे अभिवादन कर चुकने पर मीर ने अपना हाथ बढ़ाया, जिसे मैंने अपने दाहने हाथ से छू दिया। मैं सबके साथ फ़र्श पर बैठने जा रहा था, परन्तु मुझसे ख़ास तौर से कहा गया कि मैं कुर्सी पर बैठूँ, जो वहाँ मेरे लिए ही लाई गई थी। कुशल-प्रश्न

के बाद मैंने अपना सन्देश कहा। मीर साहब ने उसे ध्यान से सुना और वे उससे सन्तुष्ट हुए। इसके बाद योरपीयों के रहन-सहन और रीति-रवाजों के सम्बन्ध में कुछ बात-चीत हुई। अब मैंने विदा ली। मुझे रेज़ीडेंसी तक पहुँचा आने और जङ्गली विलूचियों के अपमानजनक व्यवहार से रक्षा करने के लिए कुछ सिन्धी सवारों को आज्ञा दी गई। जब मैं आधी दूर निकल गया था, दो सवार भागे हुए आये और मुझसे कहा कि क्षण भर के लिए लौट चलिए, क्योंकि अमीर आपसे बात करना चाहते हैं। मैं लौट गया और मुझे अपना सन्देश दोहराना पड़ा। उसके कुछ शब्दों को मीर सूबेदार ने अच्छी तरह नहीं समझा था।

यह काम करके मैंने विदा ली और सिन्धी सवारों को लेकर मैं पड़ाव को चला। इसी समय मैंने देखा कि ईस्टविक साहब, कैप्टन आउटराम और कैप्टन लीकी के साथ, तीन अमीरों के दरबार को जा रहे हैं। मेरी उपस्थिति आवश्यक थी, अतएव मुझसे ब्रिटिश-प्रतिनिधियों के साथ जाने को कहा गया। यह दिन मेरे लिए कड़े काम और भूखा रहने का था। जब सवेरे मैं घर से चला था, केवल एक टुकड़ा रोटी और एक प्याला चाय ली थी, और दिन समाप्त हो आया था, पर अभी काम का अन्त नहीं था।

दरबार में आकर हमने सशस्त्र विलूचियों और नौकरों की इतनी सघन भीड़ देखी कि मुझे उसका पार करना असम्भव जान पड़ा। परन्तु योरपीय सरदारों के लिए रास्ता कर दिया गया। मैं पीछे था और उस भीड़ को नहीं भेद सका। कैप्टन ईस्टविक जब अमीरों के पास पहुँच गये तब उनका ध्यान सौभाग्य से मेरी ओर गया और उन्होंने अपना सिर थोड़ा घुमाकर कहा—लुत्फ़ुल्ला, यहाँ आइए और इन काग़जों को सँभालिए।

ज्योंही यह कहा गया, नौकरों ने भीड़ को तोड़कर मुझे अपने हाथों में ले लिया और लोगों के सिरों के ऊपर से ले जाकर क्षण भर में मुझे मेरे स्वामी के पास पहुँचा दिया। वहाँ मैं उनके दिहुने के पास बैठ गया और सभा के नोट लिखने लगा।

तीन अमीर नूर मोहम्मद, नसीरख़ाँ और मीर मोहम्मद तथा एक नौजवान मीर शाहदाद चार पायों के चौकोर त.ख्त पर, जिस पर एक सादी ईरानी दरी बिछी हुई थी, बैठे थे। उनकी तलवारें और ढालें उनके आगे रक्खी हुई थीं। ब्रिटिश प्रतिनिधि और उनके साथी कुर्सियों पर बैठे थे, जो उनके लिए वहाँ रक्खी गई थीं। परन्तु दरबार में आने के पहले उन्हें जूते उतार देने पड़े थे। शेष आदमी फ़र्श पर बैठे थे, जहाँ दरी बिछी हुई थी। भारतीय दरबारों में जैसा क्रम होता है, वैसा यहाँ कुछ नहीं था। सशस्त्र बिलूची और सिन्धी जिसको जो जगह मिली थी, स्वेच्छानुसार वहाँ बैठे थे, एक-दूसरे से यथासम्भव ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे और हम लोगों को बार-बार घुड़की दे रहे थे, मानो हम लोग उनके हत्यारे थे।

नूर मोहम्मद ऊँचे विचार का, बड़ा योग्य, बहादुर और सुन्दर, अधेड़ उम्र और मँझोले क़द का प्रतीत हुआ। सभा में वही एक व्यक्ति था जिससे राज्य के मामले की बातचीत की जाती थी, क्योंकि नसीर और मीर मोहम्मद कभी कभी कोई जवाब देते थे और यदि देते भी थे तो उसी के द्वारा। उसके वीरतापूर्ण हाव-भाव और उसकी बात-चीत की मैंने बहुत ही प्रशंसा की। वह बातचीत सचाई, उत्साह और शान से भरी हुई थी।

नसीर सुन्दर, पर बहुत मोटा था। सुशीलता, विनम्रता और उदारता उसके स्वभाव के प्रधान गुण थे।

मीर मोहम्मद का शरीर सुगठित था। वह योद्धा जैसा, सुन्दर रूप-रेखा का था; परन्तु ओंठ कटा था। वह नूर

मोहम्मद के बायें सिंहासन के किनारे पर बैठा था। उसका बायाँ हाथ ढाल पर और दायाँ तलवार की मूठ पर था।

इस अर्द्ध सभ्य दरबार के ऐसे ही अध्यक्ष थे। परस्पर लल्लो-चप्पो की बातें जब समाप्त हो गईं तब कैप्टन ईस्टविक ने अपने मेज़बानों को अपने मिशन की काली ख़ूराक देने का मौक़ा साधा। उन्होंने मेरे हाथ से काग़ज़ ले लिये जिनमें मेरे अनुवाद किये हुए सन्धिपत्र का मसविदा था और उसे अमीर महोदयों को विशुद्ध फ़ारसी उच्चारण के साथ पढ़कर सुनाया। अमीरों ने उसे चुपचाप सुना, यद्यपि मीर नूर मोहम्मद के चेहरे पर अप्रसन्नता के भाव दिखाई दिये। उसने रङ्ग बदले। कभी लाल हो गया तो कभी भूत की तरह पीला। जब पढ़ना समाप्त हुआ तब बिलूची बहुत उत्तेजित हो उठे। इस समय हम सबकी जानें निर्दय बिलूचियों की तलवार के घाट उतार देने के लिए अमीरों का ज़रा सा इशारा काफ़ी था। उनमें से अनेक वधिक की तरह अपनी नङ्गी तलवारें लिये हम सबके सिरों के ऊपर खड़े थे। मीर नूर मोहम्मद ने सबसे पहले बिलूची में अपने दोनों साथियों से कहा—उसे धिक्कार है जो फिरङ्गियों के वादों पर भरोसा करता है। इसके बाद उन्होंने गम्भीरता के साथ ब्रिटिश प्रतिनिधियों से फ़ारसी में कहा—आपकी सन्धियाँ आपकी इच्छा और सुविधा के अनुसार बदली जाती हैं। अपने मित्रों और उपकारियों के साथ व्यवहार करने का क्या यही ढङ्ग है? आपने अपनी सेनाओं को हमारे देश से स्वतन्त्रतापूर्वक ले जाने की हमसे अनुमति माँगी। आपके आदरणीय वादों के अनुसार आपकी मित्रता पर निर्भर होकर हमने बिना सङ्कोच के अनुमति दे दी। यदि हम जानते कि अपनी सेना को हमारे देश में ले आने के बाद आप हमें धमकायेंगे, हम पर एक दूसरी सन्धि लादेंगे, हमसे तीन लाख रुपया वार्षिक खिराज और बीस

लाख रुपया नक़द सेना का ख़र्च माँगेंगे तो हम अपनी और अपने देश की रक्षा का कोई दूसरा उपाय करते। आप जानते हैं कि हम विलूची हैं, वनिये नहीं हैं कि डर जायँगे। हमीं अकेले देश पर शासन नहीं करते हैं, किन्तु उसमें सारी जाति का स्वार्थ निहित है।

कैप्टन ईस्टविक ने यह सब चुपचाप सुना और फ़ारसी तथा अरवी की कहावतों में संक्षेप में उत्तर दिया, जैसे कि "हमारी सरकार आप लोगों को किसी असुविधा में डालने का विचार नहीं रखती है, परन्तु आवश्यकता-वश लाचारी है।" "आवश्यकता पड़ने पर मित्र को मित्र की सहायता करनी चाहिए।" "वर्तमान चढ़ाई केवल भारत की ही रक्षा के लिए नहीं है, किन्तु उसपर आप लोगों के देश की भी रक्षा निर्भर करती है।" इत्यादि। मीर नूर मोहम्मद ने मुस्करा दिया। उन्होंने अपने चचेरे भाइयों से विलूची में कुछ कहा, जिसे हम लोग नहीं समझ सके। इसके वाद रञ्ज के साथ उन्होंने कैप्टन ईस्टविक से कहा—मैं चाहता हूँ कि मैं मित्र शब्द का, जिसका आप प्रयोग करते हैं, आशय समझ सकूँ। हम आपकी वर्तमान माँगों का निश्चित उत्तर तत्काल नहीं दे सकते। उन लोगों से सलाह करने की ज़रूरत है जिनके हितों का हम अपने लिए बलिदान नहीं कर सकते और जो सर्वथा हमारे अधीन नहीं हैं।

सूर्यास्त के समय हमने दरवार छोड़ा। उसकी समाप्ति के समय इत्र और गुलाव-जल नहीं छिड़का गया जैसा, कि भारतीय दरवारों में होता है। हम लोग अपनी जगह साढ़े छः बजे शाम को पहुँचे और उस दिन भर के काम से .खूब थक गये थे।

२३वीं को हम अमीरों के उत्तर की प्रतीक्षा में ठहरे रहे। परन्तु मामला विगड़ता जान पड़ा। देशी एजेएट ने यह गुप्त सन्देश भेजा कि आप लोग सावधान रहें, और उसकी यह

सूचना निराधार नहीं थी। हमने देखा कि हमसे पाँच सौ गज़ की दूरी पर दो सौ सशस्त्र बिलूची तराई में बैठे थे। उनमें से एक या दो ने हमारे छोटे से दल को कई बार देखा-भाला। परन्तु हमें सावधान पाकर वे लौट गये।

२४वीं को अमीरों के उत्तर देने का समय बीत जाने पर हम लोग अपने पड़ाव को लौट पड़े। हवा और नदी के प्रवाह के अनुकूल होने के कारण हम लोग सरलता के साथ जर्रक गाँव तीन घण्टे में पहुँच गये, जो अठारह मील से अधिक दूर था।

२५वीं को हम जर्रक में उतरे और सेना में शामिल हो गये, जो वहाँ उस दिन सवेरे आ गई थी। मैं यहाँ डूबने से बाल-बाल बच गया। मैं एक सिन्धी मल्लाह की सहायता से अपनी पुस्तकों के एक भारी सन्दूक़ को दो नावों की कोर पर ले गया। मैं वहाँ अपने दोनों पैर फैलाये खड़ा था कि एकाएक वह सिन्धी चला गया। सन्दूक़ के गिर जाने के डर से मैं वहाँ से हिल नहीं सकता था। इस अप्रिय और जोखिम की स्थिति में मैं कोई पन्द्रह मिनट तक खड़ा रहा। जब दोनों नावें एक-दूसरे से अलग होने लगीं और मैं तथा सन्दूक़ नदी में गिरने को ही थे तब वह मल्लाह वहाँ आ गया और बिना किसी तरह की माफ़ी माँगे उसने 'मेरे मर्तबे के उपयुक्त' मुझसे इनाम माँगा। मैंने लाचार होकर अपने क्रोध को दबा लिया और अपने तथा सन्दूक़ को बचाने के लिए उस बदमाश को कुछ दे दिया, यद्यपि उसकी बदमाशी के लिए उसे नरक को जाने का अभिशाप मन ही मन दिया।

दसवाँ अध्याय

हमारी सेना जर्क में आठ दिन तक ठहरी रही। रात में आक्रमण होने की झूठी ख़बरें प्रायः उड़ती रहीं। ५वीं बम्बई-देशी पैदल सेना का बन्दीदीन सिपाही मीरपुर के शेर मुहम्मदख़ाँ की क़ैद से भाग आया था। उसने बताया कि शेर मुहम्मद हमारे विरुद्ध सिन्ध के अमीरों के साथ हो जाना चाहता है। २९वीं को मीर इस्माइलशाह अपने एक पुत्र के साथ पड़ाव में अधिकारियों से बातचीत करने आये।

३०वीं की सन्ध्या को पड़ाव में अफ़सरों की तीन लाशें लाई गईं। ये तीनों आदमी बिना छुट्टी लिये शिकार खेलने चले गये थे। जङ्गल में चारों ओर से आग लग गई और वे बच न सके।

पहली फ़रवरी को अमीरों के राजदूत मीर इस्माइलशाह ने आकर सन्धि की शर्तों पर उनकी स्वीकृति घोषित कर दी। दूसरे दिन इस्माइल के पुत्र तकीशाह सन्धि पर अमीरों के दस्तख़त कराने हैदराबाद भेजे गये।

३ तारीख़ को हमने जर्क से कूच किया। ग्यारह मील चलकर इस्माइल जो गोत के गाँव में मुक़ाम किया। दूसरे दिन नौ मील चलकर हैदराबाद के ठीक सामने सिन्ध नदी के दाहने किनारे पर स्थित कोटरी गाँव में पहुँचे। सिन्धी सेना नदी के दूसरे किनारे पर ठहरी थी। तीसरी तारीख़ को वह राजधानी में चली गई, परन्तु हमने देखा कि उसका एक अंश तुरन्त ही फिर लौट आया। सेना में दस हज़ार के लगभग सैनिक और तीस तोपें थीं, जिनमें सात हज़ार सैनिक और बारह तोपें
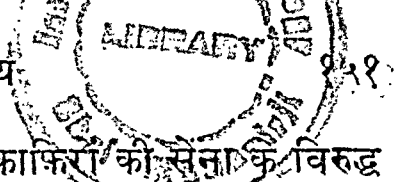
मीरपुर के शेर मोहम्मद की थीं, जो काफ़िरों की सेना के विरुद्ध मदद देने के लिए अमीरों के साथ हो गया था, परन्तु अँगरेज़ों की शक्ति, संख्या और व्यवस्था बहुत बढ़ी-चढ़ी देखकर वह अपने राज्य को चला गया था। वह रेज़ीडेन्ट के उस कड़े पत्र का विनम्र उत्तर देता गया था जिसे मैंने लिखा था और जो कुछ दिन पहले उसके पास भेजा गया था।

इस मौसम में नदी बढ़ने लगती है। उसका पानी यद्यपि सदा मटमैला रहता है, किन्तु साफ़ कर लेने पर बहुत ही स्वास्थ्यप्रद होता है। बदाम की गूदी लेकर घड़े के भीतर रगड़ दे, यहाँ तक कि वह ख़तम हो जाय। फिर उसमें पानी भर दे और एक घण्टे तक उसे रक्खा रहने दे। पानी बिलकुल निर्मल हो जायगा। तब उसे दूसरे बर्तन में भर ले और पिये। परन्तु यदि कोई उस पानी को बिना साफ़ किये हुए पिये और उसके बाद पुल्ला नाम की स्वादिष्ठ मछली खाय तो उसे निश्चय आमातीसार हो जायगा, जो आम तौर से प्राणघातक सिद्ध होता है।

६ तारीख़ को रेज़ीडेण्ट को पड़ाव के सभी बड़े आदमियों के भोज के रूप में अमीरों ने मिठाई के थाल भेजे। रेज़ीडेण्ट ने उनमें से दो थाल कृपा करके मेरे पास भेज दिये। उनमें लगभग अस्सी पौण्ड मिठाई थी। अँगरेज़ लोग मांसाहारी हैं, वे हमारी मिठाई नहीं खा सकते। केवल इसी कारण मेरे हिस्से में यह इतनी मिठाई आई थी। मैंने, मेरे सभी मित्रों और नौकरों ने उसको कुछ दिनों तक खाया और उसके लिए हम सबने रेज़ीडेण्ट साहब को धन्यवाद दिया।

९वीं को कैप्टन ईस्टविक को यह हुक्म हुआ कि वे शिकारपुर को फ़ौज ले जायँ। इसके लिए हमने आवश्यक तैयारी की।

१०वीं तारीख़ रविवार को सवेरे हमने फ़ौज के साथ कूच किया और कोटरी से आठ मील दूर बदा गाँव में जाकर ठहरे।

यहाँ इस्माइलशाह के एक पुत्र सादिकशाह, अमीरों के एजेण्ट रूप के में, रसद आदि के प्राप्त करने में मदद देने के लिए सेना से आ मिले। हमें इस बात की आज्ञा थी कि हम यथा-सम्भव सिन्ध के दाहिने किनारे के समीप ही रहें। एक ड्रैगून मूर्खतावश अपने घोड़े को नदी में पानी पिलाने के लिए घाट से अलग ले गया और वहाँ घोड़े सहित डूब गया। एक ऊँट पानी पीते समय अपने को ठण्डा करने के लिए गाँठ भर गहरे पानी में बैठ गया, परन्तु वह ज्यों ही बैठा, एक बड़ा भारी मगर उसे बड़े ज़ोर के साथ खींच ले गया। आज पाँच सिपाही भाग गये।

११वीं को दस मील चलकर उमरपुर, १२वीं को नौ मील चलकर गोपंग, १३वीं को दस मील चलकर मफ़ंद, १४वीं को ग्यारह मील चलकर सुमा, १५वीं को बारह मील चलकर अमरी, और १६वीं को बारह मील चलकर लक्की पहुँचे।

लक्की लगभग सौ झोपड़ियों का एक बड़ा गाँव है। यह सिन्ध के सैयदों का गाँव है। यहाँ मैंने शाह सदर के मक़बरे का दर्शन किया। यह गाँव से कोई तीन सौ गज़ पर सिविस्तान के पहाड़ के नीचे है। ये प्रसिद्ध साधु यहाँ अरब से आये थे और इन्होंने हज़ारों काफ़िरों को मुसलमान बनाया। इनका मक़बरा ईरान के बादशाह नादिरशाह की आज्ञा से बना था।

सिन्ध के सभी लक्की सैयद इन्हीं साधु के वंश में हैं और इन साधु के पूर्वजों में इमाम अली नक्की हैं। ऐसा जान पड़ता है कि लक्की शब्द नक्की का बिगड़ा हुआ रूप है।

यहाँ पहाड़ का दृश्य, जो एक मील के लगभग है, बहुत सुन्दर है। सबसे समीप की पहाड़ी में एक-दूसरे के समीप ही दो झरने हैं, जिनमें एक का पानी बहुत ही ठंढा और दूसरे का बहुत ही गर्म है।

इस कूच में एक वनिया पीछे रह गया था। बिलूची .खूनियों ने उसे पकड़कर लूट लिया और उसके हाथ में तलवार के दो घाव कर दिये। बेचारा .खून से लथ-पथ आया। कई ऊँट चोरी चले गये। इन अत्याचारों के करनेवाले बरगोअरी, मर्री और लधारी बलूची थे, जो अपने गधे, बकरियाँ और भेड़ें आदि लिये उस पहाड़ पर रहते थे और पड़ोस के गाँवों में बहुत कम आते-जाते थे।

१७वीं, १८वीं और १९वीं को वहाँ ठहरे रहे ताकि भारी तोपें आदि आगे भेज दी जायँ। तीन ऊँट चुरानेवाले पकड़े गये। १८वीं को उनके कोड़े लगाये गये और उनके सिर और दाढ़ियाँ मूँड़ दी गईं। एक योरपीय सैनिक मेरे पास खड़ा यह दृश्य देख रहा था। उसने कहा कि केवल कोड़े की मार छोड़कर ऐसी सज़ा वह .खुशी के साथ प्रति दिन स्वीकार करेगा।

२०वीं को हमने तड़के कूच किया और दस बजे दिन में सेहवान दर्रे पर पहुँच गये। सवेरे वड़ा कुहरा था। रात में .खूब बादल गरजे और वृष्टि हुई, जैसा कि भारत में इन दिनों बहुत कम होता है। वह दर्रा लक्की और सेहवान के बीचोबीच में है और कोई दो सौ गज़ लम्बा है। कठिनाई केवल इस कारण है कि नदी ने पहाड़ को उसकी जड़ से काट रक्खा है। इस दर्रे से निकलते समय आदमी विकट स्थिति में पड़ जाता है। बाईं ओर तो खड़ा पहाड़ है और दाहिनी ओर नीचे दूर नदी चक्कर काटती हुई बहती है। परन्तु इंजीनियरों ने जहाँ रास्ता तङ्ग पाया, दस .फुट के लगभग चौड़ा कर दिया। हमारी सारी सेना सही सलामती से निकल गई। केवल एक ग़रीब स्त्री का पैर गड़बड़ होने में टूट गया था।

२१वीं को हमने पड़ाव डाल दिया। सर एच० .फेन हमारे पड़ाव में आ उतरे और उन्होंने नवाब मुहम्मदख़ाँ लघरी से भेंट

की, जिन्हें सिन्ध के अधिकारियों ने इन अँगरेज़ अफ़सर से मार्ग में मिलने को भेजा था। सर एच० .फेन और नवाब को छोड़कर किसी को बैठने को जगह नहीं दी गई। अजमेर में रहते समय मैं गवर्नर-जनरल के कई दरबारों में उपस्थित हुआ था, परन्तु किसी काले या गोरे भले आदमी को इस तरह अनादृत होते नहीं देखा था। बङ्गाल की ओर के अँगरेज़ अफ़सर आम तौर से अपने को बहुत कुछ लगाते हैं। कैप्टन ईस्टविक उन दोनों प्रतिनिधियों के बीच दुभाषिये का काम कर रहे थे और उनके पीछे खड़ा मैं उनके फ़ारसी के वाक्यों को जब-तब नवाब को समझा देता था। जब सर एच० .फेन ने मुझे बोलते देखा तब उन्होंने पूछा--जनाब, आप कौन हैं? कैप्टन ईस्टविक ने कहा-ये मेरे मुंशी हैं। सर एच० .फेन लम्बे और सुगठित शरीर के, बुद्धिमान्, अधेड़ उम्र के आदमी हैं, परन्तु जान पड़ता था कि वे विनम्रता का नाम तक नहीं जानते हैं। जब मतलब की बात-चीत हो गई उसके बाद भी बिलूच नवाब ने बातचीत जारी रखना चाहा, परन्तु सर एच० .फेन उठ खड़े हुए और उन्होंने नवाब को एकाएक विदा कर दिया।

२२वीं को सवेरे ठण्ड और कुहरा था। मैं सेहवान का क़स्बा देखने गया। उसमें पाँच हज़ार घर और पन्द्रह हज़ार निवासी होंगे। यहाँ के प्रसिद्ध साधु लाल शाहबाज़ का मक़बरा बहुत बड़ा है। यह ११४८ हिजरी में बना था। इसमें उन्हीं की क़ब्र है। फाटक पर लकड़ी के एक बड़े कठघरे में एक शेर पला हुआ है।

२३वीं को नौ मील चलकर तार्ती गाँव पहुँचे। हमारी सेना को सेहवान के पास सिन्ध की एक शाखा अटल पार करनी पड़ी। इस नदी पर इञ्जीनियरों ने एक अच्छा पोन्टून (पीपों का) पुल बना दिया था और सेना और उसका साज-सामान सब

सवेरे नदी के पार उतर गया। तार्ती एक वड़ा गाँव है। इसमें दो हज़ार घर होंगे। यह ताज़े पानी की एक बड़ी झील के किनारे वसा हुआ है।

२४वीं मार्च को वड़ा कष्ट मिला। जनरल साहव ने अपना विचार बहुत देर को वदला था। इसी से लोगों को कठिनाई झेलनी पड़ी।

२५वीं को दाजी घोरपड़े ने आकर दर्शन देने की कृपा की। ये पहले भूतपूर्व पेशवा की नौकरी में थे। इस समय पूना की घुड़सवार सेना में एक सेनापति हैं। मैंने उन्हें ऊँचे विचारों का पाया।

कल के गड़वड़ में डाक्टर रूक के सामान का एक भाग चोरी चला गया था। आज ईदुज्जुहा का त्योहार था। मेरे मुसलमान मित्रों ने मुझसे वाज़ करने को कहा। मैं बहुत थका हुआ था, इससे इनकार कर दिया। हमारा यह पड़ाव रोकम गाँव के पास था। यह एक वड़ा गाँव है और सेहवान से तीस मील पर है। यहाँ का मुल्ला एक अशिक्षित सिन्धी है। इस त्योहार की ईश्वर-वन्दना नहीं हुई। जीवन में मेरे लिए यह पहला मौक़ा था।

२६वीं को सवेरे वहुत ठण्ड थी। रात में वर्तनों का पानी जम गया था। दस मील चलकर थल्लू गाँव पहुँचे। पिछली तीन मंज़िलों से हमें खारी मिट्टी मिल रही है। इस ओर नमक वहुतायत से वनाया जाता है।

२७वीं को सोलह मील चलकर थरा गाँव पहुँचे। यह जगह पीरपञ्जा के मक़वरे से छः मील आगे है। पीरपञ्जा उस मुसलमान सम्प्रदाय के साधु हैं जो काला कम्वल छोड़कर और कुछ नहीं पहनते। यह वड़ा लम्वा और थकानेवाला मार्ग रहा। मार्ग में जो जङ्गल पड़ा था वह इधर उतना घना नहीं था। टोपी पहनने का रवाज सेहवान से कम पड़ने लगता है। इस पड़ाव

में क़रीब-क़रीब उसका चिह्न नहीं रहा। यहाँ प्राय: सभी सिन्धी सुन्दर सफ़ेद पगड़ियाँ धारण करते हैं।

२८वीं को छः मील चलकर चिन्ना गाँव पहुँचे। सड़क अच्छी और सारे मार्ग का भूभाग उपजाऊ था। ठण्ड कम पड़ने लगी।

पहली मार्च। आज सवेरे जनरल ने पड़ाव डालने की जगह की बाबत अपना विचार बदल दिया। इससे बड़ा गड़-बड़ हुआ। पहले सोलह मील चलकर कमोरी गाँव नियत किया गया था। बाद को फ़तहपुर नियत किया गया, जो केवल दस मील था। कितने ही रास्ते भूल गये और कितने ही कमोरी से लौटकर फ़तहपुर आये।

दूसरी को सोलह मील चलकर बकरानी गाँव पहुँचे। यहाँ तीसरी को ठहरने का हुक्म हुआ, क्योंकि सिन्ध की एक बड़ी शाखा पार करनी थी। नदी बीच में छः फ़ुट के लगभग गहरी थी।

चौथी को तड़के नदी को पार किया। दो घण्टे में लरकना पहुँच गये। पिछले पड़ाव से यह केवल आठ मील दूर था। लरकना एक बड़ा क़स्बा है और मिट्टी की शहरपनाह से घिरा हुआ है। पीर अब्दुर्रहीम नाम का एक बुड्ढा निरक्षर आदमी इसका गवर्नर है। यहाँ फ़ौज को ११वीं तक ठहरना पड़ा। भारत के निवासियों के लिए बहुत ठण्डे जलवायु के देश में बोलन दर्रे से होकर एक लम्बी जोखिम की यात्रा करने के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना था। अनेक ऊँटवालों ने, विशेष कर कच्छवालों ने ठण्डे देश में जाने से इनकार कर दिया। परन्तु जब ख़ूब कोड़े लगाये गये तब बेचारों ने या तो जाना स्वीकार किया या वे भाग खड़े हुए। परन्तु अनेकों ने अपने ऊँट छोड़कर भाग जाना ही ठीक समझा। कैप्टन ईस्टविक को यहीं तक सेना

पहुँचानी थी। मेजर टाड नाम के एक नौजवान अफ़सर ६ तारीख़ को आने को थे और उन्हें पोलिटिकल आफ़िसर का पद-भार ग्रहण करना था। कैप्टन ईस्टविक मुझे पड़ाव में छोड़कर राजदूत और मिनिस्टर मिस्टर डब्ल्यू० एच० मैक्नाटन से मिलने शिकारपुर चले गये। वे मुझसे कह गये थे कि अगर पूछा जाय तो सब तरह की सूचनायें एड-डी-कैम्प या मेजर टाड को देना। ९वीं को कैप्टन ईस्टविक शिकारपुर से लौट आये। ऊपरी सिन्ध के पोलिटिकल एजेण्ट का काम उन्हें कुछ काल के लिए सौंपा गया था। उन्होंने मुझसे पूछा कि वे सिन्ध में पोलिटिकल एजेण्ट का काम करें या राजदूत के साथ अफ़ग़ानिस्तान जायँ। इसका निश्चय करना उन पर छोड़ दिया गया था। उनकी इच्छा अफ़ग़ानिस्तान जाने की थी। ऐसी दशा में वे नया देश देख सकते थे, लड़ाइयों का अनुभव हो सकता था तथा नाम कमाने का अवसर मिल सकता था।

मैंने उनसे कहा कि मैं अफ़ग़ानों के स्वभाव को ख़ूब जानता हूँ। मैं न तो रुपया के लोभ से और न प्रेम के ही कारण इस अभियान में अपनी जान जोखिम में डाल सकता हूँ। मैं विनम्रता से आपको यही सलाह दूँगा कि जब तक आपको वैसी आज्ञा न दी जाय, आप अफ़ग़ानिस्तान न जायँ, नहीं तो आप वहाँ अपने उत्साह और साहस के पहले शिकार होंगे। इस पर वे तिरस्कार के भाव से मेरे कथन पर मुसकराये और बोले—मेरे मित्र, जीवन एक दाँव है। उस जीने से क्या लाभ जब तुम अपनी मृत्यु से अपने को और दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हो? इसका एक बढ़िया उत्तर मेरी ज़बान पर था, परन्तु मैंने बहस करना अच्छा न समझा और दूसरे प्रसङ्ग की बात छेड़ दी। सौभाग्य से ऊपरी सिन्ध में उनकी ऐसी आवश्यकता हुई

कि बाद को उन्हें अफ़ग़ानिस्तान जाने की बात सोचने तक का समय न रह गया।

१२वीं को सर जान कीन के नेतृत्व में फ़ौज के एक डिवीज़न ने क़न्धार की ओर कूच किया। दूसरा डिवीज़न गाड़ियाँ प्राप्त होने तक वहीं ठहरा रहा।

आज ही शाम को हम भी फ़ौज से अलग हो गये और शिकारपुर जाने के लिए लरकना से चार मील चलकर चुहरपुर में पहुँचकर सोये। हमारे साथ एक देशी अफ़सर के नेतृत्व में बीस सैनिकों का एक फ़ौजी गार्ड था।

१३वीं को आठ मील चलकर हम नौडेरा गाँव पहुँचे। मार्ग बहुत अच्छा और देश बहुत आबाद था। गाँवों के आस-पास खजूर और आम के वृक्ष उनके दृश्य को सुन्दर बनाते थे। वहाँ हम एक छोटे से बाग़ में, बँगले में, ठहरे। नौडेरा एक बड़ा गाँव है और मीर मोहम्मद का है। इसका प्रबन्ध मोहम्मदख़ाँ सियाल नाम के एक बहुत ही चतुर वृद्ध आदमी के हाथ में है। खजूर का रस (ताड़ी) निकालने की कला यहाँ के लोगों को नहीं मालूम है। यहाँ चीज़ें बहुत सस्ती हैं। मैंने दो-दो पैसे में अच्छे मुर्ग़ ख़रीदे।

१४वीं को सोलह मील चलकर हम गोहेज पहुँचे। यह मीर नासिरख़ाँ का है। यह गाँव नौडेरा से बड़ा है। बङ्गाल की फ़ौज के उधर से निकलने के कारण अनेक निवासी उसे छोड़कर भाग गये हैं। परन्तु नौडेरा की तरह यहाँ भी सब चीज़ें हमें सस्ती मिलीं।

१५वीं को सोलह मील चलकर हम नौ बजे सवेरे शिकारपुर पहुँचे। सिन्ध में यह सबसे बड़ा शहर है। इसमें पन्द्रह हज़ार घर हैं, जो केवल छतवाले हैं और जिनमें कुछ दोमञ्ज़िले हैं। नगर मिट्टी की शहरपनाह से घिरा हुआ है। बाहर एक

छोटा सा क़िला है। नगर के आस-पास चारों ओर खजूर और आम के वृक्ष लगे हुए हैं। पानी के लिए कुएँ हैं। यहाँ अफ़ीम और सन की खेती की जा सकती है। कई खेत बहुत ही अच्छी हालत में दिखाई दिये। यहाँ के आधे निवासी हिन्दू और आधे मुसलमान हैं। हिन्दू सब के सब खत्री और लोहना हैं। यहाँ का बाज़ार बहुत उत्तम है। वह सारा का सारा पटा हुआ है, जिससे धूप से रक्षा होती है। यहाँ के हिन्दू व्यापारी फ़ारसी और पश्तू में तथा अपनी सिन्धी में बात-चीत करते हैं। हमने अपने ख़ेमे नगर के पास लगाये और सेना के साथ एक महीने तक परिश्रमसाध्य कूच करते रहने के बाद एकान्त और शान्ति का आनन्द प्राप्त किया।

१६वीं को सवेरे मैं कैप्टन ईस्टविक के साथ नगर में गया। उन्होंने नगर, बाज़ार, क़िले आदि का ध्यान के साथ निरीक्षण किया। इसके बाद वे एक जर्मन राजबन्दी को देखने गये। मैंने पहले पहल फ्रेञ्च भाषा में बातचीत सुनी।

१७वीं को सवेरे मैं वहाँ ठहरी हुई दो बङ्गाल रेजिमेण्टों की छावनी और वहाँ का सदर बाज़ार देखने गया। यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि जल के अभाव से, आगे पड़नेवाली मरुभूमि में कुछ मनुष्य और जानवर मर गये हैं। सभी विभागों में कुप्रबन्ध फैला हुआ था। ऊपरी सिन्ध के भूतपूर्व पोलीटिकल एजेण्ट सर ए० बर्नेस ने बहुत सा सरकारी रुपया ख़र्च कर डाला था और उसका कोई हिसाब-किताब नहीं रक्खा था। कोई दिन ऐसा नहीं बीतता था जब बिलूची डाकू हमारे कुछ आदमियों को न मार डालते हों या हमारे कुछ ऊँट न चुरा ले जाते हों।

आज सवेरे चितरूमल और जेतसिंह नाम के दो अमीर और प्रभावशाली हिन्दू व्यापारी कैप्टन ईस्टविक से मिलने आये।

जेतसिंह बहुत सुन्दर, बहुज्ञ और बहुत ही विनम्र है। उसकी बहन सिन्ध की एक सुन्दरी थी। उसे शाहशुजा बलपूर्वक पकड़ ले गया था। जेतसिंह और उसके जातिवाले शाहशुजा का नाम तक नहीं लेते हैं।

१८वीं मार्च को हमने चलने की तैयारी की; परन्तु रात में बहुत पानी बरस गया। हमारे ख़ेमे भीग जाने से इतने वज़नी हो गये कि हमें उनके सूखने तक ठहरना पड़ा।

एक दिन पहले बिलूची डाकुओं और बङ्गाल-घुड़सवारों के बीच मुठभेड़ हो गई थी। सवार ऊँटों की रक्षा कर रहे थे और लक्की गाँव के मैनेजर अब्दुस्समद ख़ाँ उनकी मदद कर रहे थे। इसमें तीन डाकू घायल हुए और एक मारा गया। उसका सिर धड़ से अलग कर हमारे आदमी अपनी वीरता के स्वरूप कैप्टन ईस्टविक के पास लाये थे।

रक्त और धूल में लोटते हुए नर-मुण्ड को देखना एक अत्यन्त ही अरुचिकर और भयानक दृश्य था। हम अपने गन्दे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने हमजिन्सों के साथ इसी तरह का निर्दय व्यवहार करते हैं तथा प्रकृति के नियम का दुरुपयोग करते हैं।

१९वीं को हम शिकारपुर से सक्खर को चले और सोलह मील चलकर महबूब जो गोत पहुँचे। इस मार्ग के बीच में लक्की गाँव पड़ा था। यह एक बड़ा गाँव है और मीर नूर मोहम्मद का है। घने जङ्गल के बीच से बहुत अच्छी सड़क गई है। मार्ग भूलने का कोई डर नहीं था, क्योंकि मार्ग के दोनों ओर तथा बीच में भी सैकड़ों मरे हुए ऊँट पड़े थे। अतएव प्रत्येक व्यक्ति का उत्कृष्ट मार्ग-दर्शक उसकी अपनी नाक थी।

२०वीं को हम सक्खर पहुँचे, जो महबूब जो गोत से चौदह मील था। हम छः बजे सवेरे चले थे और आठ बजे पहुँच गये। सक्खर एक बड़ा नगर था, पर अब प्रायः ध्वंस हो गया है।

शाहशुजा और .खैरपुर के अमीरों के बीच जो पिछली लड़ाई हुई थी उसमें इसकी जो हानि हुई थी उससे वह अभी तक नहीं सँभल पाया है। सक्खर सिन्ध नदी के दाहने किनारे पर स्थित है। रोरी, जो एक बड़ा आबाद शहर है, उसके बायें किनारे पर है। और भक्खर का क़िला नदी के बीच में एक तिकोने टापू पर है। अपनी अजेयता के लिए इस क़िले की ईरानी इतिहास-कारों और सिन्धियों ने बड़ी प्रशंसा की है। इस लड़ाई की समाप्ति तक के लिए यह क़िला अँगरेज़ों को सामान एकत्र करने के लिए दे दिया गया है, परन्तु जैसा कि मैंने सोचा था, यह क़िला फिर उसके स्वामियों को नहीं लौटाया गया।

२१वीं को मैं ख़ैरपुर के मिनिस्टर फ़तह मोहम्मद ख़ाँ गोरी से भेट करने को भेजा गया। उन्हें उनके स्वामी ने सक्खर और शिकारपुर के बीच के देश में लगनेवाले बिलूची डाकुओं को दण्ड देने के लिए भेजा था। वे एक दिन पहले आये थे और अपना पड़ाव उन्होंने रोरी में डाला था। वे अस्सी वर्ष के एक वृद्ध पुरुष हैं, परन्तु अपने उत्साह और साहस में जवानों के कान काटते हैं। उनका मस्तिष्क दुरुस्त है, जवार की बातों का उन्हें बहुत अनुभव है और उनके शासन-प्रबन्ध की उनके स्वामी तथा प्रजा दोनों प्रशंसा करते हैं। उन्होंने मुझे बड़ी विनम्रता से लिया और दुआ-सलाम के बाद मैंने बिलूची डाकुओं की चर्चा छेड़ी। उन्होंने कहा—बिलूची डाकुओं से विदेशियों की अपेक्षा यहाँ के निवासी कहीं अधिक पीड़ित हैं। अन्त में लाचार होकर मैंने तलवार ली है और डाकुओं को दण्ड देने के लिए मैं सेना के साथ जाऊँगा। मैंने उनसे कहा कि मेरे स्वामी चाहते हैं कि ये जङ्गली लोग मार डालने की अपेक्षा तङ्ग किये जायँ। परन्तु अपनी सेना आदि के सम्बन्ध में उन्होंने जो बात कही उस पर मैं अपना मुस्करा देना नहीं रोक सका। उनकी सेना में सौ पैदल

और डेढ़ सौ सवार थे। सवारों के घोड़े बहुत अधिक दुबले तथा दुखी जान पड़ते थे। मेरी मुस्कराहट का आशय वे समझ गये। उन्होंने कहा—मेरे सैनिकों और घोड़ों को घृणा की दृष्टि से न देखिए। वे मोटे नहीं हैं, पर इस देश के युद्ध के लिए उपयुक्त हैं और यहाँ की घाटियों और पहाड़ियों में डाकुओं का पीछा करने में आपके सुन्दर दिखनेवाले आदमियों और मोटे घोड़ों की अपेक्षा तीन दिन तक भूख और प्यास सह सकते हैं। उन वृद्ध महोदय के मनोभावों को चोट पहुँचाना मुझे पसन्द नहीं हुआ, जिनका पौत्र मेरी अपेक्षा ज्यादा बूढ़ा जान पड़ता था। मैंने कहा—आपके अधीनस्थ सैनिकों की वीरता का मुझे पूरा विश्वास है। मैं अपनी गँवारू मुस्कराहट के लिए क्षमा माँगता हूँ। अधिक समय से अँगरेजों के साथ रहने से उसकी आदत पड़ गई है। तब हम दोनों मित्र के रूप में एक-दूसरे से बिदा हुए। दूसरे दिन जब वे कैप्टन ईस्ट-विक से मिलने जायँगे तब हम एक-दूसरे से फिर मिलेंगे, इसका वादा हो गया।

२३वीं को वे आये और पहली ही मुलाक़ात में उन्होंने पोलि-टिकल एजेण्ट को प्रसन्न कर लिया।

आठ या दस दिन से अन्न का एक बहुत बड़ा ढेर नदी के किनारे पड़ा हुआ था। वह कमसरियट के कंडक्टर की निग-रानी में था। पिछली रात में नदी में बाढ़ आ जाने से वह सब का सब बह गया। बाढ़ इतनी तेज़ थी कि सक्खर और रोरी को जोड़नेवाला नावों का पुल भी टूट गया। बातचीत के सिलसिले में कैप्टन ईस्टविक ने मिनिस्टर से कहा—इस नदी का भी स्वभाव डाकुओं जैसा ही है। रात में वह अन्न का बहुत बड़ा ढेर चुरा ले गई। गोरी ने बहुत ही शीघ्रता से यह जवाब दिया—इसके विपरीत मैं तो यह समझता हूँ कि नदी ने एक

मित्र और सलाहकार का काम किया है। विदेश में सावधान रहने के लिए उसने सावधान किया है।

२५वीं को हम नदी पार कर रोरी गये और वहाँ एक बाग़ में पड़ाव डाल दिया। यहाँ से नदी के दोनों किनारों की तथा क़िले की शोभा दिखाई देती थी।

२८वीं को हम रोरी से ख़ैरपुर को चले और आठ बजे के लगभग वहाँ पहुँच गये। अलीमुहम्मद नाम के एक अफ़सर और उनके घुड़सवार हमसे मिलने के लिए शहर से तीन मील आगे आये। हमने एक छोटे अहाते में, जिसमें एक मकान भी खड़ा था, अपना पड़ाव डाला। यह मकान अमीर से मिलने को आनेवाले सभी योरपीयों के लिए बनाया गया था। ज्यों ही पोलिटिकल एजेण्ट अपना कलेवा कर चुके, अमीर की ओर से उनका कुशल पूछने के लिए आसानन्द वकील और जेतमल दीवान नाम के दो उच्च अधिकारी उनके पास आये। कैप्टन ईस्टविक ने उनको बड़ी विनम्रता से लिया और कहा कि मैं यहाँ एक दिन से अधिक नहीं ठहरूँगा। जब अमीर महोदय को सुविधा होगी, उनसे मिलकर मुझे बड़ी ख़ुशी होगी। यह सन्देश लेकर वे दोनों अपने स्वामी के पास लौट गये। शाम को वृद्ध मिनिस्टर के एक पुत्र इनायतउल्ला और जान मोहम्मद अपने नौकरों के साथ आये और उन्हें महल में ले गये। मीर रुस्तम ख़ाँ अपनी मसनद से उठकर खड़े हो गये और एशियाई ढङ्ग से पोलिटिकल एजेण्ट को छाती से लगाया। दरबार-गृह हैदराबाद का-सा ही सादा था, पर यहाँ उसकी अपेक्षा कम भीड़ थी। पोलिटिकल एजेण्ट फ़र्श पर अमीर के बग़ल में बैठाये गये। दरबार में अमीर के चाचा मीर ज़ंधी ख़ाँ, उनके भतीजे मीर नासिर ख़ाँ, मीर मुबारक, बीस बिलूची और उपर्युक्त दो हिन्दू उच्च अधिकारी उपस्थित थे। इस सभा का

मतलब, जैसा कि मुझे बाद को मालूम हुआ, अमीर साहब को यह सुझाना था कि वे बिलूचियों के कई डाकू फिर्क़ों को तङ्ग करने एवं दण्ड देने के लिए समुचित उपाय करें। मीर रुस्तम ने तदनुसार कार्य करने का वादा किया और अपने को अँगरेज़ों का सच्चा तथा विनम्र मित्र बताया। अमीर साहब साठ वर्ष के जान पड़ते थे। वे सुन्दर थे और उनकी बातचीत से जान पड़ता था कि वे ऊँचे विचार के तथा धर्मवान् हैं। उनके आठ पुत्र हैं। ख़ैरपुर एक बड़ा नगर है। राजमहल कच्चे दुर्ग के बीच में है। दूसरे दिन दोपहर के समय एक दूसरा दरबार हुआ और उसमें पोलिटिकल एजेंण्ट का बड़े सम्मान के साथ स्वागत हुआ। काम-काज की बातों के साथ लगभग एक घण्टे तक मधुर बातचीत होती रही। इसके बाद दरबार समाप्त हुआ। चलते समय जब कैप्टन ईस्टविक अमीर साहब तथा उनके कुटुम्बियों को अभिवादन करने को थे तब अमीर साहब ने कहा—अब मैं तुमसे मित्र के रूप में कहता हूँ। किसी दूसरे अँगरेज़ की अपेक्षा जिसे मैं मिला हूँ, तुम्हारे लिए मुझे बहुत अधिक ध्यान है, क्योंकि तुमसे बातचीत करके मुझे बहुत .खुशी हुई है। मुझे जान पड़ता है कि तुम एक नेक ईसाई हो। तुम्हारा हृदय दर्पण की तरह स्वच्छ है। इसलिए मैं तुम्हारा अपने एक पुत्र के रूप में सम्मान करता हूँ। कैप्टन ईस्टविक ने झुककर सलाम किया और उनकी बात का समुचित उत्तर दिया। इसके बाद हम अपने पड़ाव को चले आये। अपना नित्य का कार्य समाप्त कर हम अमीर के पास विदाई की भेंट करने के लिए गये। कोई आध घण्टे तक बातचीत करके लौट आये।

३०वीं को सवेरे हम सक्खर को रवाना हुए और नौ बजे पहुँच गये। सारे मार्ग में मैंने अमिलतास के पेड़ बहुतायत से

उगे देखे। वे सुन्दर होते हैं। उनके फूल गहरे पीले रङ्ग के होते हैं और उनके फल दो से तीन .फुट तक लम्बे और आध इञ्च चौड़े होते हैं। इसके फल के बीजों को ढँके हुए इसमें एक विचित्र गन्ध का मीठा गूदा होता है। भारत और फ़ारस के चिकित्सक इसे रेचक दवा के रूप में देते हैं। गरम पानी में एक आउंस इसका गूदा घोलकर और उसमें बादाम का तेल मिलाकर देने से नीचे की आँतों में बड़ा काम करता है। जान पड़ता है, सिन्धी लोग इसके गुण से परिचित नहीं हैं। नहीं तो बम्बई तथा दूसरे स्थानों को इसका चालान कर वे एक लाभ-दायक व्यापार शुरू कर सकते थे।

२ अप्रेल १८३९ को हमें शिकारपुर लौटने का आदेश हुआ। पिछले कुछ दिनों काम की इतनी अधिकता रही कि मुझे सवेरे से लेकर शाम तक मेज़ के सामने बैठा रहना पड़ता था। बाहर जाकर देखने-भालने को ज़रा भी .फुर्सत नहीं मिलती थी। अतएव एक दिन एक घण्टे का समय निकालकर मैं शाह ख़ैरुद्दीन का मक़बरा देख आया। यह एक सुन्दर इमारत है। सन् १६१९ में यह बना था।

तीसरी तारीख़ को हमने सक्खर छोड़ा और तीन मञ्ज़िलों में यात्रा करके आराम के साथ शिकारपुर पहुँच गये। यहाँ की हालत बदतर थी। बिलूची डाकू शहर की बाहरी बस्तियों तक प्रतिदिन धावा करते थें और बेचारे ऊँटहारों तथा उनके रक्षकों को घायल कर जाते या मार जाते थे। छावनी के बाहर हमारे देशी सैनिक बेकार थे, क्योंकि वे वहाँ से अपरिचित थे। बङ्गाल हाते के लम्बे, गठीले और सुन्दर सिपाहियों का उनकी बाहरी रूप-रेखा के अनुरूप दिल नहीं होता है।

यहाँ मैं उनकी वीरता का एक दृष्टान्त देता हूँ, जो उनके एक दल ने दिखाई थी। इसी महीने की ६ तारीख़ को सरकार

के ३९ ऊँटों को, जो पाँच सिपाहियों और एक नायक की संरक्षा में चरने को छोड़े गये थे, दोपहर के समय दस बिलूची डाकू पकड़ ले गये और दो चरवाहों को तलवार से घायल भी कर गये। उनको रक्त से डूबे देखकर बाक़ी लोग एजेंसी को भाग गये। रक्षकों ने भी उनका अनुकरण किया। इसके बाद नान-कमीशण्ड-आफ़िसर पोलिटिकल एजेण्ट के सामने जाकर उपस्थित हुआ। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—हुज़ूर, ठीक अभी डाकू लोग ३९ ऊँट पकड़ ले गये हैं। दो ऊँटहारे घायल हो गये हैं। शेष सब कुशल है। उस अफ़सर की यह रिपोर्ट सुनकर मुझे इतनी हँसी आई कि उससे बचने के लिए मैं अपनी मेज़ छोड़कर कमरे के बाहर आया। वहाँ से मैंने पोलिटिकल एजेण्ट और नायक की यह बातचीत सुनी—

पोलीटिकल एजेण्ट—डाकू कितने थे ?

नायक—थे तो दस, परन्तु उनके पीछे हमने धूल का बादल उमड़ता देखा, जिससे जान पड़ा कि उनकी एक बड़ी संख्या पीछे आ रही है।

पो० ए०—तुमने डाकुओं पर गोली क्यों नहीं दागी ?

ना०—हम लोग एक पेड़ के नीचे खाना पका रहे थे। घायल आदमियों को भागते देखकर हम आपके पास दौड़ आये।

पो० ए०—तुम लोग बड़े अच्छे सैनिक हो !

ना०—ऐसे अच्छे कथन के लिए मैं श्रीमान् को धन्यवाद देता हूँ। मैंने अपना कर्तव्यपालन किया है।

पो० ए०—अच्छा कथन और धन्यवाद ! तुम्हारे इस असैनिक आचरण के लिए मैं तुमको फ़ौजी अदालत में भेजूँगा।

ना०—तब हमें श्रीमान् के हाथों से अपनी सेवाओं के बदले में ऐसा पुरस्कार पाने के लिए अपने दुर्भाग्यदेव को धन्यवाद देना चाहिए।

पो० ए०—मेरे सामने से चले जाओ। अब एक शब्द न कहना और कभी मुझे अपना मुँह न दिखाना। घूम जाओ। छावनी को चले जाओ।

मैं कैप्टन ईस्टविक के साथ बारह वर्ष से था। यह पहला अवसर था जब मैंने उनको इस प्रकार क्रोध करते देखा था। उन्होंने तुरन्त ही बङ्गाल घुड़सवार के एक दल को, रिसालदार नूरबख़्श के नेतृत्व में, डाकुओं का पीछा करने को भेजा; परन्तु उनका चिह्न तक न मिला, मानो पृथ्वी ऊँटों सहित उन्हें हड़प कर गई थी। किन्तु सबसे अधिक सङ्कट की बात वहाँ की गर्मी थी। हमें विश्वास था कि यदि और कोई वस्तु हमें विनष्ट नहीं करेगी तो गर्मी जरूर ही विनष्ट कर डालेगी। आधी रात के बाद के छः घण्टों में ठण्डी हवा मिलती थी। शेष घण्टों में हमारे लिए जहन्नुम की खिड़की खुली रहती थी। खुली धूप में रहने से मौत निश्चित थी। परन्तु वहाँ के लोग और बिलूची डाकू मजे में उस धूप को बर्दाश्त करते थे। वे सवेरे से सन्ध्या तक बिना कुछ खाये-पीये बराबर चलते रहते थे। परन्तु यह बात भारत के लोगों की शक्ति के बाहर थी और योरपीयों का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

और अधिक समय तक गर्मी न सह सकने पर मैंने जवासे की एक टट्टी बनवा ली और सवेरे से शाम तक पानी छिड़कने के लिए एक भिश्ती नियुक्त कर लिया। इस व्यवस्था से मुझे आराम मिला।

११वीं को सवेरे मैंने अपने नौकर को बिस्तरा झाड़ने और सूखने के लिए उसे धूप में डाल देने की आज्ञा दी। ज्यों ही गद्दा अपनी जगह से हटाया गया, मैंने देखा कि एक बड़ा भारी बिच्छू दरी के किनारे मौज से रेंग रहा है। इतना बड़ा बिच्छू मैंने कभी पहले नहीं देखा था। यह काले रङ्ग का था। इसकी देह

पर रोयें से थे, दुम काली-मायल हरी और डङ्क लाल था। मैं और मेरा नौकर उसे देखकर भय से स्तम्भित हो गये। इसी समय शहर के एक सज्जन मेरे अफ़ग़ान मित्र अता मोहम्मद ख़ाँ काकर मुझसे मिलने आ गये। उस बिच्छू को देखकर उन्होंने कहा—लुत्फ़ुल्ला, तुम भाग्यशाली हो। आज बाल-बाल बच गये। यह अपने डङ्क से एक क्षण में जान ले लेता है। मैंने कहा—मुझे इसका ज़रा भी डर नहीं है। भाग्य में जब तक ऐसा न होगा, यह मुझे डङ्क नहीं मारेगा। अब मैंने उसे मिट्टी के एक छोटे से वर्तन में रेंग जाने को प्रवृत्त किया। जब वह उसके भीतर चला गया, मैंने वर्तन का मुँह बन्द कर दिया। फिर आग जलाकर मैंने उस वर्तन को उसमें रख दिया। एक घण्टे में वह बिच्छू जलकर राख हो गया। इस राख की आधा ग्रेन की .ख़ूराक जवान आदमी को देने से पार्श्वशूल को विशेष लाभ पहुँचता है।

मुझे वताया गया कि शिकारपुर और उसके अधीनस्थ इलाक़ों का राजस्व तीन लाख रुपये के लगभग है और उसके सात हिस्से लगते हैं। इनमें चार हिस्से हैदरावाद के दो अमीरों—नूरमोहम्मद और नसीर मोहम्मद—को मिलते हैं और शेष तीन हिस्से .ख़ैरपुर के अमीर पाते हैं। इन तीन में एक मीर मुवारक और दो मीर रुस्तम पाते हैं। हैदरावाद के अमीरों के हिस्सों का ठेका चौदह हज़ार रुपया वार्षिक पर जेतमल नाम के एक बहुत ही चतुर और शक्तिशाली हिन्दू को दे दिया गया है। जेतमल पहले शराव वेचने का काम करते थे। परन्तु अपने धन, बुद्धि और योग्यता के द्वारा इस ऊँचे दरजे को पहुँच गये। वे बहुत लम्वे और स्थूल हैं। कहा जाता है कि रात के भोजन में वे एक वकरा और एक वोतल ब्रैंडी साफ़ कर जाते हैं।

मेरे मित्र जेतसिंह महाजन ने वताया कि ख़ैरपुर और उसके अधीनस्थ तालुक़ों का राजस्व पाँच लाख रुपया वार्षिक के लग-

भग है। यह रक़म पाँच हिस्सों में बँट जाती है। तीन हिस्से मीर रुस्तम को, एक हिस्सा मीर मुबारक को और बाक़ी एक हिस्सा दूसरे कुटुम्बियों को मिलता है।

१२वीं को सवेरे कैप्टन ईस्टविक को ख़बर मिली कि बिलूची डाकुओं का एक दल लगभग ३० मील की दूरी पर छिपा हुआ है। उन्होंने उन पर अचानक आक्रमण करने का निश्चय किया। वे अपने साथ बीस सवार लेकर दोपहर को रवाना हुए और दूसरे दिन सवेरे उस स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ उन्हें राख और लीद इधर-उधर पड़ी हुई मिली। अतएव उन्हें निराश लौटना पड़ा। थकावट से पस्त वे शाम को पड़ाव में आ गये।

डाकुओं की रोक-थाम करने के लिए इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि स्थानीय लोगों की एक सेना खड़ी की जाय, अतएव उन्होंने इसकी अनुमति प्राप्त करने के लिए सरकार को लिखा। परन्तु अधिकारियों के उत्तर की प्रतीक्षा के लिएसमय न होने से उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी पर १५वीं तारीख़ से बिलूचियों को भर्ती करना शुरू कर दिया। इसके लिए खोसा और काहिरी फ़िर्क़ों के दो सरदार चुने गये; क्योंकि इन दोनों फ़िर्क़ों की डोमकी, जकरानी, बगती, मर्री, मज़ारी, लधारी, बुर्दी, रिन्द और बिरोही फ़िर्क़ों से लड़ाई थी और इन्हीं फ़िर्क़ों के आदमी डाकेज़नी के लिए बदनाम थे।

पहला सरदार क़ादिरबख़्श खोसा था, जिसे हमने नौकर रक्खा था। यह एक बहुत ही सुन्दर नौजवान था। पचीस वर्ष का रहा होगा। इसके साथ पचास सवार थे। यह सभी खोसों तथा अन्य दूसरे लोगों का, जो उसके द्वारा नियुक्त किये जाने को थे, नेता बनाया गया। मेरा काम कठिन था, क्योंकि मुझे उन जङ्गली आदमियों तथा उनके जंगली घोड़ों के नाम एवं उनके विवरण लिखने पड़ते थे। उनके चेहरों का रङ्ग

और चिह्न देख-देखकर जब मैं उनके नाम लिखता तब उनमें से कुछ तो बहुत ही हँसते थे। वे अपनी ठीक-ठीक उम्र नहीं जानते थे। जिनकी दाढ़ियाँ सफ़ेद हो गई थीं वे तक मुझे विश्वास कराने का प्रयत्न करते कि उनकी उम्र २५ या ३० वर्ष से ज़्यादा नहीं है।

२६वीं को हमारे जासूसों ने ख़बर दी कि एक ईरानी सज्जन नगर में आये हैं। हम तुरन्त ही उनके स्थान पर गये और देखा कि दो ऊँट लादे जा रहे हैं और उनके नौकर चलने की तैयारी कर रहे हैं। हमें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वे एक शरीफ़ आदमी हैं और उनका कोई ख़ास मतलब है, जिसे वे प्रकट नहीं करना चाहते। उन्होंने दूसरी चर्चा छेड़कर हम लोगों से कहा कि वे दर्वेश हैं और उनका नाम नूरशाह है तथा संसारी मामलों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। पोलिटिकल एजेण्ट ने उनसे कहा कि आप जब तक यहाँ आने का समुचित कारण नहीं बतलायेंगे, अपने को हमारी क़ैद में समझें। इसका उन्होंने अपनी ओजस्विनी भाषा में विरोध किया, पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा और राजबन्दी के रूप में वे एजेंसी में पहुँचा दिये गये।

दोपहर के बाद मैं ख़ानपुर भेजा गया, जो वहाँ से लगभग तेरह मील दूर था। मुझे ख़ानपुर में काहिरी फ़िर्क़े के सरदार कमालख़ाँ से मिलना था। उससे यह कहना था कि पोलिटिकल एजेण्ट से चलकर भेंट करो, वे तुम्हें सरकारी नौकरी में लेना चाहते हैं। छः बिलूची सवारों को लेकर मैंने प्रस्थान किया और रात होते-होते वहाँ राज़ी-.ख़ुशी पहुँच गया। मेरे साथ के बिलूची .ख़ुशदिल आदमी थे। ज्यों ही वे छावनी की सीमा के बाहर हुए और जङ्गल में पहुँचे, उनकी .ख़ुशी का ठिकाना न रहा। वे सारी राह हँसते, बातें करते और गाते

रहे। मैंने उनसे पूछा कि यदि डाकुओं ने हम पर आक्रमण कर दिया तो क्या होगा। उन्होंने कहा कि हम भी उन पर आक्रमण करेंगे। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया—मित्र, इसके लिए चिन्ता न करो। जब तक हम लोगों के सिर हमारे कन्धों पर हैं, डाकू तेरे शरीर को छूने तक का साहस न करेगा।

वृद्ध कमालखाँ ने मुझे जङ्गल के फ़िर्क़ों के आतिथ्य के साथ लिया। उन्होंने दो अच्छी भेड़ें पकवाईं और घी की कुछ पूड़ियाँ बनवाईं। मैंने उनके और उनके कुछ बिलूची सम्बन्धियों के साथ भोजन किया। इसके बाद हमने नमाज़ पढ़ी। मुझे उनके आग्रह पर आगे खड़े होकर नमाज पढ़नी पड़ी। मेरे नमाज पढ़ने के ढङ्ग से उन जङ्गली लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ। सोने को जाने के पहले मैंने अपने काम के बारे में कमालखाँ से अच्छी तरह बातचीत की। तुरन्त ही हमारे नौकर हो जाने से उन्हें कितना अपरिमित लाभ होगा, यह बात मैंने उनके मन में बैठा दी। उन्होंने अपनी रज़ामन्दी जाहिर की और कहा कि वे और उनके फ़िर्क़े के लोग इस शर्त पर अँगरेज़ की नौकरी करेंगे कि उनके धर्म में हस्तक्षेप न किया जाय, क्योंकि उनसे कुछ लोगों ने कहा है कि अँगरेज़ पहले तो देश पर क़ब्ज़ा करेंगे, इसके बाद लोगों को अपना धर्म स्वीकार करने को बाध्य करेंगे। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि इस सम्बन्ध में उन्हें ज़रा भी नहीं डरना चाहिए और ऐसी गढ़ी हुई कहानियों को नहीं सुनना चाहिए। मैंने उनसे पूछा कि आपने क्या ऐसी कोई बात सुनी है कि अँगरेज़ों ने भारत में, जहाँ वे पिछले सौ वर्ष से राज कर रहे हैं, किसी धर्म के लोगों के साथ ऐसी ज़बर्दस्ती की हो। अँगरेज़ों की सहनशीलता के प्रमाण के लिए तो आपको उनकी सेनायें अपनी आँखों से देखनी चाहिएँ, जिनमें आप सभी जातियों के लोगों को सरकार की ओर से बिना किसी

रोक-टोक के अपना धर्म पालन करते हुए पायँगे। अन्त में मैंने उनसे पूछा कि मेरे बारे में आपकी क्या राय है, जो गत बाईस वर्ष से अँगरेज़ों के साथ है। यह सब सुनकर उन्होंने अपनी तर्जनी अँगुली अपनी दोनों आँखों पर रक्खी, जिससे यह प्रकट किया कि उनको मेरी बात का पूरा विश्वास है।

दूसरे दिन बहुत तड़के हम कमालख़ाँ के साथ ख़ानपुर से चले और शिकारपुर की एजेंसी में आठ बजे दिन में पहुँच गये। मैंने उन्हें पोलिटिकल एजेण्ट के सामने पेश किया। उन्होंने कमालख़ाँ को उनके साथियों के सहित कम्पनी बहादुर की नौकरी में इस शर्त पर रख लिया कि वे अँगरेज़ी हितों के प्रति सदा वफ़ादार रहेंगे।

२९वीं को शहर के कुछ मित्रों के आग्रह पर मैं एक विचित्र आदमी को देखने गया। उसके चेहरे के दाहने ओर माथे से ठुड्डी तक हाथी की सी एक छोटी सी सूँड़ निकली हुई थी। वह केवल अपनी बाईं आँख से देख सकता था। उसकी दूसरी आँख उक्त सूँड़ से ढँकी हुई थी। वह युवक लगभग बीस वर्ष का था। उसका दिमाग़ दुरुस्त था। मैंने उससे सिन्धी भाषा में कई प्रश्न पूछे, जिनका उसने यथोचित उत्तर दिया।

अब एक दूसरी कठिनाई आ उपस्थित हुई। हमारे व्यवस्थित सैनिक इन नव नियुक्त बिलूचियों और डाकू बिलूचियों में भेद नहीं कर पाते थे। जब कभी वे इन बिलूचियों में से तीन या चार को छावनी के नज़दीक देख पाते, बीस या तीस देशी सैनिक उन पर जा टूट पड़ते, झिझकोरकर पकड़ते, मारते और हमारे पास उन्हें ले आते, कभी कभी घायल भी कर डालते थे।

हम अपने नये शेरों के क्रोध को उनको सधाने में भड़काना नहीं चाहते थे. अतएव हमने उनसे कहा कि वे हमारी पेटी

पहना करें ताकि जान पड़े कि वे हमारे ही आदमी हैं। कुछ कठिनाई के बाद वे हमारी दासता की रस्सी बाँधने को राज़ी हुए।

५वीं मई को पोलिटिकल एजेण्ट ने अपना घोड़ा सरवरख़ाँ लोहानी को चढ़ने को दिया। वह उस सुन्दर घोड़े पर चढ़कर हमारे बिलूची सवारों के एक दल को अपने साथ लेकर डाकुओं का पीछा करने गया। वह धूप में गया था। ताप-मान १५०° था। वह अपने दल के साथ शाम को लौटा। उसने केवल एक डाकू पकड़ा था। अपनी वीरता दिखलाने के लिए वह उस डाकू का सिर काटकर लाया था। बेचारा घोड़ा अपने निर्दय सवार को लौटा लाया था। ज्यों ही अस्तबल में उसकी काठी खोली गई, वह गिरकर मर गया।

गर्मी अब असह्य हो गई थी। गर्मी की तीव्रता जानने के लिए मैंने कुछ अण्डे धूप में रखवा दिये। लगभग चालीस मिनट में वे भले प्रकार भुन गये।

७वीं को मिसरीख़ाँ खोसा के नेतृत्व में हमारे बिलूचियों के एक दल ने डाकुओं के एक गिरोह को जा पकड़ा। उनसे लड़ाई हुई, जिसमें ख़ुद मिसरीख़ाँ के कन्धे और पैर में दो घाव आये। परन्तु वह चार डाकुओं को पकड़ लाने में सफल हुआ। वे दोम्की और दश्ती फ़िर्क़ों के थे और प्रसिद्ध रहमान के साथियों में थे। उनके साथ क्या व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में पोलिटिकल एजेण्ट ने शिकारपुर के गवर्नर जेतमल से सलाह माँगी। गवर्नर ने यह राय दी कि उन्हें अपमानित कर और कष्ट देकर तुरन्त मार डालना चाहिए। पोलिटिकल एजेण्ट और उनके अँगरेज़ मित्रों ने उन शैतानों को मृत्यु-दण्ड देने का निश्चय किया, परन्तु पीड़ा देने की सज़ा मंसूख़ कर दी और प्रति दिन एक-एक को फाँसी देने का हुक्म दे दिया। जब मैंने धड़कते हुए दिल से उन्हें सज़ा का अर्थ, विशेष कर उनमें से एक को अगले

दिन फाँसी देने का संकेत करके, उनकी भाषा में बताया तो उन्होंने क्रूर दृष्टि से मुझको घूरा, पर कहा कुछ नहीं। जिस आदमी की ओर मैंने संकेत किया था उसने लापरवाही से कहा—ईश्वर की मर्ज़ी पूरी होनी चाहिए। इधर मेरे मित्र मिसरीख़ाँ के घावों को हमारे डाक्टर ने सी दिया और पट्टी बाँध दी। इस अवसर पर उन्होंने आह तक न की। वे डाक्टर को धन्यवाद देकर अपने पैरों अपने घर चले गये। उनको अपना बहुत अधिक रक्त निकल जाने की कुछ परवा न थी। उनके रक्त से उनके वस्त्र तर थे। उनके जाने के समय मैंने कहा—मुझे दुःख है कि आप इस सङ्कट में पड़ गये। इसे आपकी महत्त्वाकांक्षा ने ही बुलाया है। उन्होंने क्रोध के साथ जवाब दिया—अरे मर्द! इसे सङ्कट क्यों कहते हो? यह एक सम्मान है और इसे प्रत्येक आदमी प्राप्त कर सकता है। इसके चिह्न मेरी देह पर सदा अमिट रहेंगे। इसके बाद मैंने उनके जल्दी चङ्गे हो जाने के लिए अपनी शुभ कामना प्रकट की और कुछ समय के लिए हम दोनों का वियोग हो गया।

ग्यारहवाँ अध्याय

११वीं को हमने सुना कि ५वीं बम्बई की एक टुकड़ी, कुछ बिलूच सवार और खानपुर के खोसा लोगों में युद्ध हुआ है। हमारे चार आदमी मारे गये; सूबेदार और मिस्टर स्टेनले घायल हुए। खोसा लोगों के तीस आदमी काम आये। इस घटना का कारण भाषा का न जानना था। क़िले से खोसा लोगों ने मित्रता-सूचक जो सब संकेत किये, उन्हें हमारे लोगों ने शत्रुता-सूचक समझा, जैसा कि बाद को पोलिटिकल एजेंट के सामने सिद्ध किया गया। दूसरे दिन घायल और क़ैदी लाये गये। पोलिटिकल एजेण्ट ने क़ैदियों को छोड़ दिया और घायल लोग हमारे योरपीय डाक्टर की निगरानी में रक्खे गये।

बाढ़ के उपलक्ष्य में इसी समय शहर से एक मील दूर नदी की शाखा पर एक बहुत बड़ा वार्षिक मेला लगा। मैं उसे देखने गया। स्त्री और पुरुष दोनों का विशाल समुदाय था। हिन्दू जाति की सुन्दरियों के देखने का मौक़ा मिला। इँगलैण्ड की अप्सराओं की अपेक्षा उनमें से कुछ कम सुन्दर तथा सुघर नहीं थीं। सर्वत्र प्रसन्नता का राज्य छाया हुआ था।

१८वीं को मैं जेतसिंह महाजन से मिलने गया। उसके पास जो रत्न गिरवीं रक्खे थे उनमें मैंने पन्ने की बालियों की एक जोड़ी देखी। उन दोनों पन्नों में से प्रत्येक कबूतर के अण्डे से बड़ा था। वे निर्दोष भी थे। उनका मूल्य बीस हज़ार आँका जाता था और वे अठारह हज़ार में गिरवी रक्खे गये थे।

दो या तीन दिन तक शिकारपुर बिना गवर्नर के रहा। यह कहे जाने पर कि तुम हटा दिये गये हो, भूतपूर्व गवर्नर

जेतमल भाग खड़े हुए थे। इसी बीच में हैदराबाद से यह आज्ञा आई कि अभी गवर्नर नहीं बदला जायगा। इसकी सूचना गवर्नर के मित्रों ने उनके पास पहुँचा दी। वे तुरन्त अपनी जगह पर फिर आ गये। परन्तु वे मुश्किल से आये थे कि उन्हें उनके शत्रु के आने की ख़बर मिली और वे फिर भाग गये।

इस्माइलशाह के जेठे पुत्र तक़ीशाह नये गवर्नर होकर २६वीं को आये। अपने पद का कार्य-भार ग्रहण करने के बाद वे पोलिटिकल एजेण्ट से मिलने गये और उन्होंने अपने मालिक तथा अपने वृद्ध पिता मिनिस्टर के शुभकामना-मूलक सन्देश कहे। उन्होंने इस बात के लिए गहरा खेद प्रकट किया कि उनके पूर्वाधिकारी के फाँसने की दरबार की चाल कारगर न हुई, नहीं तो अपने स्वामी के तथा अपने लिए उस सोने की चिड़िया से उन्होंने अगणित सोने के अण्डे रखाये होते।

छठीं जून को नये पोलिटिकल एजेण्ट मिस्टर रास बेल आ गये। उनकी बाहरी रूप-रेखा बहुत ही सुन्दर थी। परन्तु मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि वे बड़े घमण्डी हैं। वे सभी लोगों को अपने से छोटा समझते थे और सरकारी नौकरों के साथ ग़ुलाम का सा व्यवहार करते थे।

मिस्टर रास बेल का काम करने का तरीक़ा भिन्न था। वे न तो अपने कर्मचारियों का विश्वास करते थे और न उनके कर्मचारी उनके प्रति श्रद्धा का भाव रखते थे। अपने सोफ़ा पर पड़े पड़े वे, झुककर खड़े हुए, अपने मुंशी को पत्र लिखाया करते थे। क्या मजाल कि वह कुर्सी या फ़र्श पर ही बैठ जाय। बेचारा खड़ा अपने कमरबन्द में दावात बाँधे एक-एक शब्द, चाहे कोई अर्थ हो या न हो, लिखते रहने को बाध्य था। यह अपमान कौन सहन कर सकता है? चाहे पोलिटिकल एजेण्ट के बराबर वेतन मुझे दिया जाता, मैं तो उसे कदापि न सहन

करता। परन्तु मेरे मित्र त्रिबेनिश्रा सहा (त्रिवेणीसहाय ?) तथा उसके साथी खुले सिर इस दासता का आनन्द लेते जान पड़ते थे।

कलेवा करने के बाद एक दिन सवेरे कैप्टन ईस्टविक ने मुझे ऊपरी सिन्ध की अपनी अन्तिम रिपोर्ट में कुछ कोरी जगहें भरने के लिए बुलाया। वे मिस्टर रास बेल के साथ एक ही कमरे में थे, जो अपने मुंशी को पत्र लिखा रहे थे। मुझसे कई प्रश्न पूछे गये, जिनका मैंने उत्तर दे दिया। जब मैं उस कमरे से बाहर आने लगा, मैंने बड़े साहब को एक अशुद्ध वाक्य लिखाते सुना, जिसे उनके मुंशी ने ज्यों का त्यों लिख लिया। यह सोचकर कि यदि वह वाक्य लिखा रह गया तो ब्रिटिश हितों के लिए हानिकर सिद्ध होगा, मैं उस भूल को शुद्ध करने से अपने को न रोक सका। इस पर उन बड़े साहब ने मुझे ऐसी क्रूर दृष्टि से देखा, मानों उनकी शक्ति में होता तो वे मुझे खा जाते, परन्तु उनके क्रोध की कुछ भी परवा न करके मैं लौट पड़ा और अपनी जगह पर जा बैठा। शाम को कैप्टन ईस्टविक ने मुझसे कहा कि मिस्टर रास बेल, काम में हस्तक्षेप करने से, तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज़ हैं। मैंने उनसे कहा कि कर्तव्य की प्रेरणा से मैंने उस भूल को सुधारा था।

२४वीं जून की रात को बारह बजे मैं जगाकर एजेंसी के एक निजी कमरे में बुलाया गया। वहाँ कैप्टन ईस्टविक और मिस्टर बेल अपने हाथों में फ़ारसी के कुछ काग़ज़ लिये बैठे थे। मैं अपनी जगह पर बैठ गया। मिस्टर बेल ने फ्रेञ्च में कुछ कहा। मैं समझता हूँ कि उन्होंने पूछा था कि मेरा विश्वास किया जाय या नहीं। 'हाँ' में उत्तर पाने पर वे काग़ज़ मुझे पढ़ने और उनका अर्थ बताने के लिए दिये गये। मुझे विश्वास है कि उस बड़े आदमी के किसी षड्यन्त्री ने उन काग़ज़ों को बीच में

ही रोक लिया था। मैंने उन काग़ज़ों को पढ़कर सुना दिया। बड़े साहब ने कुछ बातें नोट कर लीं। कोई दस मिनट तक वे कैप्टन ईस्टविक से उस विषय पर फ्रेञ्च में बातचीत करते रहे। इसके बाद मिनिस्टर फ़तेह मुहम्मदख़ाँ ग़ोरी के पास एक महत्त्व-पूर्ण सन्देश लेकर मुझे सक्खर जाने की आज्ञा हुई।

२५वीं की रात को १ बजे मैंने शिकारपुर छोड़ा और मैं दूसरे दिन ११ बजे मिनिस्टर की छावनी में पहुँच गया। मैंने उनसे सन्देश की बात कही और उनके साथ कलेवा किया। इसके बाद धूप से अपने को और अपने घोड़े को बचाने के लिए एक एकान्त स्थान चुनकर मैंने अपनी रिपोर्ट लिखी और अपने साथ के एक सवार के हाथ उसे कैप्टन ईस्टविक के पास भेज दिया। चार घण्टे तक मैंने वहाँ विश्राम किया, यदि उसे विश्राम कहा जा सके, क्योंकि मैं जिस वृक्ष के नीचे ठहरा था वहाँ तापमान ११६° था। मैं दोपहर बाद ३ बजे शिकार-पुर को चला, जहाँ मैं ११ बजे रात को पहुँच गया। मैं बहुत थक गया था।

२४वीं जुलाई को मैं हैदराबाद के मिनिस्टर मीर इस्माइल-शाह से सरकारी भेंट करने के लिए भेजा गया, जो वहाँ सवेरे कलकत्ते जाते हुए आये थे। वे पचासी वर्ष के हो चुके थे और उनकी बुद्धि का भ्रंश हो गया था। उनके आठ पुत्र थे जो सबके सब सरकारी ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। कहा जाता है कि उनके पास पाँच लाख रुपया नक़द और कई गाँव हैं। इतने वैभव से, मेरी समझ में, उन्हें सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था; परन्तु वे और अधिक संग्रह कर लेने के मोह में पड़े हुए थे।

२९वीं जुलाई को कैप्टन ईस्टविक को हैदराबाद जाने और वहाँ की रेज़ीडेंसी का कार्य-भार सँभालने का आदेश मिला। अतएव मैंने चिट्ठियों के सारे मसविदे अपने मित्र असिस्टेण्ट

पोलिटिकल एजेण्ट कैप्टन पोस्टंस को दे दिये और मैं हैदराबाद लौटने की तैयारी में लग गया।

मैं शहर में कई मित्रों से बिदा की भेट करने गया। इनमें एकात्त अब्दुर्रहमानखाँ दुर्रानी भी एक थे। इस वृद्ध भले आदमी ने, अँगरेज़ी विचारों के अनुसार, अपने मित्रों से अपनी स्त्री को मुँह खोलकर मिलने की अनुमति देकर ऊँचे दर्जे की सभ्यता प्राप्त कर ली थी। इस स्त्री से मिलने और बातें करने का मुझे कई बार अवसर प्राप्त हो चुका था। इस बार निमन्त्रण पाने पर मैंने इसके और इसके सभ्य पति के साथ भोजन करने का सुख प्राप्त किया। इस स्त्री ने अपनी सुन्दरता से शिकारपुर की सुन्दरियों को मात कर दिया था। उसी प्रकार यह चतुराई और योग्यता में अपने सीधे-सादे पति से बढ़ी-चढ़ी थी और ऐसा जान पड़ता था कि यह उसकी नाक पकड़कर उसे नचाया करती है।

पुरुषों की बैठकों से स्त्रियों को अलग रखना अँगरेज़ लोग दोष समझते हैं, परन्तु हम सच्चे ईमानवाले इसे एक गुण मानते हैं। अँगरेज़ अपनी स्त्रियों को खुला छोड़ देते हैं और उन्हें एकान्त में तथा सर्वसाधारण में पुरुषों से मिलने-जुलने देते हैं। इस प्रथा के कारण न मालूम कितने ऊँचे घराने विनष्ट हो गये! केवल लन्दन में अस्सी हज़ार स्त्रियों के नाम काले रजिस्टर में दर्ज हैं।

मैं यह नहीं कहता कि सभी मुसलमान स्त्रियाँ सती हैं। परन्तु मुसलमान-धर्म ने इस सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध लगा दिये हैं तथा जो परम्परा स्थापित कर दी है उससे बेशक बुराई की रोक-थाम होती है तथा सदाचार की वृद्धि होती है।

१२ अगस्त १८३९ को हम शिकारपुर से हैदराबाद को रवाना हुए। यह यात्रा हमने दो छोटी-छोटी नावों से की।

शहर से दो मील पर सिन्ध नदी की एक शाखा-नदी में हमारे लिए उक्त नावों का प्रबन्ध किया गया था। कैप्टन ईस्टविक के स्वागत के लिए वहाँ जो जन-समुदाय एकत्र हुआ था उसके भीतर से वे अपने आपको बड़ी कठिनाई से निकाल सके। यही नहीं, उनमें से कुछ ने तो हमें छः या सात मील चलकर आ पकड़ा और कैप्टन ईस्टविक के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की। नदी के बाढ़ पर होने से हमें चारों ओर का दृश्य बहुत ही मनोरम दिखाई दिया। परन्तु इस जल-यात्रा में हमें तीन शत्रुओं से युद्ध करना पड़ा—सूर्य की धूप, नाव के चूहे और नदी के मच्छड़। पहले ने सारा दिन हम पर अपनी शक्ति की परीक्षा की, दूसरे ने नींद में विघ्न डाला और तीसरे रात भर हमारे शरीर का रक्त चूसते रहे।

नहर से होकर अपनी नावें खींचते और घसीटते हुए चार दिन की यात्रा में हम १५वीं को एक बार फिर सक्खर पहुँचे। यहाँ दूसरे दिन कैप्टन ईस्टविक के छोटे भाई से भेट हुई। इन्हें पोलिटिकल एजेण्ट के सहायक का पद मिलने को है। ये कई एशियाई भाषाओं से भली भाँति परिचित हैं। हम यहाँ कोई एक हफ़्ते तक ठहरे रहे। यहीं हमें इस बात की ख़बर मिली कि ग़ज़नी पर सर जे० कीन का अधिकार हो गया।

ऊपरी सिन्ध प्रान्त की अवस्था जल्दी जल्दी गिरती हुई जान पड़ती थी। नये पोलिटिकल एजेण्ट ज़्यादातर झगड़ने में ही, विशेष कर ब्रिगेडियर जनरल के साथ, लगे रहते थे।

२४वीं अगस्त को हम सक्खर से चले और २८वीं को राज़ी-ख़ुशी हैदराबाद पहुँच गये। हमने यहाँ कैप्टन जे० डी० लेकी के सुखद साथ में अपने चार दिन मुश्किल से बिताये थे कि कैप्टन ईस्टविक को ज्वर हो आया, अतएव वे ठट्टा को और वहाँ से कराची जाने को लाचार हुए। वे मुझे ठट्टा के

पड़ाव में सामान-सहित छोड़ गये थे। मुझे भी कई बार ज्वर आया और डाक्टरी सहायता न प्राप्त कर सकने पर मैंने अपनी दवा ख़ुद की और सनाय तथा नागदौन का जोशाँदा पिया। यह पड़ाव के आस-पास यहाँ कसरत से उगा हुआ था।

१५वीं सितम्बर को बड़ी विकट गर्मी थी। परन्तु सन्ध्या को बहुत ही अच्छी ठण्ड हो गई और भिन्न-भिन्न रङ्गों से सन्ध्या ने सारे आकाशमण्डल को आच्छादित कर लिया। इतने में दक्षिण-पश्चिम की ओर से एकाएक एक काला बादल उठा और उसने चारों ओर छा लिया, जिससे अन्धकार हो गया। इसके बाद गर्जन-तर्जन और भयानक तूफ़ान के साथ घनघोर वृष्टि होने लगी। मैंने सिन्ध में चार महीने के भीतर तीन तूफ़ान देखे थे, परन्तु यह उन सबका दादा था। अनेक अफ़सरों के ख़ेमे टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ गये। परन्तु मेरा छोटा ख़ेमा, लोहे की मेख़ों के पथरीली ज़मीन में गड़ी होने से, जैसा का तैसा खड़ा रहा, यद्यपि उसके भीतर दो .फ़ुट ऊँचा पानी भर आया था, जिस पर मेरा बिस्तर और सामान उतरा रहा था। कोई दो घण्टे तक यह दशा बनी रही। सौभाग्य से आठ बजे रात में तूफ़ान का उग्र रूप शान्ति में परिणत हो गया और हम पानी से तर-बतर बिस्तर पर लेटे। २०वीं तक बारी-बारी से तूफ़ान आता रहा।

२८वीं को मैंने एक बहुत ही बीभत्स दृश्य देखा। २६वीं रेजिमेण्ट की छठी कम्पनी के एक सिपाही ने अपने बच्चों को मारकर आत्म-हत्या कर ली। यह एक मराठा था और पचीस बरस का रहा होगा। दस दिन हुए, एक बच्चा प्रसव कर उसकी स्त्री मर गई थी। उसे तीन बच्चों की देख-रेख करनी पड़ती थी। पहला पाँच वर्ष का, दूसरा तीन का और तीसरा यही नवजात शिशु था। इन सङ्कटों से तङ्ग आकर उसने

दस बजे रात में दोनों बड़े लड़कों का गला काट डाला और तब अपने आपको गोली मार ली। उन सबको देखकर मैं रो पड़ा। मैं उस रात को सो नहीं सका।

पाँच हफ़्ते की अनुपस्थिति के बाद कैप्टन ईस्टविक ठट्ठा को १९वीं अक्टूबर को लौटे। २१वीं को हम रेज़ीडेंसी का काम सँभालने के लिए हैदराबाद को चले। हमें नदी के प्रवाह के विरुद्ध जाना था। नाव को खींचते-घसीटते हुए हम चार दिन में हैदराबाद पहुँचे। यहाँ अपने मित्र कैप्टन लेकी को ज्वर से अधमरा देखकर मुझे दुःख हुआ। उनकी ठठरी भर रह गई थी।

२९वीं को मुझे बहुत ही ज़ोर से ज्वर आया। वह एक हफ़्ते तक बराबर बढ़ता गया। उसने मेरी सारी शक्ति नष्ट कर दी और मुझे इतना कमज़ोर कर दिया कि मैं बिस्तरे पर बिना किसी की मदद के हिल-डुल नहीं सकता था। कैप्टन ईस्टविक मेरे रोग-मुक्त होने के लिए चिन्ताकुल थे। कोई चिकित्सक भी नहीं था। सनाय और नागदोन का मिकसचर ही केवल एक दवा थी, जो मैं कर सकता था। नौ दिन के बाद ज्वर रुका। इसके बाद तीन दिन तक शक्कर का शर्बत पीने से विशेष लाभ हुआ और मैं बिलकुल चङ्गा हो गया। परन्तु बीमारी से इतना कमज़ोर हो गया था कि कुछ दिनों तक खड़ा नहीं हो सकता था तथा चल-फिर भी नहीं सकता था। इसी समय रमज़ान का महीना आया और कमज़ोरी के कारण मैं व्रत नहीं रख सका।

इन्हीं दिनों जब मैं एक सवेरे रेज़ीडेंसी के हाते के बाहर निकला, एक नौजवान ने मेरे पास आकर एक मुसलमान की तरह मुझसे अभिवादन किया। वह अपने हाथ में एक भद्दा सा डण्डा लिये था और एक गट्ठर कन्धे पर लादे हुए था। उसने मुझसे पूछा—क्या बड़े साहब रेज़ीडेंसी में हैं? उनसे भेंट हो

सकती है ? मैंने उसे एक गँवार दरिद्र यात्री समझा। रुखाई के साथ उत्तर देकर मैं अपनी राह लगा। इसके बाद वह रेज़ीडेंसी के फाटक पर गया, परन्तु रक्षक ने उसका दरिद्र रूप देखकर उसे भीतर नहीं आने दिया। तब वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया और अपने थैले से रोटी का एक टुकड़ा निकालकर खाने लगा। टहल चुकने के बाद मैं अपने डेरे में लौट आया और जब मैं कलेवा करने लगा तब उसकी दयनीय दशा की याद कर मैंने अपने नौकर को उसे रोटी और दाल दे आने के लिए भेजा, परन्तु वह नहीं मिला। दोपहर को जब मैं कुछ काग़ज़ लेकर दस्तख़त कराने के लिए कैप्टन ईस्टविक के पास गया तब मैंने उस आदमी को अँगरेज़ी पोशाक पहने मेज़ के पास बैठे और कैप्टन ईस्टविक से शुद्ध अँगरेज़ी में बातें करते हुए देखा। कैप्टन ईस्टविक ने उसे मेरा परिचय दिया। उसका नाम क़र्ज़न था और वह ऊँची शिक्षा प्राप्त तथा विशेष रूप से योग्य था। वह हिन्दुस्तानी, फ़ारसी और अरबी आदि इतनी अच्छी जानता था कि उसने उस दिन सवेरे मुझे भी धोखा दे दिया और मैंने उसे देशी आदमी समझकर जवाब दिया। वह उसी वेष-भूषा में कलकत्ते से आया था और फिर वैसा ही रूप धारण कर वह २१वीं को तुर्की को चला गया। सन् १८४४ में मेरी उससे लन्दन में भेट हुई थी।

क़लात के युद्ध की सरकारी सूचना हमें २७वीं की रात को मिली थी। इस युद्ध में मिहराब ख़ाँ मारे गये थे और क़िले पर अँगरेज़ी सेना का अधिकार हो गया था।

दूसरे दिन अमीरों को सरकारी तौर पर इस विजय की सूचना दी गई। इस पर उन्होंने क़िले से २१ तोप की सलामी दागने का तथा सन्ध्या को शहर में रोशनी करने का हुक्म दिया। गुप्त सूचना यह मिली कि उक्त विजय से अमीर लोग बहुत दुखी

हुए, क्योंकि क़लात के अमीर से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध ही नहीं था, किन्तु वैवाहिक सम्बन्ध भी था। मीर मोहम्मद के पिता मीर .गुलामअली ने मिहराब की एक बहन से विवाह किया था। दुनिया के ऐसे ही काम हैं; भतीजा अपने चचा की मृत्यु पर उत्सव मनाने को बाध्य होता है।

पहली दिसम्बर को कैप्टन ईस्टविक को फिर ज्वर आ गया, जिससे वे तुरन्त बिस्तर पर पड़ गये। अच्छे हो जाने की आशा से वे एक हफ़्ते तक पड़े रहे, परन्तु ज्वर बढ़ता ही गया और वे प्रतिदिन कमज़ोर होते गये। इस पर कराची को लौटने का निश्चय किया गया। ८वीं के दोपहर को हमने रेज़ीडेंसी का कार्य-भार बम्बई की ११वीं रेजिमेण्ट के लेफ़्टिनेण्ट ह्वाइटलाक को सौंप दिया। हम १०वीं को सवेरे ठट्ठा पहुँचे और ११वीं को कराची। हमारे नौकरों की दशा हम लोगों से भी ख़राब थी। हमारा एक प्रधान नौकर हसन बहुत ऊँचा-पूरा और तगड़ा था। वह प्रतिदिन ४ पौंड से कम कभी नहीं खाता था। परन्तु ज्वर से वह सूखकर काँटा हो गया था। वह पोरबन्दर का निवासी था। मैंने एक सिन्धी नौका से, जो उस बन्दर को जा रही थी, उसे उसके घर भेज दिया।

मैं .ऐसी परिस्थिति में बहुत डर गया था। अतएव मैंने तीन महीने की छुट्टी के लिए कैप्टन ईस्टविक को प्रार्थना-पत्र दिया। उन्होंने उसे स्वीकार कर मुझे एक सर्टिफ़िकेट दिया तथा मार्ग में मेरी देख-भाल करने के लिए अब्दुलकरीम नाम का एक चपरासी साथ कर दिया।

उस समय सूरत को वहाँ से कोई जहाज़ नहीं जा रहा था, परन्तु सूखी मछलियाँ लादे 'रहमती' नाम का एक सिन्धी बटेला, टिण्डल क़ासिम की निगरानी में, बम्बई को जा रहा था। जाँच-पड़ताल करने पर मालूम हुआ कि टिण्डल नज़दीक से

नज़दीक बन्दर में मुझे उतार देगा। मैंने टिण्डल से कहा—क़ासिम, तुम्हारे जहाज़ से जाने में मुझे ख़ुशी होगी; परन्तु तुम्हारे माल की बू मेरी वर्तमान अवस्था के उपयुक्त न होगी। मैं समुद्री बीमारी का शिकार हो जाऊँगा। उस विशालकाय सिन्धी मल्लाह ने कहा—मेरे मित्र, ज़रा भी न डरिए। मैं आपके लिए केबिन में प्रबन्ध कर दूँगा। वहाँ किसी भी तरह की बू न होगी। रही समुद्री बीमारी की बात, सो यदि वह होगी तो उस बू से आपका लाभ ही होगा! इसके सिवा समुद्र की हवा से आपका स्वास्थ्य बहुत अधिक सुधर जायगा।

इन ख़ुशामद-भरे शब्दों से मैं तुरन्त राज़ी हो गया और पहले जहाज़ पर जाकर उसको बिना देखे ही, १९वीं दिसम्बर को मैंने 'रहमती' पर अपना माल-असबाब लदवा दिया। २०वीं को मैंने अपने स्वामी से बिदा ली। कराची के गवर्नर सादिकशाह और वहाँ के एक बड़े व्यापारी नौमल मुझे घाट तक पहुँचाने आये। उनसे बिदा होकर मैं एक लम्बी नाव पर सवार हुआ, जिसने मुझे 'रहमती' पर पहुँचा दिया।

जहाज़ पर पहुँचने पर मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि वह नीचे से ऊपर तक सूखी मछलियों से लदा है। यहाँ तक कि जो केबिन मुझे दी जाने को थी उसमें भी उसके कई बण्डल इधर-उधर पड़े हुए थे। टिण्डल किनारे पर था। और कोई वैसा आदमी वहाँ नहीं था जिससे केबिन के सम्बन्ध में कुछ कहा जाता। मैंने ख़ुद मल्लाहों से कहा—यदि तुम लोग मेरे लिए केबिन नहीं साफ़ कर दोगे तो मैं इस जहाज़ पर नहीं जाऊँगा। इसका उन्होंने बड़ी विनम्रता से जवाब दिया। उन्होंने कहा कि हम लोग अपनी शक्ति भर आपको आराम पहुँचायेंगे, परन्तु ज़रा टिण्डल को आ लेने दो। इसके बाद मैंने जहाज़ के सबसे पिछले भाग में अपना विस्तरा लगाया। उसपर थोड़ा लेवे-

एडर छिड़ककर, तकिये पर सिर रखकर मैं तुरन्त ही गहरी नींद में सो गया। और तभी उठा जब, दूसरे दिन सवेरे लङ्गर उठाते तथा पाल चढ़ाते समय, मल्लाहों की तान-भरी पुकारों ने मुझे जगाया। हम सभी लोग मुसलमान थे, अतएव इस अवसर पर कहे जानेवाले क़ुरान शरीफ़ के वाक्य का, हम सबने मिलकर एक साथ उच्चारण किया।

सवेरे की सुन्दर ठण्डी हवा के कारण हमारा जहाज़ तेज़ी और सरलता से वह चला। २१वीं की शाम को हम घोरबारी के सामने पहुँचे। २२वीं को मैं अपनी दूरबीन से कच्छ के किनारे देख सकता था और २३वीं को मियानी की पहाड़ियाँ और जगत प्वाइण्ट हमें दिखाई दिये और धीरे-धीरे उनके आगे निकल गये। २४वीं को सारा दिन शान्त रहा, इससे हमारी गति मन्द रही। टिण्डल ने हमारी कैविन को भले प्रकार साफ़ करवा दिया था और अपने आदमियों को हुक्म दे दिया था कि मैं जो आज्ञा दूँ उसका पालन करें। गन्ध भी प्रति दिन कम होती गई। कदाचित् मेरी नाक उसकी अभ्यस्त होती गई।

२५वीं को सवेरे बुध के दिन ईसाइयों का 'बड़ा दिन' था। हम विलवल पाटन के सामने पहुँचे। अब मैं अधिक समय तक 'रहमती' पर नहीं ठहर सका। मैंने क़ासिम से वहीं उतार देने को कहा। उसने तुरन्त ही मेरे आदेश का पालन किया। मैं उससे मित्र के रूप में विदा हुआ। चलते समय मैंने उसे कुछ रुपये दिये। उसने धन्यवादपूर्वक उन्हें ले लिया। क़ासिम टिण्डल ऊँचे विचार का आदमी था। उसे लोभ छू नहीं गया था। वह स्वाभिमानी था। सिन्धियों का जैसा स्वभाव है, उसको देखते हुए वह उनके बीच में अपवाद था। मुझे वताया गया कि जूनागढ़ के नवाब की ओर से उस जगह

के गवर्नर अभी भी मेरे पुराने मित्र सैयद अब्दुल्ला जमादार ही हैं। श्रीमती पोस्टंस ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में इनकी बड़ी प्रशंसा की है। इन्होंने मुझे पहले की ही तरह लिया। इनके साथ मैंने दो दिन तक शिकार और शतरञ्ज खेली।

२७वीं को मैं सैयद साहब से बिदा हुआ। अब मैंने जाफ़राबाद की राह ली। पिछले तीन बरस से अधिक समय तक मैं काठियावाड़ में घूम रहा था, अतएव मैं उसके कोने-कोने से परिचित था और मुझे किसी पथदर्शक की ज़रूरत नहीं थी। २७वीं को चौदह मील चलकर दामलेज, २८वीं को १० मील चलकर कोरीनार, २९वीं को बारह मील चलकर ऊना, ३०वीं को बारह मील चलकर रेहीसा और ३१वीं को छः मील चलकर मैं जाफ़राबाद पहुँच गया।

यह छोटी यात्रा सवेरे के भ्रमण की तरह हुई। इसमें मैं प्रतिदिन कुछ तीतरों और जङ्गली कबूतरों का शिकार करता था।

जाफ़राबाद पहुँचने पर उस स्थान के, बम्बई के समीप के जञ्जीरा के हबशी राजा के प्रतिनिधि हबशी अधिकारियों ने मुझे बड़े आदर से लिया। गवर्नर सीदी मोहम्मद ने उस समय तक ठहरने को दुर्ग में एक सुन्दर जगह दे दी जब तक मुझे सूरत जाने के लिए कोई जहाज़ न मिल जाय। इस समय जाफ़राबाद और ऊना की आबादी वृद्धि पर थी। दो वर्ष पहले जो कुछ मैंने देखा था उसकी अपेक्षा इन दोनों नगरों में बड़ा परिवर्तन दिखाई दे रहा था। इन दोनों स्थानों में घरों की संख्या पन्द्रह-पन्द्रह हज़ार हो गई थी। इसका कारण पूछने पर वृद्ध गवर्नर ने मुसकराकर कहा कि सुशासन ही इस धन-वृद्धि का कारण है। मैंने कहा—यह कैसे? ऊना जूनागढ़ के नवाब का है और आपने स्वीकार किया है कि उनका शासन अत्याचार-परक है। इसका यह जवाब दिया कि ऊना के

वर्तमान गवर्नर नवाब के एक ग़ुलाम फ़तहख़ाँ हैं और वे एक सुजन व्यक्ति हैं। यदि वे कुछ वर्षों तक इस जगह बने रहे, जिसमें सन्देह है, तो ऊना का जाफ़राबाद से बढ़ जाना निश्चित है।

जाफ़राबाद एक बड़ा नगर है। बम्बई के समीप जञ्जीरा, सत्रह गाँवों के सहित सचीन सूरत के पास और प्रायद्वीप में जाफ़राबाद—ये तीन रियासतें पूना के पेशवा ने सीदी अब्दुल करीमख़ाँ को, जो आम तौर से बल्लू मियाँ कहलाते थे, सन् १७९१ में प्रदान की थीं। इस नगर में क़िला है, शहरपनाह है और ये दोनों अच्छी हालत में हैं। छोटे जहाज़ों के लिए यहाँ का बन्दर अच्छा और सुरक्षित है। इस बन्दर से बम्बई, सूरत तथा गुजरात के समुद्री किनारे के नगरों को रुई, घी और गाय-बैल भेजे जाते हैं। यदि इस बन्दर का ठीक ठीक प्रबन्ध किया जाय तो यह एक महत्त्व की जगह हो सकती है।

बारहवाँ अध्याय

यह नया साल मैंने जाफ़राबाद के हबशी गवर्नर की मेहमानी में शुरू किया। गवर्नर सीदी मोहम्मद बुद्धिमान्, व्यवहार-कुशल, शासन-कार्यपटु हैं। गत बारह महीनों के भीतर मैं तीन ऐसे गवर्नरों से मिला जो किसी समय ग़ुलाम थे, पर अब किसी स्वाधीन व्यक्ति से किसी बात में हीन नहीं हैं। ये जोरिया बन्दर के आनन्द ख़वास, ऊना के फ़तह मोहम्मद और जाफ़राबाद के सीदी मोहम्मद हैं। जब ग़ुलाम को स्वेच्छानुसार काम करने दिया जाता है तब वह आम तौर से स्वाधीन मनुष्य से अधिक अच्छा साबित होता है, क्योंकि उसकी पहले की पराधीनता उसे इस बात की शिक्षा दे देती है कि अपने अधीनस्थों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। परन्तु ख़्वाजा लोग इस सम्बन्ध में अपवाद हैं। शुरू-शुरू में उनके साथ जो दुर्व्यवहार होता है उसका उनके दिमाग़ पर बुरा असर पड़ता है और वे दुष्ट, निर्दय और हृदयहीन हो जाते हैं।

दूसरी जनवरी को सन्ध्या-समय मैंने सीदी मोहम्मद से आज्ञा ली और सूरत जानेवाले चूना-लदे एक बटेला पर मैं जा चढ़ा। सूरत पहुँचकर १०वीं को मैं महल में गया और नवाब तथा उनके दो दामादों से भेंट की। वृद्ध नवाब ने मेरे साथ कृपापूर्ण व्यवहार किया और सिन्ध के अमीरों के मामले तथा अफ़ग़ानिस्तान में अँगरेज़ों की जीत के बारे में ब्योरेवार बातें पूछीं। नवाब साहब ख़ूब स्वस्थ जान पड़ते थे, परन्तु चरित्र की दृष्टि से वे ठीक नहीं थे। इस समय उनके साथी पहले से भी बुरे लोग थे। वे नीचों और कमीनों के साथ

रहकर हँसने, दिल्लगी करने तथा मूर्खता में अपना समय नष्ट किया करते थे। वे शराब पीने और अफ़ीम खाने के आदी हो गये थे। उनके मिनिस्टर मोहम्मद अली वे उनकी सब बातों में सलाह देनेवाले थे। नवाब साहब के ग़लत या ठीक कथनों, विचारों और इच्छाओं के उत्तर में उनके ये दरबारी आम तौर से 'हाँ, हुज़ूर', 'बिलकुल सच', 'बिला शक' आदि वाक्य ही कहते रहते थे। नवाब साहब से मिल चुकने के बाद जब मैं उनके दामादों से मिलने गया, वे मुझे देखकर बहुत ख़ुश हुए। उन्होंने अपने ससुर के चाल-चलन के बाबत मुझसे शिकायत की।

महल से लौटने पर मार्ग में मैंने पिछले अग्निकाण्ड के संहारक रूप का दर्शन किया। क़रीब-क़रीब आधा नगर जलकर राख हो गया था।

२४वीं को मुझे मालूम हुआ कि कैप्टन ईस्टविक बीमारी की छुट्टी लेकर बम्बई जा रहे हैं। इससे मेरा सिन्ध का लौटना अनावश्यक हो गया।

३०वीं मार्च को मैं नवाब की जेठी लड़की, मीर अकबरअली की पत्नी, के जनाज़े के साथ गया। क्षयरोग से, इक्कीस वर्ष की अवस्था में, आज सवेरे पाँच बजे उसकी मृत्यु हो गई। उसके चार बच्चे हुए थे, पर एक भी जीवित नहीं रहा। नवाब की दोनों लड़कियों में यह सबसे अच्छी थी। इसका अपने पति और पिता के प्रति असीम प्रेम था। इसकी असामयिक मृत्यु का मुख्य कारण सौतेली मा का दुर्व्यवहार था, जो वृद्ध नवाब की कृपापात्र होने से सर्वेसर्वा थी और इसके साथ कुछ भी कर गुज़रने को बाक़ी न रखती थी। इसके पति मीर अकबरअली को बड़ौदा के गायकवाड़ ने बुलाया था। वे दस दिन पहले बड़ौदा चले गये थे। अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु के समय वे मौजूद

न हो सके। इस शरीफ़ स्त्री ने बचपन से ही एक ग़रीब मुग़ल की लड़की को अपने पास रख लिया था। इसे वह अपनी कन्या के समान चाहती थी। इसका नाम अपनी वृद्ध प्रमातामही के नाम पर उसने विलायती ख़ानूम रक्खा था। इस नौजवान, अबोध और अति सुन्दर लड़की के रोने का मुझपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि मैं ख़ुद रोने लगा। मैं क्या जानता था कि सात वर्ष बाद यही लड़की मेरी पत्नी होगी तथा मेरे कई लड़कों की मा होगी।

पाँच महीने तक मैं अपना पुराना मुंशीगिरी का पेशा करता रहा। जब सरकारी नौकरी करने की इच्छा हुई, मैं मिस्टर पेली के पास गया। वहाँ यह हुआ कि जब मैं ज़ीने पर चढ़ने को हुआ, अपने स्वामी के कमरे से निकलकर नीचे को आते हुए एक मिस्टर मेजर ने पुकारकर मुझसे कहा—ईश्वर के लिए ऊपर मत आइए। एक मित्र के इस विनम्र स्वागत पर पहले तो मैं चकित हो गया, परन्तु जब मैंने ज़ीने पर निगाह डाली तब देखा कि एक इञ्च चौड़ा और चार फ़ुट लम्बा एक काला साँप एक चूहे की घात में बैठा है। मिस्टर मेजर उसके समीप आ गये थे, अतएव उसने उनके प्रति उग्रभाव धारण कर लिया था। परन्तु उस बहादुर ईसाई ने अपना काँटेदार जूता पैर से निकाल कर साँप के सिर में मारा। मर्मस्थान में लग जाने से उसका काम क़रीब-क़रीब तमाम हो गया और तब मिस्टर पेली ने, मैंने तथा एक दूसरे नौकर ने कुछ और हाथ मारे और उसका बिलकुल ही ख़ातमा कर दिया।

इसके बाद मिस्टर पेली ने मुझे बुलाया। मैं भीतर गया और उनके पास बैठ गया। परन्तु उस घटना के कारण मेरा चेहरा पीला पड़ गया था और मेरी ज़बान से शब्द ही नहीं निकलता था तथा मेरा हृदय थरथरा रहा था। मैंने एक

गिलास पानी माँगा। पानी पीकर मैं स्वस्थ हुआ। मैंने मिस्टर पेली से कहा--अपनी वर्तमान आय से सन्तुष्ट न होकर लोभ-वश मैं यहाँ आपके पास सरकारी नौकरी माँगने आया था और उद्देश-सिद्धि के बजाय मैं जान से भी हाथ धो बैठा था। इस पर उन वृद्ध सज्जन ने हँसकर कहा—लुत्फ़ुल्ला, केवल ऐसी घटनाओं से निराश नहीं होना चाहिए। हमारा जीवन उस सर्वशक्तिमान् के हाथों में है जिसकी आज्ञा के बिना कोई हमें हानि नहीं पहुँचा सकता। मैं इस समय तुमको एक साधारण नौकरी दे सकता हूँ। अँगरेज़ी की क्लर्की और अनुवाद का काम करना पड़ेगा। वेतन तीस रुपया मासिक मिलेगा। इसके सिवा मैं तीस रुपया मासिक अपने पास से दूँगा। इसके लिए एक घण्टा रोज़ सवेरे मेरी लड़की और लड़के को हिन्दुस्तानी पढ़ानी होगी। उनके प्रस्ताव को मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया और इस तरह उदारतापूर्वक मेरे साथ भलाई करने के लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया।

१९वीं को मैं अपने पुराने स्वामी कैप्टन ईस्टविक से मिलने बम्बई गया। वे अपना स्वास्थ्य सुधारने इँगलैंण्ड जा रहे थे। एक वर्ष के बाद एक-दूसरे को देखकर हम ख़ुश हुए। जब उनका बुख़ार उतर गया, हमने कई घण्टे तक बातचीत की। वे दूसरे जानेवाले स्टीमर से स्वदेश को जानेवाले थे, अतएव उस समय तक ठहरे रहकर मैंने उनके कई सरकारी पत्र लिखे और उनका गृहस्थी-सम्बन्धी प्रबन्ध किया। १८४१ की पहली जनवरी को जब हम एक दूसरे से विलग होने लगे, उन्होंने मुझे मिस्टर पेली के नाम एक पत्र लिखकर दिया, साथ ही मुझे कुछ रुपये तथा कुछ चीज़ें प्रदान कीं। मैंने उनसे कहा कि मैं श्रीमान् से भेंट करने आया हूँ, भेंटे लेने नहीं। परन्तु यह देखकर कि अस्वीकार करने से उनको अप्रसन्नता होगी, मैंने

उस सम्बन्ध में उनसे फिर कुछ भी नहीं कहा। दोपहर को उन्हें बन्दरगाह पर ले जाने के लिए एक अच्छी गाड़ी किराये पर ले आया और उसमें उन्हें सावधानी से बिठाकर मैं ख़ुद उनके बग़ल में बैठ गया और उन्हें मज़बूत पकड़े रहा, क्योंकि वे उस समय सर्दी के दौरे से काँप रहे थे। इस दशा में उन्हें मैं विक्टोरिया जहाज़ पर ले गया। वे तब एक सैलून में पहुँचाये गये, जहाँ एक छोटी पतली चटाई बिछाकर मैंने उन्हें उस पर लिटा दिया। और ज्योंही मैंने उन्हें उनका लबादा ओढ़ाया, मुझे जहाज़ पर से चले जाने की आज्ञा हुई। काँपते हुए हृदय और आँसू भरी आँखों से मैं उनसे बिदा हुआ।

८वीं की सन्ध्या को सूरत जानेवाले एक जहाज़ को पाकर मैं उस पर सवार हुआ। हवा वैसी अनुकूल नहीं थी। ११वीं को सन्ध्या समय मैं सूरत पहुँच गया। इस यात्रा में जहाज़ के हिलने-डुलने से मैं बहुत थक गया था। १२वीं को मैं दफ़्तर गया और कैप्टन ईस्टविक का पत्र मिस्टर पेली को दिया। उन्होंने उस पत्र का मर्म लिखकर अपने हस्ताक्षर से कृपापूर्वक मुझे अपना पत्र दिया और मौक़ा पाते ही पदोन्नति करने का वादा किया। मैं अपने दफ़्तर का काम करने लगा। ४ फ़रवरी को मिस्टर पेली कोकरण ज़िले के दौरे पर जाने को तैयार हुए। उन्होंने मुझे भी साथ चलने की आज्ञा दी। मैं तैयार होकर ५वीं को सवेरे सूरत-घाट पर उनके जहाज़ पर जा चढ़ा। उन्होंने मुझे बड़ी सहृदयता के साथ लिया। हमारी यात्रा अच्छी रही। हम ७वीं को करञ्जा पहुँच गये।

करञ्जा में उतरने पर मैंने वहाँ के वे कुछ छोटे-छोटे झोंपड़े देखे, जिनमें अर्द्ध-नग्न लोग रहते थे। वहाँ तीन ही जगहें घर कहलाती थीं। पहली थी शराब का सरकारी भट्टीख़ाना,

दूसरी उसके अधिकारी पारसी का घर और तीसरी थी सराय जिसे बम्बई के एक रईस मोहम्मदअली शेगे ना.खुदा ने यात्रियों के ठहरने के लिए बनवाया था।

करञ्जा और उसके आस-पास के भूभाग का जलवायु बहुत ही स्वास्थ्यकर है। तीन ओर से समुद्री हवा का इस पर प्रभाव पड़ता है। इस जगह मैं बड़े आराम के साथ कोई दो महीने तक रहा।

३०वीं मार्च को मिस्टर पेली ने नीलगिरि जाने की तैयारी की। उन्होंने मुझे और दफ़्तर के दूसरे क्लर्कों को यह आज्ञा दी कि हम लोग बाँदरा जाकर उनके नीचे के पदाधिकारी मिस्टर लैंगफ़ोर्ड से मिलें। सभी लोगों को, विशेषकर मुझको, मिस्टर पेली जैसे उदार, उदात्त और भले स्वामी से बिछुड़ने का दुःख हुआ। वे सबकी योग्यता से परिचित थे। चलते समय उन्होंने मुझे एक अच्छा सर्टीफ़िकेट तथा अपने उत्तराधिकारी के नाम एक चिट्ठी एवं काफ़ी अधिक रुपये भी दिये।

दूसरे दिन सवेरे मैं बम्बई गया। कलेवा करके मैंने वहाँ दो गाड़ियाँ किराये पर कीं—एक सामान और नौकरों के लिए और दूसरी अपने लिए। फिर बाँदरा को प्रस्थान किया, जहाँ ग्यारह बजे के लगभग दिन में पहुँच गया। बाँदरा में मैं एक पारसी की सराय में ठहरा। मैं सन्ध्या-समय हेड क्लर्क के साथ मिस्टर लैंगफ़ोर्ड से मिलने और उनके आदेश प्राप्त करने के लिए उनके घर पहाड़ी पर गया। हमने उनके पास कहला भेजा कि हम लोग आपको सलाम करने की प्रतीक्षा में हैं; परन्तु नौकर यह उत्तर लेकर लौटा कि जब तक बुलाये न जाओ तब तक ठहरो। दो घण्टे की प्रतीक्षा के बाद बुलाये जाने पर हम लोग जाकर उपस्थित हुए और उन्हें झुक-झुककर सलाम किया। हेड क्लर्क से पूछा गया कि कोई ऐसा काम है जिसपर जल्दी ध्यान

देने की ज़रूरत हो। उसके इनकार करने पर हम लोगों से अचानक यह कहा गया कि जाओ और दस दिन के भीतर सूरत पहुँचो। नये स्वामी से एक शब्द भी बोलने का अवसर न मिलने पर मैंने मिस्टर पेली का सिफ़ारिशी पत्र उन्हें दिया जिसे उन्होंने मेरे हाथ से बेमन लेकर उसपर सरसरी तौर से एक निगाह डाली और उसे फाड़ डाला। इसके बाद मुझसे कहा कि हम अभी हेड क्लर्क से जो कुछ कह चुके हैं उससे अधिक हमें कुछ नहीं कहना है। हमें कैप्टन जैकब से तुम्हारे बाबत कुछ हाल मालूम हो चुका है। घमण्ड के साथ दिया हुआ यह दोटूक उत्तर मुझे अच्छा नहीं लगा और मेरी बड़ी इच्छा हुई कि मैं उसी जगह अपना त्यागपत्र दे दूँ। परन्तु हेड क्लर्क मेरे चेहरे से मेरे मन की बात ताड़ गया और कुछ न कहने देने के लिए उसने मेरे हाथ में चुटकी काटी, अतएव मैं रुक गया और बिना कुछ कहे मिस्टर लैंगफ़ोर्ड से सलाम करके चला आया। डेरे को लौटते समय मार्ग में मैंने हेड क्लर्क बेजनजी से कहा कि कम्पनी सरकार की नौकरी से मुझे घृणा हो गई है; क्योंकि नये मालिकों के आगे किसी को भी बार-बार गिड़गिड़ाना पड़ता है। सराय में पहुँचने पर उसकी स्वामिनी की सुन्दर लड़की ने मधुर मुसकराहट के साथ हमारा स्वागत किया, जिससे हमारी सारी चिन्तायें दूर हो गईं। हमने उसके कोमल हाथों का परोसा हुआ खाना खाया और सवेरे यात्रा करने की तैयारी कर हम आराम के साथ सो गये।

पहली अप्रैल को तड़के हम बाँदरा से सूरत को चले। प्रत्येक मञ्ज़िल में गाड़ियाँ बदलते हुए हम आराम के साथ ८ तारीख़ को सूरत पहुँच गये। २०वीं नवम्बर को मिस्टर लैंगफ़ोर्ड ने खम्भात चलने की आज्ञा दी। उस ज़िले में नमक बनाने के सम्बन्ध में नवाब से जो नया प्रस्ताव किया

गया था उसके प्रबन्ध की बातचीत में मेरी सहायता की उन्हें ज़रूरत थी।

२४वीं को मैं दफ़्तर के क्लर्कों के साथ सरकारी जहाज़ से खम्भात को चला और २८वीं को सवेरे वहाँ पहुँच गया। वहाँ पहुँचने पर शीघ्र ही देशी दफ़्तर के प्रधान गोपाल भाई और मुझको यह आज्ञा मिली कि हम नवाब से भेंट कर, मामले के सम्बन्ध में बातचीत करें और उन्हें मिस्टर लैंगफ़ोर्ड की इच्छा के अनुसार कार्य करने को राज़ी करें। मेरे साथी ने और मैंने दर-बारी पोशाक पहनी और कोई साढ़े दस बजे दरबार को प्रस्थान किया। नवाब साहब को हमारे भेंट करने की सूचना पहले ही मिल गई थी, अतएव राज्य के एक अधिकारी ने हमारा समुचित आदर किया और एक बड़े कमरे में ले जाकर हमें नवाब के सामने उपस्थित किया। नवाब साहब अपने राजसिंहासन पर बैठे थे। वे अठारह वर्ष के रहे होंगे। उनके केवल चार दरबारी थे, जो उनसे कुछ दूर उनके दाहने बैठे थे। वे आकृति से बड़े आदमी जान पड़ते थे। पीछे की गैलरी में एक पर्दे के पीछे, एक खिड़की में, एक दूसरा आदमी बैठा था। वह नवाब साहब के समीप ही था और देख रहा था कि दरबार में क्या हो रहा है। हमें आदमी की शकल तो दिखाई देती थी, परन्तु हम नहीं जानते थे कि वह कौन था। बाद को मालूम हुआ कि वह नवाब का चचा था और उसकी लड़की नवाब को ब्याही थी। वह बड़ी सावधानी से नवाब की देख-रेख एवं उनके निजी तथा सार्वजनिक कार्यों का प्रबन्ध भी करता था। यद्यपि दरबार एशियाई तड़क-भड़क से शून्य था, तो भी राज्य के अवसरों के लिए काफ़ी शान रखता था।

हम नवाब साहब के सामने बैठे। परस्पर के कुशल-प्रश्न के बाद कुछ देर तक सन्नाटा रहा। मेरा साथी यद्यपि ऊँचे

पद पर था लेकिन दरबार के तौर-तरीक़े नहीं जानता था। उसने धीरे से मेरे कान में कहा कि अब मतलब की बातचीत छिड़नी चाहिए। मैंने नवाब से मिस्टर लैंगफ़ोर्ड की शुभकामना कही और तब अपना भाषण शुरू किया। मैंने उसे ब्रिटिश सरकार की विशाल शक्ति की और उसके अधिकारियों के हाथों में उसके समुचित उपयोग की प्रशंसा से शुरू किया। इसके बाद उनके ज़िले के नमक की बात छेड़ी और उनके मन में यह बात बैठाने का प्रयत्न किया कि चोरी से नमक की जो बिक्री होती है उसका रोकना असम्भव है, अतएव पुरानी पद्धति के वजाय उसका प्रबन्ध ब्रिटिश अधिकारियों के निरीक्षण में होना चाहिए। ऐसा जान पड़ता था कि नवाब साहब मेरा भाषण सुन रहे हैं, परन्तु उन्होंने न तो हाँ कहा, न नहीं और न यह प्रकट करने को अपना सिर ही हिलाया कि वे सहमत हैं या असहमत। अतएव अपने भाषण के अन्त में मैंने, लाचार होकर, यह पूछा कि यदि आपको यह व्यवस्था पसन्द न हो तो वैसा उत्तर देने की कृपा करें ताकि मैं मिस्टर लैंगफ़ोर्ड को सूचित कर दूँ जिससे इस बुराई को दूर करने का वे कोई दूसरा उपाय करें। अन्त में नवाब साहब बोले—आप ठीक कहते हैं। आप ऐसा न समझें कि मैं आपके सारे कथन से असहमत हूँ। दोपहर के वाद मैं मिस्टर लैंगफ़ोर्ड से मिलूँगा और तुरन्त ही सारा मामला तय कर दूँगा। इस प्रकार हमने अपना मतलव हल कर लिया। हमने उनसे अनुमति ली और फ़ैक्टरी में अपने डेरों में आ गये।

डेरे में पहुँचकर मैंने अपनी इस भेंट की रिपोर्ट लिखी और उसे मिस्टर लैंगफ़ोर्ड के सामने उपस्थित किया। उन्होंने रिपोर्ट की बड़ी प्रशंसा की और मुझसे कहा कि अव यहाँ मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। अच्छा हो, तुम लोग उन्हीं नावों

से सूरत लौट जाओ, जिनसे यहाँ आये हो। वे दूसरे ज्वार के समय यहाँ से जायँगी। अपने कार्यकाल में अपने कर्तव्य के पालन में तुमने मुझे पूर्ण रूप से सन्तोष दिया है। अवसर आते ही मैं तुम्हारी पदोन्नति करूँगा। मेरे सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा उसके लिए मैंने उनको धन्यवाद दिया और वहाँ से आकर मैं लौटने की तैयारी में लग गया। हम लौटती बार जल्दी ही सूरत पहुँच गये। पहली दिसम्बर को मैं अपने काम पर दफ़्तर गया। परन्तु यह सुनकर कि मिस्टर लैंगफ़ोड हम लोगों को एक अस्वास्थ्यकर स्थान को भेजना चाहते हैं, मैंने अपना इस्तीफ़ा भेज दिया।

दफ़्तर की गुलामी से मैं फिर मुक्त हो गया। प्रतिदिन मुझे सात घण्टे काम करना पड़ता था और कुल तीस रुपया महीना मिलता था। अब मैं सुविधा के साथ अपना समय अपने अँगरेज़ विद्यार्थियों में लगाता था। इनमें एक मिस्टर सी० जे० इर्सकाइन को पाकर मैं बहुत ख़ुश हुआ। यह नवयुवक असाधारण योग्यता का आदमी था। पढ़ने में इतना परिश्रम करता था कि कुछ ही महीनों में तीन भाषाओं—हिन्दुस्तानी, फ़ारसी और गुजराती—की परीक्षायें पास कर लीं। इसने मुझे आशा से अधिक पुरस्कार दिया। यद्यपि इस समय मेरी आर्थिक दशा अच्छी थी, तो भी व्यय की निश्चितता और आय की अनिश्चितता ने मुझे चिन्तित कर दिया और मैंने स्थायी नौकरी प्राप्त करने के विचार से मीर सरफ़राजअली को लिखा। १३वीं अप्रेल को मैं इस रईस के लड़कों को प्रतिदिन एक घण्टा अँगरेज़ी पढ़ाने के लिए नियुक्त हो गया। वेतन थोड़ा ही था। बाद को यह देखकर कि एक घण्टे का समय काफ़ी नहीं है, समय बढ़ा दिया गया; साथ ही मेरा वेतन पचास रुपया मासिक कर दिया गया। इसके सिवा भोजन और सवारी भी मिलने

लगी। अब मैंने सिवा मिस्टर इर्सकाइन के अन्य अँगरेज़ों को पढ़ाना बन्द कर दिया।

अपने दामाद के साथ मुझे देखकर नवाब साहब भी खुश हुए। उनके एक अँगरेज़ मित्र ने उन्हें गोल्डस्मिथ की 'नेचुरल हिस्ट्री' की एक प्रति दी थी। नवाब साहब ने उस किताब को मुझे देकर उसका फ़ारसी में अनुवाद कर देने को कहा। उन्होंने ख़ासा अच्छा पारिश्रमिक देने की भी बात कही। इस काम को मैंने प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। मैंने कोई दो सौ पृष्ठ लिखे। ज्यों ही मैं एक शीट काग़ज़ लिख डालता था, नवाब साहब उसे मँगवाकर पढ़ते और बड़ी सावधानी से अपने पास रखते।

७वीं अगस्त की सन्ध्या को मुझे मीर जाफ़र अलीख़ाँ का एक पुर्ज़ा मिला। उन्होंने मुझे तुरन्त बुलाया था; क्योंकि नवाब साहब को कारनक स्टीमर को देखकर आने के बाद ही हैज़ा हो गया था। मैं उसी वक्त़ महल को दौड़ा गया। जिस कमरे में नवाब साहब थे उसके पास जाने पर मैंने डाक्टर जे० टासे और पारसी देशी एजेण्ट को कमरे से बाहर निकलते देखा। मैं भीतर गया और नवाब साहब को बुरी दशा में पाया। उनका चेहरा बदल गया था, आँखें धँस गई थीं, और आवाज़ धीमी हो गई थी। वास्तव में उनकी दशा असाध्य थी। बेचारे वृद्ध नवाब को इस दशा में देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने अपने नौजवान स्वामी को अलग ले जाकर उनके कान में कुछ कहा, परन्तु बजाय इसके कि कोई आवश्यक कार्यवाही करते, वे बच्चे की तरह रोने-धोने लगे। यह देखकर कि यह सलाह देने का समय नहीं है, मैंने उस नवयुवक को धीरज बँधाया और कहा कि यह इस तरह अधीर होने का समय नहीं है।

इस बीच में यह कहा गया कि नवाब साहब की प्रिय बेगम और उनकी लड़की उन्हें देखने आ रही हैं। महल की स्त्रियों के

लिए हम सब कमरा खाली कर बाहर चले आये। चार बजे सन्ध्या-समय नवाब की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय वे उनसठ बरस के थे। उन्होंने अपनी नाममात्र की नवाबी २१ वर्ष तक की।

नवाब साहब के नौजवान दामाद के दुःख का इस समय कोई ठिकाना न था। परन्तु मैंने उन्हें उनके बाप के पास बड़ौदा पत्र भेजने के लिए तैयार कर लिया। मैंने उनसे कहा कि इस सङ्कट के समय उनको अपने पिता के अनुभव और सहायता की बड़ी ज़रूरत है। इसके बाद मेरे विशेष अनुरोध पर उन्होंने ख़ज़ाने के कमरों को मुहरबन्द किया। दूसरे दिन तड़के अन्त्येष्टि के ख़र्च के लिए कुछ रुपया निकालने को हमने ख़ज़ाने की मुहरें तोड़ीं। परन्तु हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रुपये रखने का सन्दूक़ ख़ाली था, यद्यपि दो ही दिन पहले कलेक्टर के ख़ज़ाने से नवाब की मासिक पेंशन के ८३३३ रुपये ५ आने और ४ पाइयाँ मिली थीं। अपने मालिक की मृत्यु का मिनिस्टर को इतना अधिक दुःख था कि वह यह नहीं बता सका कि इतने थोड़े समय में उतना रुपया कहाँ चला गया। उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने भी कुछ न बताया। वे कमरे फिर बन्द कर दिये गये और तालों में मुहर लगा दी गई। अन्त्येष्टि के लिए मीर जाफ़रअली ने अपने बैङ्कर के यहाँ से पाँच सौ रुपये मँगाये। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस आदमी की वार्षिक आय लगभग दो लाख रुपये के थी, उसके ख़ज़ाने में उसकी अन्त्येष्टि के ख़र्च के लिए काफ़ी रुपया तक न निकला।

नवाब की मृत्यु के बाद उनके वृद्ध प्रपितामह के वंशधरों ने और उनकी परित्यक्ता स्त्री ने उनके कुटुम्बियों से बदला लेने की तैयारी की।

एक दूसरे की निन्दा से भरी हुई अर्जियाँ विरोधी दलों ने सरकार के यहाँ भेजीं। यह सलाह ठहरी कि मीर सरफ़राज़

अली मुझे अपने साथ लेकर बम्बई जायँ और अपने पुत्र, बहू और उसके बच्चों का दावा सरकार के समक्ष स्वयं उपस्थित करें। अतएव ३री अक्टूबर को मैं उन वृद्ध सज्जन के साथ सूरत से बम्बई को रवाना हुआ और उनके साथ दो महीने तक रहा। मैंने उनके लिए सरकार को दो प्रार्थना-पत्र लिखे, जिन्हें उन्होंने बहुत पसन्द किया और मुझे उनके लिए पाँच सौ रुपये पुरस्कार में दिये। उन्होंने गवर्नर साहब से तीन बार भेंट की। तब कहीं उन्हें सरकार से यह उत्तर मिला कि यथासमय न्याय किया जायगा। इसपर हमने सूरत को लौटने की तैयारी की, जहाँ हम पहली दिसम्बर को पहुँच गये। हमारे आने के कुछ दिन पहले ही सरकारी एजेण्ट ने नवाब की सारी सम्पत्ति अपने क़ब्ज़े में ले ली थी। उनके हक़दार प्रधान सरकार के निर्णय की प्रतीक्षा करते और हवा में महल बनाते रहे।

२८वीं को सूरत के मजिस्ट्रेट ने मुझे सरकारी तौर पर यह सूचित किया कि तुमको गवाह के रूप में राजकोट में पोलिटिकल एजेण्ट की कचहरी में उपस्थित होना होगा। तदनुसार मुझे वहाँ जाना पड़ा और छः हफ़्ते तक ठहरना पड़ा, जिससे मुझे कष्ट हुआ, साथ ही आर्थिक हानि भी हुई।

नवाब की मृत्यु के चौदह महीने बाद, प्रधान सरकार ने बम्बई-सरकार के द्वारा अपना भयानक हुक्म भेजा, जिसके अनुसार नवाब का पद तोड़ दिया गया, पेंशन बन्द कर दी गई और कुटुम्ब के वही लोग सरकारी सहायता के हक़दार माने गये जो उनके सगे थे। यह मनमाना हुक्म सुनकर मेरे नवयुवक स्वामी के तथा अन्य सभी कुटुम्बियों के कान सुन्न हो गये। मीर जाफ़र ने अपने बड़ों से सलाह की और यह राय ठहरी कि वे बम्बई जायँ और अपनी शिकायतें सरकार के सामने उपस्थित करें और यदि उन्हें सफलता न प्राप्त हो तो फिर इँगलेंड जायँ।

इस सलाह के अनुसार वे स्थल-मार्ग से बम्बई जाने को तैयार हुए। उन्होंने मुझसे साथ चलने को कहा। ज्योतिषियों ने यात्रा का मुहूर्त दिसम्बर के अन्तिम भाग में बताया। तदनुसार हमने सूरत से बम्बई को प्रस्थान किया। हम सारी राह शिकार खेलते गये। इस प्रकार हमने अपनी सुखद यात्रा और दिसम्बर का महीना एक साथ व्यतीत किया। पाँच हफ़्ते तक हम बम्बई में ठहरे रहे। मीर जाफ़र अलीख़ाँ ने इस बीच में तीन बार गवर्नर साहब से भेंट की और सरकार को अपने प्रार्थना-पत्र भेजे, परन्तु कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं मिला, अतएव उन्होंने इँगलैंड जाने का इरादा किया। इस यात्रा के लिए उन्होंने एक अँगरेज़ मिस्टर टी० जे० ए० स्काट और मुझको सेक्रेटरी और दुभाषिए के रूप में नियुक्त किया और इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने इक़रारनामे लिखकर हमें दे दिये। इसके बाद इँगलैंड की लम्बी यात्रा की तैयारी करने के लिए हम ४ फ़रवरी को सूरत लौट आये और १२ मार्च १८४४ को सीलोन होकर दुनिया के दूसरी ओर जाने के लिए हमने अपने घर और मित्र छोड़े। सीलोन तक के लिए हमने सर जेम्स कार्नक नाम का स्टीमर ठीक किया। सीलोन से हमें पी० एण्ड ओ० कम्पनी के बेंटिक नाम के एक बड़े स्टीमर पर चढ़ना था।

———

तेरहवाँ अध्याय

१३वीं को तीसरे पहर हमने जल्दी-जल्दी सरकारी और अपना निजी सारा काम कर डाला और दूसरे दिन तड़के जहाज़ के पाल खुल गये और इंजिन धुआँ छोड़ने लगा। हमने सर्वव्यापी के पवित्र नाम से प्रस्थान किया। चौथी को हम बिनगोर्ला के सामने पहुँचे। १५वीं को हमने पुर्तगालियों की बस्ती गोवा देखा। १६वीं को पीजन आइलेण्ड (कबूतर-द्वीप) पार कर गये और शाम को हमने मँगलोर देखा। १७वीं को कालीकट के सामने से निकलकर गोधूलि के समय कोचीन पहुँच गये। १८वीं को तीन बजे रात में हमें बुरे मौसम का सामना करना पड़ा। सन्ध्या-समय कन्या-कुमारी का अन्तरीप दिखाई दिया। भारत की यह अन्तिम चट्टान बहुत ही सुन्दर दिखाई दे रही थी। मौसम वैसा ही उग्र रूप धारण किये रहा। जहाज़ के कैप्टन ने मुझे बताया कि हम मनार की खाड़ी और आदम के पुल के सामने हैं और यहाँ सदैव ऐसा ही तूफ़ान बना रहता है, परन्तु अब हम उनकी सीमा पार कर आये हैं और हमें कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। उसका कथन सच साबित हुआ। और २०वीं को सवेरे सीलोन के प्वाइण्ट डे गाली का सुन्दर दृश्य हमें दिखाई दिया। यह जगह अभी चालीस मील के लगभग दूर थी।

हम ज्यों-ज्यों समीप पहुँचते गये, उस मूल्यवान् टापू का सुन्दर दृश्य अधिकाधिक आकर्षक होता गया। अन्त में बन्दर-गाह में हमने लङ्गर डाल दिया। और तुरन्त ही वहाँ के काले सिंहालियों ने आकर हमें चारों ओर से घेर लिया। उतरते-

उतरते सन्ध्या हो गई। जल्दी में हमें एक अँगरेज़ी होटल बता दिया गया। हम वहाँ गये और आराम से ठहरे।

सवेरे हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही बहुत ख़राब लगा कि हमारे कमरों के इधर-उधर सूअरों का एक झुण्ड दौड़ तथा घुरघुरा रहा है। इस घृणित दृश्य को देखकर हम उस ईसाई-घर को यथासम्भव शीघ्र ही छोड़ भागने के लिए चिन्तित हो उठे। पता लगाने पर मालूम हुआ कि शहर में मुसलमानों के कई घर हैं। उनमें से ठहरने को एक घर हमें दिया गया। माका मूरकम नाम के एक सज्जन ने उसे बनवाया था। हम तुरन्त ही उसमें जाकर ठहरे और अपने मेज़बान के आतिथ्य से बहुत प्रसन्न हुए। इस युग के ईसाइयों ने अपना खुद सुधार करने में अपने धर्म का भी सुधार कर डाला है। वे अपनी पार्लियामेण्टों के क़ानूनों के अनुसार खाते और पीते हैं एवं जो इच्छा होती है, करते हैं। वे पुरानी और नई बायबिल की कुछ भी परवा नहीं करते।

कुछ को छोड़कर इस टापू के जानवर भारत जैसे ही होते हैं। यहाँ का हाथी भारतीय जङ्गलों के हाथी की अपेक्षा अधिक सुन्दर होता है। इसके सिवा यहाँ सफ़ेद और भूरे हाथी आम तौर से पाये जाते हैं। भारत में ऐसे हाथी बहुत कम दिखाई देते हैं।

दूसरे दिन पाँच देशी रईस हम लोगों से भेंट करने आये। वे सुन्दर दिखाई देते थे, खुले हुए भूरे रङ्ग के थे और पुराने ढङ्ग की लम्बी पोशाक तथा गोल पगड़ी पहने हुए थे। वे उस द्वीप के पहले के शासकों के मन्त्री और राज्याधिकारी थे। उन शासकों का अधिकार अब बिलकुल नहीं रहा और वे उस राज्य के अवशेष मात्र हैं। वहाँ बौद्ध-धर्म का प्रचार है। यदि गृहस्थ बौद्ध मरता है तो वह गाड़ा जाता है और यदि संन्यासी मरता है

तो वह जलाया जाता है। इस टापू में कुष्ठ और फ़ीलपाँव का रोग बहुत होता है।

२२वीं को सवेरे वहाँ के एक मुसलमान रईस ने मुझे अपने देहात के घर में कलेवा करने को आमन्त्रित किया। उसका वह घर शहर से कोई तीन मील दूर दारचीनी के बाग़ में स्थित था। सवेरे ८ बजे मैंने एक घोड़ा-गाड़ी में प्रस्थान किया और डेढ़ घंटे में वहाँ पहुँच गया। सारा मार्ग हरा-भरा और सुन्दर-सुन्दर वृक्षों से व्याप्त था। उक्त बाग़ में पहुँचने पर मेरे मेज़बान ने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया। हम दोनों एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते थे; अतएव अँगरेज़ी में बातचीत हुई। कुछ देर तक हम उस भव्य बाग़ में घूमते रहे। इसके बाद खाने को बैठे। कई तरह की चीज़ें परोसी गई थीं। कलेवा के बाद धूम्रपान का आनन्द लिया, फिर अपनी जगह लौट आये।

२५वीं को सवेरे बन्दर में भयङ्कर शब्द होता सुनकर हम उसका कारण जानने के लिए उसकी ओर दौड़े गये। हमने देखा कि बड़ा भारी स्टीमर बेन्टिक अपने चार बड़े-बड़े पहियों से, डरावना शब्द करता, आकाश में धुआँ छोड़ता और समुद्र में अपना मार्ग बनाता हुआ चला आ रहा है। २६वीं को हम इस बड़े जहाज़ पर जा चढ़े। जहाज़ के कप्तान कैप्टन केलक से हमारा परिचय दिया गया। वे डील-डौल में भारी और रूप-रेखा से शरीफ़ आदमी जान पड़े। हमारी कोठरियाँ हमें बतला दी गईं। सौभाग्य से वे दूसरी मंज़िल में थीं। वह जहाज़ चार मंज़िल का था। यद्यपि जहाज़ बहुत बड़ा था, तो भी वह भरा हुआ था। मल्लाहों को छोड़कर उस पर तीन सौ यात्रियों से कम लोग नहीं थे। दिन में ढाई बजे लंगर उठाये गये और जहाज़ ज़ोर-शोर के साथ यथासम्भव द्रुत गति से चल पड़ा। कैप्टन और अधिकारियों की कृपा से हम लोगों को जहाज़ पर बहुत आराम

दिया गया। जैसा कि हमने बेंटिक जहाज़ पर देखा, अँगरेज़ लोग बड़े खाने-पीनेवाले होते हैं। उनमें प्रायः सभी चार-पाँच वार और कुछ तो छः बार तक खाते-पीते हैं।

दूसरी अप्रैल को हमें सोकोतरा का टापू दिखाई दिया। गत दिवस दोपहर के बाद उस ओर कुछ पक्षी उड़ते दिखाई दिये थे। इन पक्षियों को समुद्र पर उड़ने की अद्भुत क्षमता प्राप्त है। हमने जहाँ से इन्हें पिछले दिन उड़ते हुए देखा था, वहाँ से सोकोतरा दो सौ मील से कम न रहा होगा। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि टापू से सवेरे उड़ने और शाम को विश्राम के लिए वहाँ फिर लौट जाने में ये पक्षी प्रतिदिन पाँच सौ मील के लगभग ज़रूर उड़ते होंगे। समुद्र के इस अञ्चल में मैंने उड़नेवाली मछली देखी। इनके समूहों में से कुछ हमारे जहाज़ को पार कर जाने लगीं। उसमें से तीन मछलियाँ डेक पर गिर पड़ीं। एक को मैंने पकड़ लिया। नज़दीक से देखने पर वह सुन्दर मालूम पड़ी। उसके दो जोड़ी डैने थे। एक से वह पानी में काम लेती थी और एक से हवा में। वह जब भूनी गई, खाने में बहुत ही स्वादिष्ट निकली।

४ तारीख़ को सवेरे हमें अदन दिखाई दिया। उसके बन्दर में डेढ़ बजे दिन में जहाज़ ने लङ्गर डाल दिया। सीलोन से यह जगह २२१५ मील दूर है। यहाँ तक हमारी समुद्र-यात्रा बहुत ही आनन्द-पूर्ण रही। यहाँ पहुँचने पर जहाज़ के अधिकारियों ने जहाज़ से उतरकर देखने-भालने की अनुमति दे दी। अतएव हम जहाज़ से तुरन्त उतर पड़े और आठ दिन की जुदाई के बाद अपने आपको पृथिवी माता की गोद में दे दिया। अरब में गाड़ी नाम की कोई वस्तु नहीं है, अतएव अदन शहर जाने के लिए, जो बन्दर से छः मील दूर था, हमें कुछ गधे किराये पर लेने पड़े। भारत में गधे की सवारी अपमान-सूचक है।

भारत में जो लोग जघन्य अपराधों के लिए गधे पर चढ़ाकर शहर में घुमाये जाते हैं, उनके सिवा कोई भी गधे की सवारी नहीं करता। परन्तु अरब में, कदाचित् दूसरे सभी देशों में, गधे की सवारी करना अपमानजनक नहीं है। हमारे दल के प्रधान मीर जाफ़र अली ख़ाँ का वज़न १७ स्टोन (१ स्टोन = ७ सेर) से अधिक था। गधा उनका भार वहन नहीं कर सकता था। इसके सिवा वे गधे पर चढ़ने को राज़ी भी नहीं हुए। एक गधे को अपने दोनों हाथों पर उठाकर उन्होंने एक अरब को दिखला भी दिया कि वह उन्हें नहीं ले जा सकेगा। इतने में एक ख़च्चरवाला आया और उसने अपना मोटा ख़च्चर उनको चढ़ने के लिए दिया। वे उसपर सवार हुए और उसके लिए काफ़ी अच्छा किराया भी दिया। इसके बाद हम नगर को गये। जब तक आपने अदन को नहीं देखा है उसे, अगर चाहें तो, शहर कह सकते हैं; परन्तु जब आप उसे देख लेंगे तब, मुझे विश्वास है, उसे भूतों का वासस्थान कहेंगे। न तो वह शहर है, न गाँव है। वृक्षहीन पहाड़ियों के बीच के गड्ढे में कुछ दरिद्र झोपड़ियाँ स्थित हैं। इस गड्ढे का व्यास लगभग तीन मील होगा। जो पहाड़ियाँ इसे चारों ओर से घेरे हुए हैं वे प्राकृतिक क़िलेबन्दी के समान स्थित हैं।

यदि एक उपयुक्त फाटक तथा कुछ धुस बना दिये जायँ तो सैनिक स्थान के रूप में यह कोई ख़राब जगह नहीं है। परन्तु और सभी बातों में, मेरी राय में, इसका स्वर्ग का अर्थ-सूचक अदन नाम सर्वथा अनुपयुक्त है। मेरी समझ में इसका यह नाम उसी सिद्धान्त पर रक्खा गया है, जिस सिद्धान्त पर हम अपने अफ़्रीका के ग़ुलामों को काफ़ूर (कपूर) कहते हैं। जहाँ तक आपकी निगाह जा सकती है, हरियाली का चिह्न तक नहीं देख पड़ता। एक छोटे से कुएँ को छोड़कर, जिस पर सरकारी पहरा

रहता है और जिसका पानी ऊँचे दामों पर बेचा जाता है, यहाँ और कहीं मीठा पानी नहीं मिलता। जहाँ न तो पानी है, और न घास ही, वहाँ के जानवरों के सम्बन्ध में क्या कहा जाय? निवासी दरिद्र और ओछे जान पड़ते हैं। नङ्गे सिर, नङ्गे पैर, एक लँगोटी लगाये फिरते रहते हैं। केवल तीन या चार आदमी वहाँ हैं, जो पगड़ी पहनते हैं। उनमें एक इदरूसी सैयद हैं, जो इन अभागों के मुल्ला हैं और यहाँ की छोटी मस्जिद में, जो जल्दी ही गिर जाने को है, इन लोगों के आगे खड़े होकर नमाज़ पढ़ते हैं। हम लोग एक भारतीय दूकानदार के छप्पर के नीचे ठहरे और खाना बनाकर खाया। इसके बाद हम सब पड़कर सो गये और दूसरे दिन सवेरे तभी उठे जब सूर्य की गर्म किरणों ने हमें जागने को बाध्य किया। हाथ-मुँह धोने और कलेवा करने के बाद हमने जहाज़ पर लौटने का विचार किया, परन्तु शुक्रवार होने के कारण यह तय किया गया कि दोपहर की नमाज़ यहाँ की मस्जिद में पढ़ लेने के बाद ही अदन छोड़ा जाय। निश्चित समय पर हम मस्जिद में गये, जहाँ से मक्का बहुत दूर नहीं था। उपर्युक्त सैयद साहब के सुन्दर धर्मोपदेश को सुना और निर्दिष्ट धर्मक्रियायें करने के बाद हम अदन से बन्दरगाह को चले, जहाँ हम ठीक समय पर पहुँच गये और जहाज़ पर चढ़ गये।

५वीं अप्रेल की सन्ध्या को जहाज़ ने लङ्गर उठाये और वह अपनी राह लगा। ६ठी को सवेरे हम बाबुल-मण्डब से होकर निकले और बहरे-कुलज़म में प्रवेश किया, जिसे अँगरेज़ लोग 'लाल सागर' कहते हैं। दस बजते-बजते हम मक्का के सामने पहुँचे और उसके बाद हमारी बाईं ओर कई छोटे-छोटे टापू मिले। आज दोपहर को मैंने कम्पास में देखा कि काबा पूर्व की ओर झुकने लगा है। यह बात मैंने अपने मुसलमान मित्रों से

कही, पर मेरी बात मानने की जगह वे मुझपर हँसने लगे। उन्होंने कहा कि बहुत ज़्यादा अँगरेज़ी की किताबें पढ़ते रहने से तुम्हारी धार्मिक भावना मन्द हो गई है। यह कैसे सम्भव है कि विश्व का केन्द्र और ईश्वर का सबसे अधिक पवित्र स्थान अपनी स्थिति बदल दे? एक दूसरे ने हँसी में कहा—इन्होंने अपने अँगरेज़ मित्रों के साथ शराब पी ली होगी, अतएव इस प्रकार अनर्गल कह रहे हैं। इसी बीच में मेरे एक तीसरे मित्र वृद्ध हकीम ने, नवाब साहब की ओर मुँह करके, कहा—हुज़ूर, क्या आपने ऐसी मूर्खता की बात कभी सुनी है? जिसका दिमाग़ ठीक होगा, कभी नहीं कहेगा कि काबा अपनी जगह बदलता है। ये सारे कटाक्ष मैंने धैर्य के साथ सुने।

मैंने और कुछ न कहकर अपने कथन की सचाई एक दूसरे पक्के प्रमाण से सिद्ध की। एक अरबी मल्लाह, जिसे जहाज़ के कैप्टन ने अदन में ले लिया था, अपनी दोपहर के बाद की नमाज़ पढ़ने को मेरी बताई हुई दिशा की ओर मुँह करके खड़ा हुआ। मैंने अपने मित्रों से कहा—यह क्या बात है कि यह अरबी मेरी बताई हुई दिशा की ओर मुँह करके खड़ा हुआ है? उन्होंने कहा—वह ज़रूर यहूदी है। एक दूसरे दुभाषिये के द्वारा हम उससे प्रश्न कर इस महत्त्व के विषय की शङ्का का समाधान करेंगे। उन्होंने वैसा किया और अपनी मूर्खता का उन्हें अच्छा इनाम भी मिला। पहले तो नौजवान फ्रेञ्च दुभाषिया ही उनके प्रश्नों पर हँसने लगा, दूसरे उस गँवार अरबी ने उन्हें तिरस्कारात्मक जवाब दिया और उनसे कहा कि वे शीघ्र ही स्वेज़ और कैरो में सभी सच्चे विश्वासियों को पूर्व की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते देखेंगे। उसने क्रोध के साथ कहा—अगर तुम भारतीय उसी ईश्वर और उसी पैग़म्बर पर विश्वास करते हो जैसा कि वे (अरब) करते हैं तो उनका अनुकरण करो, नहीं तो नरक की

आग के लिए अपने को तैयार करो। शाम को हमें जेद्दा की रोशनी दिखाई दी। यही वह प्रसिद्ध बन्दर है जहाँ सभी भारतीय मुसलमान यात्री उतरते हैं और मक्का के पवित्र नगर को जाते हैं। मुझसे बताया गया कि इस नगर के पड़ोस में एक बड़ा भारी मक़बरा है जो माता हौवा के नाम से आज भी प्रख्यात है।

७वीं और ८वीं अप्रेल आराम से बीती। परन्तु ९वीं को उत्तरी हवा के कारण समुद्र में तूफ़ान आया। भूमण्डल के इस भाग में उत्तरी हवा आम तौर से बहुत प्रबल और कष्टप्रद रहती है। १२वीं की शाम तक हम अदन से तेरह सौ मील चलकर स्वेज़ के बन्दर में पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर हम एक अरबी नौका पर शहर जाने के लिए सवार हुए। यह लम्बी नौका हमने भाड़े पर ली। इसमें हम आठ भारतीय और एक अँगरेज़-सेक्रेटरी, अपने स्त्री-बच्चे के साथ सवार थे। इस छोटी नौका पर बहुत सर्दी लगी तथा बड़ी असुविधाओं का अनुभव प्राप्त किया। मीर जाफ़र अली को सबसे अधिक कष्ट हुआ। वे अपना लबादा जहाज़ पर छोड़ आये थे। उन्हें मैंने अपना देना चाहा, परन्तु उन्होंने विनम्रता से लेने से इनकार किया। कहा कि वह बहुत छोटा होगा। इसके बाद यह कहा कि जहाँ मिस्टर स्काट बैठे थे, वहाँ दो कम्बल पड़े थे। उनमें से एक उनकी स्त्री ने ले लिया है, दूसरा वहाँ खाली पड़ा होगा, उसे मेरे लिए ले आओ। मैं उसे ले आने के लिए गया। परन्तु मिस्टर स्काट ने उसे नहीं उठाने दिया और ऐसी रुखाई से कहा—मानों वे मुझे जानते ही न हों—कि हमने उसे सबसे पहले अपने अधिकार में किया है और जब तक हमको उसका काम है, किसी को लेने न देंगे। मैंने उनसे कहा कि मुझे उसकी ज़रूरत नहीं है, किन्तु आपके मालिक को उसकी सख़्त ज़रूरत है।

उन्होंने कहा—मेरे मालिक से जाकर कह दो, मैं दूसरों के लिए अपनी जान नहीं गँवाऊँगा। परन्तु मालिक से कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी। उन्होंने सारी बातचीत सुन ली थी। इस बात से साफ़ प्रकट हो गया कि अँगरेज़ स्वभावतः स्वार्थपरायण होता है।

सन्ध्या को साढ़े सात बजे हम स्वेज़ के घाट पर पहुँच गये, जहाँ से एक सराय में पहुँचाये गये। ईश्वर को धन्यवाद है कि वहाँ हमें एक सुन्दर कमरा, अच्छा भोजन और साफ़-सुथरे बिस्तरे मिले। होटल के दरवाज़े पर कैरो से आई हुई नारङ्गियाँ बिकती देखकर मैंने कुछ मोल ले लीं। वे बहुत ही मीठी और स्वादिष्ठ थीं। वैसी नारङ्गियाँ मैंने अपने जीवन में कभी नहीं खाई थीं। मेरे साथियों ने भी उनकी ख़ूब प्रशंसा की और जो मैं लाया था उन सबको तो खा ही डाला, किन्तु मरु-भूमि के मार्ग में काम आने के लिए और बहुत सी ख़रीद लीं।

१३वीं को दोपहर के बाद हम स्वेज़ से चले। हमारा सामान और नौकर ऊँटों पर चढ़े। हम लोगों के लिए हलकी गाड़ियाँ प्रस्तुत की गईं। प्रत्येक में हाँकनेवाले को छोड़कर चार आदमी बैठ सकते थे। हम रात की ठंढक में कभी बात-चीत करते तो कभी ऊँघते तथा झपकी लेते हुए चलते गये। आधीरात को हम ठहरने के मुक़ाम पर पहुँचे। यहाँ हम सवेरे तक आराम के साथ सोते रहे। सवेरे उठकर कलेवा किया और चल पड़े तथा १४वीं की शाम को अलमिस्र, जिसे आम तौर से बड़ा कैरो कहते हैं, पहुँच गये। उजाड़ खंड के सिरे पर ऊँची-ऊँची इमारतों, गुम्बजों के सुनहरे कलशों और राजधानी के घरों के ऊपर चमकते हुए राजमहलों को देखना वास्तव में एक मनोमोहक दृश्य था।

शहर के मकान पुराने अरबी ढंग से चौकों के भीतर बे-तरतीब और घने बने हुए हैं। यहाँ की गलियाँ कहीं-कहीं बहुत तङ्ग हैं। यहाँ के स्त्री-पुरुष तगड़े और सुन्दर हैं। स्त्रियों की आँखें बहुत ही सुन्दर और बहुत ही आकर्षक हैं। गधे की सवारी अपमानजनक नहीं समझी जाती। बड़े-बड़े घरों की औरतें जब चलते-चलते थक जाती हैं तब इशारे से गधे-वाले को बुलाती हैं और उसके गधे पर सवार होकर गन्तव्य स्थान को चली जाती हैं। व्यवहार की भाषा तो अरबी है, परन्तु दरबार में तथा ऊँचे घरानों में विचित्र ढंग से तुर्की बोली जाती है।

कैरो पहुँचने पर हम एक देशी ईसाई हकीम के घर ठहरे और यात्रा की थकावट के बाद वह रात बड़े आराम से बिताई। १५वीं को सवेरे मेरे नौजवान स्वामी से जो लोग मिलने आये उनमें से एक मिस्टर जे० तिबाल्डे थे। ये ट्रांज़िट कम्पनी के प्रधान डायरेक्टर थे और बड़े धनी, बुद्धिमान् तथा ऊँचे रुतबे के आदमी थे। कदाचित् फ्रेंच थे; परन्तु अँगरेज़ी, इटालियन और फ्रेंच में बहुत निपुण थे। इन्होंने मीर जाफ़र अली खाँ से कहा कि आपको आज दोपहर के बाद मुहम्मद अली पाशा से उनके बाग़ शुबरा में जाकर भेंट करनी चाहिए। उनकी इस सलाह को उन्होंने मान लिया।

आज सवेरे मैंने पिरामिड देखने के लिए जाने की छुट्टी माँगी। परन्तु यह कहकर कि दोपहर के बाद तक तुम लौट न सकोगे और उस समय पाशा से बातचीत करने के लिए दुभाषिये के रूप में तुम्हारी विशेष जरूरत होगी, छुट्टी नहीं दी गई। किन्तु मैंने कह-सुनकर दो घंटे की छुट्टी ले ही ली और एक तेज़ गधे पर सवार होकर इमाम मोहम्मद शफ़ई का मक़बरा देखने चला गया। ये इमाम साहब मुसलमानों के तीसरे सम्प्रदाय के

जन्मदाता थे। इनका मक़बरा शहर से पूरब लगभग एक मील दूर था। वहाँ पहुँचने पर उन सुधारक के मक़बरे को देखकर इसलिए रोना आ गया कि वह एक मुस्लिम राजा के राज्य में उपेक्षित पड़ा था। भीतर क़ब्र टूटी-फूटी पड़ी थी और उस पर कँटीली झाड़ियाँ उग आई थीं। मैंने वहाँ नमाज़ पढ़ी और पूर्ण सन्तुष्ट होकर लौट आया। इन असाधारण साधु पुरुष का जन्म सन् ७६७ ईसवी में, पेलेस्टाइन में, अस्कलन नामक स्थान में हुआ था। ये ८१४ ईसवी में मिस्र आये थे और पाँच वर्ष बाद यहीं इनकी मृत्यु हो गई थी।

दोपहर बाद सब साज-सामान से लैस होकर शुबरा नामक राजकीय उद्यान-भवन को मिस्टर तिवाल्दे के साथ गये। दो मील चलने के बाद हम शहर के बाहर स्थित उस बाग़ में पहुँचे। तुरन्त अनुमति मिल जाने पर हम उसके भीतर गये। बाग़ क्या था, पृथ्वी पर स्वर्ग था। फूल और फलवाले वृक्ष एक क़रीने से लगाये गये थे, जो पुष्पित तथा फलित थे। रविशें काले और सफ़ेद रङ्ग के पत्थरों के टुकड़ों की बनी थीं, जो ईरानी दरियों सी चारों ओर फैली हुई थीं। राजमहल में जाने पर वह एक बहुत बड़ी इमारत जान पड़ा। एक राजकर्मचारी, जो बहुत ही शानदार पोशाक पहने था, हमें उत्तर के कोने के बड़े कमरे में ले गया। वहाँ हमने पाशा को देखा, जो लाल तुर्की टोपी लगाये थे और घुटनों तक नीले रङ्ग का कोट पहने थे। परिचय दिये जाने पर हममें से प्रत्येक ने पाशा के दाहने हाथ को अपने दाहने हाथ से छुआ और तुर्की ढङ्ग से उसको चूमा! इसके बाद उनके दाहने एक पंक्ति में बैठ गये। मीर जाफ़र अली ने दो जोड़े मूल्यवान् कश्मीरी शाल उनकी भेंट किये, जो कृपापूर्वक मंज़ूर कर लिये गये। अब तीन दिमाग़ और तीन ज़बानें काम में लगीं। मैं अपने नौजवान स्वामी

की बात मिस्टर तिवाल्दे से अँगरेज़ी में कहता और वे पाशा के दुभाषिये से फ्रेञ्च में कहते तब दुभाषिया पाशा से तुर्की में कहता। संक्षेप में कुशल-प्रश्न करने के बाद हमारे नौजवान स्वामी ने पाशा महोदय की प्रशंसा करनी शुरू की। उन्होंने कहा—मैंने आपके द्वारा व्यवस्थित तथा परिचालित शासन-प्रबन्ध की प्रशंसा सुनी थी। परमात्मा को धन्यवाद है कि मैंने उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया और जैसा उसे सुना था, वैसा ही पाया। पाशा ने इसका यह उत्तर दिया—हाँ, कुछ काम हुआ है, परन्तु अभी बहुत कुछ करने को बाक़ी है। इसके बाद पाशा ने भारत में अँगरेज़ी शासन-पद्धति के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे, जिनका संक्षेप में, किन्तु पूरा-पूरा उत्तर दिया गया। तब काफ़ी लाने को आज्ञा दी गई। काफ़ी लाया गया और हममें से प्रत्येक को दिया गया। इस पर हम उठकर खड़े हो गये और तुर्की ढङ्ग से पाशा के प्रति सम्मान दिखलाते हुए अपने हाथों का चुम्बन किया और उसी तरह हम काफ़ी पी गये, जिस तरह अँगरेज़ अपने मित्र के स्वास्थ्य के लिए पान करता है। तद-नन्तर जाने की आज्ञा ली और अपने होटल में चले आये। उस असाधारण व्यक्ति की बातचीत से हमें बड़ा सन्तोष हुआ। एक समय वे निरक्षर योद्धा मात्र थे। परन्तु अब उन्होंने अपने आपको योरपीय क्रामवेल और बोनापार्ट एवं भारत के हैदर और रणजीतसिंह की तरह राज्य के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित कर लिया है।

मुहम्मद अली मँझोले क़द के और शरीर से पतले किन्तु चुस्त-दुरुस्त थे। उनका रङ्ग क़रीब-क़रीब गोरा और उनका सिर सुघर बना था। उनका माथा ऊँचा और चौड़ा था। चेहरा वर्तुलाकार था। उनकी सफ़ेद दाढ़ी छोटी थी और भौंहों से आवृत उनकी आँखें तीक्ष्ण थीं। उनकी धज गम्भीर

थी, जिससे उनकी प्रबल मानसिक शक्ति का बोध होता था। परन्तु उनका स्वभाव सुरुचिशील और ढङ्ग आकर्षक था। वे लगभग अस्सी वर्ष के थे और क़रीब क़रीब चालीस वर्ष से मिस्र के शासक थे।

१६वीं को हम एक छोटे से स्टीमर पर सवार हुए। यह नील नदी के मार्ग से मुसाफ़िरों को अलेक्ज़ेण्ड्रिया लिये जा रहा था। मैंने मार्ग में कई घड़ियालों को अपने शिकार का पीछा करते देखा। वे हमारे स्टीमर की आवाज़ का कुछ भी ख़याल नहीं कर रहे थे और पानी में दौड़ रहे थे।

१७वीं के दोपहर को हम अलेक्ज़ेण्ड्रिया के प्रसिद्ध बन्दरगाह में पहुँच गये और यहाँ मिस्टर तिवाल्दे की बहन मिसेज़ लार्किङ्ग के उद्यान-भवन में ठहरे। एक लम्बे, सुन्दर, सुडौल और शरीफ़ आदमी ने जहाज़ से उतरने में हम लोगों की मदद की थी। बाद को मालूम हुआ कि यही मिस्टर लार्किङ्ग थे। इन बहुत ही विनम्र और अतिथि-सेवी ईसाई ने हमारा अपने भाइयों का-सा ही स्वागत किया और ये हमें अपने उक्त सुन्दर गृह में ले गये, जहाँ से नदी और नगर दोनों का सुन्दर दृश्य दिखाई देता था। इनके घर में प्रवेश करने पर हम श्रीमती लार्किङ्ग से परिचित कराये गये। वे पूर्ण सुन्दरी और उच्चमना थीं तथा कई भाषायें जानती थीं। परन्तु केवल दो ही भाषाओं में बातचीत करती थीं—अपने पति से फ्रेंच में और हम लोगों से एवं अपने नौकरों से अरबी में। यह पहला अवसर था जब मैंने किसी सुन्दरी को उस वैज्ञानिक भाषा में बातचीत करते सुना था। मेरी समझ में मिस्टर लार्किङ्ग मिस्र में सबसे अधिक भाग्यशाली हैं, क्योंकि उन्हें सात बातें सुलभ हैं—अच्छा स्वास्थ्य, अच्छी स्त्री, एक बहुत ही सुन्दर बच्चा, अच्छा स्वभाव, अच्छी सम्पत्ति, अच्छा नाम और अच्छा

भाग्य। और भगवान् करे, वे जीवन-पर्यन्त सारे सुख का उपभोग करते रहें। जल्दी ही भोजन की व्यवस्था करने की आज्ञा दी गई और हमने उन दम्पति के साथ बैठकर भोजन किया। फिर दोपहर के बाद एक गाड़ी लाई गई, जिसपर सवार होकर हम अलेक्ज़ेण्ड्रिया नगर के बीच से चलकर एक दूसरे उद्यान-भवन को गये। यह भवन मिस्टर लार्किङ्ग के ससुर मिस्टर थर्नबर्न का था। यहाँ हम इँगलेण्ड जानेवाले जहाज़ की प्रतीक्षा में कुछ समय तक बहुत ही आराम से रहे।

दूसरे दिन हमने वृद्ध मिस्टर थर्नबर्न से उनके घर में जाकर भेट की। उन्होंने हम लोगों को बड़े आदर तथा सुजनता के साथ लिया। बिदा होते समय उन्होंने अपने नौकरों को इस बात का हुक्म दिया कि जब तक हम लोग उनके उद्यान-भवन में रहें, हमें सब तरह का सुख पहुँचाया जाय और हमारी आज्ञाओं का पालन किया जाय। सन्ध्या-समय मिस्टर थर्नबर्न के दूसरे दामाद मिस्टर स्ट्रानरी तोसीज़ा ने खाना खाने को बुलाया। ये यूनान के कन्सल थे। हम उनके घर गये। उनके घर को हमने राजमहल की तरह सज्जित देखा। हमारे शरीफ़ मेज़बान, उनकी सुन्दर स्त्री और छोटी बहन ने हम लोगों का स्वागत किया। अपनी अतुलनीय सुन्दरता में ये दोनों सुन्दरियाँ अपनी बहन श्रीमती लार्किंग से बाज़ी मार ले गई थीं। मूल्यवान् वस्तुओं से सारा गृह सजाया गया था। अतिथियों के साथ इतनी सच्ची शिष्टता तथा विनम्रता का व्यवहार किया गया कि वैसा व्यवहार भारत में ईसाइयों से नहीं मिल सकता है। हम लोग रात में दस बजे के बाद घर लौटे।

हमें अलेक्ज़ेण्ड्रिया में छः दिन तक ठहरना पड़ा। मैं प्रतिदिन, अपने अवकाश के समय, नगर के भीतर तथा उसके बाहर घण्टे भर तक सैर करता था।

२४वीं को दोपहर के बाद दो बजे हम अपने ईसाई मित्रों से बिदा हुए और ग्रेट लिवरपूल नाम के एक बड़े जहाज़ पर सवार होकर अलेक्ज़ेण्ड्रिया के बन्दरगाह से रवाना हुए। बेंटिक की अपेक्षा इस जहाज़ पर स्थान अधिक था। व्यवहार की दृष्टि से हमारे साथ बहुत ही अच्छा बर्ताव किया गया। असल बात यह है कि ज्यों-ज्यों तुम इँगलेण्ड की ओर बढ़ते जाओगे, अँगरेज़ लोग तुम्हें अधिकाधिक विनम्र और शिष्ट मिलेंगे। अलेक्ज़ेंड्रिया का बन्दर छोड़ने पर हमारा जहाज़ अपने १६७ यात्री लिये मौज के साथ समुद्र पर चलने लगा। समुद्र शान्त था, इसलिए सभी यात्री बहुत प्रसन्न थे। २६वीं को हमें कोई ६० मील की दूरी से कैण्डिया का हिमावृत द्वीप चमकते हुए बादल जैसा दिखाई दिया। २८वीं को हम रात को साढ़े बारह बजे माल्टा पहुँचे। अलेक्ज़ेंड्रिया से माल्टा ८३० मील दूर था और यहाँ पहुँचने में चार दिन लगे। यहाँ जहाज़ के लिए कोयला लेना था, अतएव हम एक दिन यहाँ ठहर गये।

२९वीं को दोपहर के बाद हमारे जहाज के भीमकाय इंजिन ने चलना शुरू किया और पाल चढ़ा देने से जहाज़ की गति और भी तेज़ हो गई। हम माल्टा से दोपहर के बाद एक बजे चले और सन्ध्या-समय सिसली टापू के पास से निकल गये। हमें यहाँ का एटना नामक ज्वालामुखी पहाड़ दिखाई दिया। इसका दृश्य दिन में तथा रात में दोनों समय सुन्दर दिखाई देता है।

चौथी को दोपहर बाद तीन बजे हम जिब्राल्टर के प्रसिद्ध बन्दर में पहुँचे। माल्टा से यह ८२५ मील दूर है और इस यात्रा में चार दिन लगे। इँगलेंड पहुँचने के लिए अभी इतनी ही दूरी और पार करनी थी। जहाज़ के ब्वायलर में कुछ खराबी

हो जाने से हमें यहाँ एक दिन रुकना पड़ा। यात्रियों को किनारे पर जाने की अनुमति मिल गई। हम भी इस अद्भुत दृढ़ स्थान को देखने के लिए गये। एक समय यह जगह मुसलमानों के अधिकार में थी। अब यह अँगरेज़ों के क़ब्ज़े में है। मैं तो जिब्राल्टर के अतुलनीय क़िले को देखकर आश्चर्य-चकित हो गया। संसार में यह एक अजेय दुर्ग है। यह समुद्र में उभड़ी हुई एक ठोस चट्टान पर बना हुआ है और एक ओर अटलांटिक के और दूसरी ओर भूमध्यसागर के प्रवेश-द्वारों का नियन्त्रण करता है। साथ ही स्पेन के प्रायद्वीप को भयभीत रखता है, जिससे यह एक स्थलडमरूमध्य से जुड़ा हुआ है। जिब्राल्टर की चट्टान के पार्श्व गेलरियों के रूप में खुदे हुए हैं और सन्तरियों के कमरों की पंक्तियों पर पंक्तियाँ बनी हुई हैं। इन कमरों में बड़ी-बड़ी तोपों की नलियाँ रखने के लिए छेद बने हुए हैं, जिनसे चारों ओर भयङ्कर अग्निवर्षा की जा सकती है।

सन् ७१२ में इस अजेय दुर्ग को स्पेन के ग्रानाडा प्रान्त के साथ मुसलमान सेनापति तारीक बिन ज़ियाद ने जीता था। इसके पहले के काल्पे नाम को बदलकर इसका नाम जबालुल तारीक रख दिया गया। इसी नाम से इसका जिब्राल्टर नाम पड़ा। कोई ७८० वर्ष तक यह मुसलमानों के अधीन रहा। बादशाह अबूअब्दुल्ला और उसके पूर्ववर्तियों की संकुचित नीति के कारण सन् १४९२ ईसवी में यह क़िला तथा स्पेन के अन्य प्रान्त मुसलमानों के हाथ से निकल गये और उन पर स्पेन के बादशाह का अधिकार हो गया। सन् १७०४ में जिब्राल्टर के क़िले पर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ जो आज तक है। यहाँ सात हज़ार के लगभग लोग बसते हैं। अँगरेज़, यहूदी, पुर्तगाली आदि लोग हैं। इनके सिवा लगभग दो हज़ार के फ़ौज भी रहती है।

५वीं की सन्ध्या को ब्वायलर की मरम्मत हो गई, फलतः लङ्गर उठाये गये और जहाज़ ने प्रस्थान किया। समुद्र शान्त था, संगी-साथी विनोदी थे, जहाज़ का कप्तान तथा दूसरे अधिकारी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदा तत्पर रहते थे, अतएव हमारी यात्रा बहुत ही अधिक आनन्ददायक रही। १०वीं मई को रात के समय हमारे जहाज़ ने 'मादरबैङ्क' नामक स्थान के पास लङ्गर डाल दिया। यहाँ जहाज़ को 'क्वारेंटीन' के लिए कुछ दिनों तक ठहरना था। जब डाक्टर कहते कि हम लोगों पर मिस्र के प्लेग का कोई चिह्न नहीं रहा तथा हम लोग पूर्ण स्वस्थ हैं तभी हम किनारे पर उतरने पाते। तड़के सवेरे मेरे एक मित्र बङ्गाल सर्विस के मिस्टर रेनल ने मेरे केबिन में आकर मुझे जगाया और कहा कि जहाज़ के पास कुछ देखने योग्य लड़कियाँ आई हैं। उतने सवेरे ठंढक में मुझ भारतीय के लिए उठना कष्ट-प्रद था, यद्यपि वह हमारे यहाँ का सबसे अधिक गर्म महीने—मई की ११वीं—का सवेरा था, परन्तु प्रलोभन के फेर में पड़कर मैंने लबादा ओढ़ लिया। अब अपने मित्र के कहने के अनुसार मैं बाहर आया। डेक पर जाने पर मैंने देखा कि हमारा जहाज़ संशोधन की स्थिति में खड़ा है। बाईं ओर इँगलेंड देश का सुन्दर दृश्य दिखाई देता था और दाहनी ओर वाइट का टापू था। हमारे जहाज़ के पास कई छोटी-छोटी नावें खड़ी थीं, जिनमें अन्य दर्शकों के सिवा इँगलेंड की कई सुन्दरियाँ थीं जो मुझे अद्भुत आकर्षक जान पड़ीं।

ऐसी लम्बी यात्रा के बाद 'क्वारेंटाइन' में रहना और अपने चारों ओर प्रत्येक वस्तु अच्छी और विचित्र देखना, किन्तु उनके साथ किसी तरह का सम्बन्ध न रखना, किसी भी मनुष्य के लिए अत्यन्त ही अरुचिकर बात है। उकतानेवाले लम्बे तीन दिन हमें जहाज़ पर ही रहकर बिताने पड़े। जब चौथे दिन

सवेरे हमारा जहाज़ किनारे की ओर चलता हुआ दिखाई दिया तब हमें बड़ी प्रसन्नता हुई और एक घंटे के भीतर हमारे जहाज़ ने साउदम्पटन के डक में प्रवेश किया। हमारे इस तरह कुशल-पूर्वक यात्रा पूरी करने के लिए परमात्मा को धन्यवाद है।

चौदहवाँ अध्याय

१४वीं मई को सवेरे सात बजे हम चुङ्गीघर के समीप जहाज़ से उतरे। भारत में जो परेशानी उठानी पड़ती है तथा जो समय व्यर्थ जाता है वह सब यहाँ के चुङ्गीघर में नहीं झेलना पड़ा और हमारा सामान आसानी से निकल गया। हम यूनियन-होटल नाम की एक सुन्दर सराय में ठहरे। यहाँ से शहर और समुद्र दोनों का सुन्दर दृश्य दिखाई देता था। यहाँ के निवासी हमारे दल के लोगों को इस प्रकार देखते थे, मानो हम संसार के सप्त आश्चर्यों में हों। सौभाग्य से मैंने कैरो में एक तुर्की पोशाक ख़रीद ली थी, अतएव उसकी बदौलत मैं घूरे जाने से बचा रहा। मीर जाफ़र को छोड़कर मेरे सभी साथी बाज़ार जाने को अधीर हो रहे थे। कलेवा करने के बाद वे तुरन्त बाज़ार देखने चले गये। वे अपनी सादी भारतीय पोशाक पहने थे। वहाँ वे कुतूहलवश लोगों द्वारा घूरे ही नहीं गये, किन्तु उनके पीछे भीड़ लग गई। इससे नाराज़ होकर वे बिना कुछ ख़रीदे ही लौट आये, साथ ही लोगों की भीड़ भी आई। होटल के दरवाज़े में घुसने के पहले वे उस भीड़ को देखने के लिए घूमकर खड़े हो गये। इसपर चारों ओर से 'हुर्रा' की ध्वनि ध्वनित हो उठी। हमारे हकीम बदरुद्दीन ने मुझसे क्रोध के साथ कहा—ये स.फ़ेद शैतान अत्यधिक कौतुक-प्रिय हैं। उन्हें जाति या उम्र का कुछ भी लिहाज़ नहीं है। मुझे तो उन्हें पत्थर से मारने की बड़ी इच्छा होती है। मैंने वृद्ध हकीम से कहा—हकीम साहब, ऐसा कदापि न कीजिएगा; अन्यथा आप अपने ऊपर तथा इस होटल पर विपत्ति को

बुलायँगे। ये लोग किसी से नहीं डरते। ये कौतुक-प्रिय ज़रूर हैं, परन्तु इन्होंने आपकी कोई हानि नहीं की, इसलिए शान्त रहिए।

१५वीं की सुबह को हम रेलगाड़ी से लन्दन गये। यह रेल-यात्रा बड़ी सुखद रही। मार्गगत देहात के दृश्य बहुत सुन्दर थे। बहते हुए झरनों से व्याप्त हरित भूखण्ड, गाँव, क़स्बे आदि के दृश्यों की झलक देखते हुए हम अपने गन्तव्य स्थान में पहुँच गये। गाड़ी के दरवाज़ों के खोले जाने पर हम एक बहुत लम्बे-चौड़े आँगन में उतरे जो काले पत्थरों का बना था।

कुछ ही मिनटों में दो सुन्दर गाड़ियाँ, जिनमें बड़े-बड़े बलिष्ठ घोड़े जुते हुए थे, नज़दीक लाई गईं। उनमें हम लोग बैठ गये और वे लन्दन शहर को हाँक दी गईं। सड़क के बाद सड़क और चौक के बाद चौक जो-जो हमने पैंतालीस मिनट में पार किये, सब के सब पत्थर के बने, साफ़-सुथरे और व्यवस्थित थे और उनमें आने-जानेवाले स्त्री-पुरुषों की भीड़ थी। क़रीब-क़रीब सभी स्त्रियाँ सुन्दर और सभी पुरुष सुडौल तथा तेज़ दिखाई दिये। रईसों और राजाओं के महल अपने पोर्टिको तथा ऊँची रचना से दूसरों के वासस्थानों से अलग दिखाई दे रहे थे। उनमें से एक में मैंने अच्छे कपड़े-लत्ते पहने दो आदमियों को अपने सिरों पर राख बिखेरे देखा। मैंने यह अनुमान कर कि वहाँ किसी की मृत्यु हो गई है, अपने पास बैठे हुए मिस्टर स्काट से वह बात कही। उन्होंने हँसकर कहा कि यह यहाँ का पुराना दस्तूर है, जो कहीं-कहीं आज भी प्रचलित है। अस्तु, इस नगर को देखकर, जिसकी आबादी बीस लाख से कम न होगी, कोई भी कह सकता है कि इसमें सारे संसार की सम्पत्ति भरी हुई है। अन्त में हम ब्रुक-स्ट्रीट नाम के महल्ले में पहुँचे और मिवार्ट्स होटल नाम की एक बड़ी भारी इमारत के सामने गाड़ियों से उतरे।

राजाओं के उपयुक्त सभी प्रकार की विलास की सामग्रियों से लैस इस सराय में हम तीन दिन रहे। इसके बाद हमारे स्वामी ने, जो वहाँ के प्रतिदिन के लगभग दो सौ रुपये के ख़र्च से डर गये थे, स्लोनेस्ट्रीट में ७ नम्बर का घर भाड़े पर ले लिया।

भूमण्डल के मध्य से संसार के सिरे तक की अपनी लम्बी यात्रा के बाद यहाँ हम ठहरे, जहाँ सूर्य चन्द्रमा-सा मन्द बहुत दूर दक्षिण में दिखाई देता है और ध्रुव नक्षत्र क़रीब-क़रीब लम्ब-रूप में स्थित रहता है, जहाँ सारा देश उपजाऊ और निवासी बुद्धिमान्, शिष्ट तथा क्रियाशील हैं, जहाँ भाषा, रीति-रवाज, और तौर-तरीक़े हमारे से बिलकुल भिन्न हैं तथा जहाँ हमारी मधुर निवास-भूमि का भाग्य कोई पचीस बड़े-बड़े आदमियों के हाथों में निहित है। मुझे विश्वास है कि यह सब बिना परमात्मा की इच्छा के सम्भव नहीं, कि यह छोटा टापू, जो भूमण्डल पर मनुष्य की देह पर तिल के समान स्थित है, संसार के एक बहुत बड़े भाग पर शासन और शेष को आतंक से पीड़ित करे।

१६वीं को मैं अपने पुराने मित्र और संरक्षक कैप्टन ईस्टविक से साढ़े तीन वर्ष बाद मिला। वे मुझे अपने साथ ही अपने घर लिवा ले गये।

हम लोगों ने एक हफ़्ता शान्ति के साथ घर में बिताया। मेरा मतलब यहाँ हमसे अपने स्वामी और उनके नौकरों से है, क्योंकि मुझे तो घर में भी वैसा कुछ आराम नहीं था। मुझे सेक्रेटरी और सब के दुभाषिए का काम करना पड़ता था। उनमें से कोई भी वहाँ की भाषा नहीं जानता था, अतएव उनके काम-काज आदि सभी बातों में मुझको ही दुभाषिया बनना पड़ता था। इसी बीच में वहाँ के दो रईसों से मेरा परिचय हो गया। ये अल्फ़्रेड लैथम और आर० पुल्सफ़ोर्ड थे। अल्फ़्रेड लैथम बड़े भारी व्यापारी थे और आर० पुल्सफ़ोर्ड पार्लि-

सदस्य थे। इन दोनों महानुभावों की कृपा से मुझे वहाँ की बहुत अधिक जानकारी प्राप्त हुई और मुफ़ में अनेक स्थान देखने को मिले।

२४वीं को हमारे कृपालु मित्र हमें नगर के कुछ प्रसिद्ध स्थान दिखलाने को ले गये। हमारा ध्यान वहाँ के बड़े-बड़े पुलों की ओर गया। इन उपयोगी इमारतों में कच्चे लोहे को एक बड़े परिमाण में लगा देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि इस देश में इस धातु की अटूट खानें होंगी, क्योंकि इन पुलों के सिवा यहाँ लोहे का अन्यत्र भी बहुत अधिक ख़र्च होता दिखाई दिया। डेढ़ घंटे के भ्रमण के बाद हम सेंट पाल के गिर्जाघर पहुँचाये गये। मेरी समझ में दुनिया में इसकी बराबरी की कोई दूसरी इमारत न होगी।

सबसे अधिक बुरी बात मुझे यह लगी कि उसमें मूर्तियाँ स्थापित थीं। मैं जानता हूँ, उनकी पूजा नहीं होती है; परन्तु जो मन्दिर धर्म के उद्देश्य से बना हो, चाहे छोटा हो या बड़ा, बिलकुल सादा होना चाहिए ताकि उपासकों का ध्यान वहाँ के उपदेशों से उचटकर दूसरी ओर आकृष्ट न हो। इस बड़े गिर्जाघर के देखने के बाद हम भूगर्भ के मार्ग (टेम्सटनेल) को देखने गये।

२५वीं को हमारे कृपालु मित्र मिस्टर लेथम और मिसेज़ लेथम ने हमें इटालियन ओपेरा देखने को बुलाया। सन्ध्या-समय आठ बजे के लगभग हम वहाँ गये। यह एक विशाल महल था। महारानी और राजघराने के लोगों की बैठने की जगह रङ्ग-भूमि के दाहने ओर थी। हम लोगों की जगह रङ्ग-भूमि के सामने थी। हम लोग वहाँ आराम के साथ आध घंटे तक बैठे रहे। साढ़े आठ बजे पर्दा उठाया गया। दो बहुत ही सुन्दर स्त्रियाँ, जो निर्लज्ज ढङ्ग से कपड़े पहने थीं और एक वृद्ध

पुरुष, जो अपने को उनका पिता बताता था, रङ्गभूमि में आये। उन्होंने बाजे की लय पर कोई ऐतिहासिक गीत गाया और बहुत ही निपुणता के साथ नृत्य किया। नाचते समय जब वे स्त्रियाँ चारों ओर घूमती थीं, उनके छोटे-छोटे घाँघरे वर्जित ऊँचाई तक ऊपर उठ आते थे। इस प्रकार मर्यादा-भङ्ग कर वे दर्शकों को प्रलुब्ध करना चाहती थीं। हमें सङ्गीत बहुत अच्छा लगा, परन्तु हम उसका एक अक्षर भी नहीं समझ सके।

कई आदरणीय व्यक्तियों तथा बड़े आदमियों का परिचय प्राप्त कर लेने पर हम लोग प्रायः प्रत्येक सन्ध्या को उनके भोजों में शामिल होने को बुलाये जाते और इस प्रकार हम अपना सन्ध्या का समय उनकी अच्छी गोष्ठी में आनन्द के साथ व्यतीत करते। जब मुझे अपने स्वामी के साथ जाने का निमन्त्रण नहीं मिलता था तब मैं अकेले थियेटर, आम तौर से हे-मार्केट थिएटर और लीसियम देखने चला जाता था। कभी-कभी मैं अपने मित्र और शिष्य कैप्टन टी० पोस्टंस के साथ जाता था, जो कार्यवश अपनी सुन्दर और विदुषी स्त्री के साथ लन्दन आये थे।

३०वीं को मैं अपने स्वामी के साथ ईस्ट इंडिया हाउस गया। यह लीडेनहाल स्ट्रीट में था। कहते तो इसे घर हैं, पर है यह एक महल, जिसमें बहुत से कमरे और हॉल हैं और वे सब के सब ख़ूब सुसज्जित हैं। यही वह जगह है, जहाँ मेरे प्यारे देश का भाग्य चौबीस आदमियों के हाथों में रहता है। ये लोग 'आनरेबल ईस्ट इंडिया कम्पनी' के आनरेबल डायरेक्टर कहलाते हैं। यही लोग भारत के शासन-यन्त्र के मुख्य सूत्रधार हैं। वहाँ पहुँचने पर हम महल के बीच के एक कमरे में दो सरकारी प्रवेशकों के द्वारा पहुँचाये गये। वहाँ चेयर-मैन और उनके बग़ल में उनके डेपुटी अपनी-अपनी कुर्सी पर

बैठे थे। चेयरमैन का नाम कैप्टन जान शेफ़र्ड था और उनके डेपुटी का सर हेनरी विलाक। दोनों आदमी हमें गम्भीर और समझदार जान पड़े। उन्होंने हमें विनम्रता के साथ लिया। बातचीत पहले सर हेनरी विलाक से फ़ारसी में शुरू हुई। उन्हें हमारे कथन का आशय बार-बार चेयरमैन को बताना पड़ता था, इसलिए दुभाषिये का कार्यभार उन्होंने मुझी पर डाल दिया। अतएव कुछ तो मैं अपने स्वामी के विचारों को उन्हें अँगरेज़ी में समझाता और कुछ बातें, जिनसे मैं उनका हित समझता, स्वयं अपनी ओर से गढ़कर उनसे कहता। इस बातचीत का नतीजा, जैसा कि उन दोनों बड़े आदमियों के कथनों से प्रकट हुआ, यह निकला कि न्याय प्राप्त करने के लिए मेरे स्वामी का इस देश में आना मूर्खता का काम है; क्योंकि यह न्याय वे अपने देश में ही उन (डायरेक्टर) को लिखकर प्राप्त कर सकते थे। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि स्वयं कम्पनी के गवर्नर-जनरल लार्ड एलेनबरा की क़लम के मनमाने प्रयोग ने मेरे स्वामी को अपने स्वत्वों से वञ्चित कर दिया है और इसी से उन्हें न्याय प्राप्त करने के लिए इँगलैण्ड आना पड़ा है।

लगभग आध घण्टे की बातचीत के बाद हमने उन दोनों बड़े आदमियों से विदा ली। इसके बाद एक कृपालु मित्र हमें ऊपर की मंज़िल में ले गये, जहाँ हमने आनरेबिल कम्पनी का अजायब-घर देखा तथा तीन विद्वानों से—अर्थात् हिन्दुस्तानी डिक्शनरी के प्रणेता जान शेक्सपियर, प्राच्य-विद्या-विद् प्रोफ़ेसर विलसन और कर्नल डब्ल्यू० एच० साइक्स से—भेंट की। जान शेक्स-पियर को हिन्दुस्तानी भाषा की एक पुस्तक का प्रणेता समझकर मैंने उनसे अपनी भाषा में एक सुन्दर सा लम्बा वाक्य, उनकी प्रशंसा में, कहा। परन्तु अफ़सोस! न तो वे मेरा वाक्य समझ सके और न उस भाषा में ही एक शब्द बोले जिसमें उन्होंने कई

उपयोगी किताबें लिखी हैं। हाँ, प्रोफ़ेसर विलसन निस्सन्देह एक विद्वान् पुरुष थे; क्योंकि उन्होंने अपनी बातचीत से तुरन्त अपने पाण्डित्य का निदर्शन कर दिया। तीसरे सज्जन रायल एशियाटिक सोसायटी के एक डायरेक्टर तथा उसके सदस्य भी थे। ये लम्बे, पतले और देखने में सुन्दर थे और अँगरेज़ की अपेक्षा कहीं अधिक एक शरीफ़ अरबी जैसे मालूम पड़ते थे। भारत में पहले अधिक समय तक रहने के कारण ये हमारी भाषा, स्वभाव तथा रङ्ग-ढङ्ग से पूर्ण परिचित थे। संयोगवश इनसे भेट हो जाने से हमें बहुत प्रसन्नता हुई और इनकी शिष्टता तथा कृपालुता को देखकर हमारे मनों में इनसे मित्रता करने की इच्छा हो गई। लन्दन में रहते समय मैं प्रायः इनसे मिलता और वार्तालाप करता रहा। ये मुझपर सदा कृपा का भाव रखते रहे। मुझे ये ऊँचे विचार के, बड़े पण्डित, भारी प्रतिभा-वान् तथा बड़ी सूझ-बूझ के आदमी जान पड़े।

आज शाम को मिस्टर लैथम मुझे कृपा कर रायल इंस्टीट्यूशन लिवा ले गये। वहाँ पहुँचने पर मैं तीन या चार बड़े आदमियों से परिचित कराया गया। उनके नाम मैं भूल गया हूँ। उन्होंने मेरे साथ अपने भाई जैसा व्यवहार किया, अपने पास बैठाया और जो नहीं समझ सकता था उसे समझाया। असल बात यह है कि इँगलेण्ड में उच्चवर्ग के लोग सभा-समाज में सबसे अधिक विनम्रता का व्यवहार करते हैं। प्रोफ़ेसर फ़राडे ने शरीरशास्त्र पर बड़ी योग्यता से भाषण किया। मैं गत कई वर्षों से इस विषय का अध्ययन बड़े प्रेम से कर रहा था। इस एक भाषण को सुनकर मैंने जो कुछ सीखा वह मैं अपनी पुस्तकों का साल भर परिश्रमपूर्वक अध्ययन करके भी नहीं जान सकता था।

पहली जून को कर्नल टी० वुड नाम के एक रईस से मेरी भेट कराई गई। उन्होंने, उनकी ऊँचे दर्जे की स्त्री ने और

दो विलक्षण सुन्दर तथा उच्चशिक्षा-प्राप्त कन्याओं ने हम लोगों को कृपापूर्वक लिया। इसके बाद हम दूसरी बार ईस्ट इंडिया-हाउस गये। मिस्टर पुलसफ़ोर्ड हमें वहाँ से ब्रिटिश म्यूज़ियम और ज़ुआलोजिकल गार्डेंस लिवा ले गये। इनको देखकर हम लोग बहुत प्रसन्न हुए।

दूसरी को रविवार था। सारा शहर सुनसान और उदास सा देख पड़ता था। कोई भी दूकान नहीं खुली थी। घोड़ा-गाड़ी आदि सवारियाँ इधर-उधर नहीं आ-जा रही थीं। परन्तु सभी नगर-निवासियों ने अपने घरों में अच्छी से अच्छी पोशाकें पहनी थीं। हमारे अँगरेज़ नौकर भी, आज का सारा काम पिछली रात को ही करके, अच्छे-अच्छे कपड़े पहन-कर अपनी पूजा के स्थान को चले गये थे। यहाँ रविवार उतना ही पवित्र समझा जाता है, जितना शुक्रवार हमारे लिए और शनिवार यहूदियों के लिए है। काम-काज का दिन न होने से हम लोग हाईगेट और हैम्पस्टीड घोड़ागाड़ी में गये और वहाँ की ताज़ी हवा तथा उक्त नगर के सौन्दर्य का उपभोग किया। शाम को हम लोग अपने घर लौट आये।

तीसरी को सवेरे हम डाक्टर बोरिङ्ग नाम के एक विद्वान् से मिलने गये और इनसे बातचीत करके अपने मामले के सम्बन्ध में बहुत सा लाभ प्राप्त किया। दोपहर के बाद हम हाउस आफ़ लार्ड्स और पार्लियामेण्ट देखने गये और वहाँ शक्कर की चुङ्गी पर योग्यतापूर्वक वाद-विवाद होते सुना।

मिस्टर लैथम की सिफ़ारिश से चौथी को मुझे सेंट जार्जेस हास्पिटल देखने का निमन्त्रण मिला। वहाँ डाक्टर कटलर और मिस्टर प्रेसकाट हीवेट ने कृपापूर्वक मेरा स्वागत किया और मिस्टर प्रेसकाट हीवेट मुझे अपने साथ अस्पताल के सब रोगियों को दिखाने ले गये। इसके बाद एक ऐसे व्यक्ति की लाश की

चीर-फाड़ देखने की अनुमति मिली जो केवल दो दिन पहले मरा था। यहाँ मुझे विश्वास हो गया कि फ़ारसी और अरबी में जो 'गेलेन का शरीर-शास्त्र' मैंने पढ़ा था वह निरा कल्पना और अनुमान पर लिखा हुआ था और यह कि इस अत्यन्त महत्त्व की विद्या का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना किसी व्यक्ति के लिए तब तक असम्भव है जब तक वह व्यावहारिक रूप से चीर-फाड़ का काम नहीं कर लेता है।

५वीं को सवेरे हम अस्काट की घुड़दौड़ देखने गये। कौन घोड़ा जीतेगा और कौन हारेगा, यह देखने के लिए वहाँ लोगों की बड़ी भीड़ एकत्र थी। प्रायः सभी दर्शक आपस में इस सम्बन्ध में बाज़ी बदते हैं। ये घुड़दौड़ें यहाँवालों के लिए बड़ी-बड़ी रक़मों की हानि और लाभ का कारण होती हैं। घुड़दौड़ के अँगरेज़ी घोड़े बड़े अच्छे जानवर होते हैं। यहाँ के आनन्द की हमने ज़रा भी परवा नहीं की, परन्तु इस स्थान तक आने का परिश्रम उठाने से एक बहुत बड़ा उद्देश्य सिद्ध हो गया। अर्थात् हमें अपनी कृपालु महारानी तथा उनके पति का नज़दीक से दर्शन करने का अवसर मिल गया जिन्हें हमने झुक-झुककर अभिवादन किया और जिसको उन दोनों महानुभावों ने विनम्रता के साथ स्वीकार किया। ऐसा ज्ञान पड़ा कि हमारी पोशाकों, हमारे चेहरों और विना पगड़ी उतारे हमारे अभिवादन से उन श्रीमानों का तथा उनकी सरदार-मण्डली का ध्यान हम लोगों की ओर आकृष्ट हुआ था, परन्तु उनमें साधारण लोगों का-सा कुतूहल नहीं था। परमात्मा की कृपा से जो लोग गौरव से अलंकृत होते हैं उनका स्वभाव भी तादृश ही उच्च होता है।

१०वीं को हम कला, व्यापार और वस्तुओं के निर्माण का प्रोत्साहन देनेवाले समाज की एक बैठक में शामिल हुए। इसके

सभापति स्वयं प्रिंस अलबर्ट हुए थे। सदरलैण्ड के ड्यूक के पास बैठने को हमें जगह दी गई थी। उन्होंने मुझसे बड़ी विनम्रता और मित्रतापूर्ण ढङ्ग से बातचीत की। सभापति महोदय के आगमन पर उनके सम्मान में सभी लोग उठकर खड़े हो गये। हमने भी अपने एशियाई ढङ्ग से उनका अभिवादन किया। प्रिंस सबके अभिवादन का उत्तर देकर, बीच में रक्खी हुई ऊँची कुर्सी पर बड़े सुन्दर ढङ्ग से जा बैठे। इसके बाद एक-एक करके सभी कारीगरों ने अपनी-अपनी बनाई हुई चीजें प्रिंस के आगे रक्खीं और उनकी विशेषताओं का वर्णन किया। सभापति और सदस्यों ने उन वस्तुओं को पसन्द किया और उनके बनानेवालों की प्रशंसा की। बाद को शायद उन्हें कुछ इनाम भी दिया गया। भिन्न-भिन्न वस्तुओं के नमूनों का संग्रह देखने के लिए हम लोग नीचे गये। इस सिलसिले में हमें प्रिंस से मिलने का अवसर मिला और हमने बड़े आदर-भाव से झुककर उनका अभिवादन किया। हिज़ रायल हाईनेस बहुत ही मधुर ढङ्ग से मेरे स्वामी से बोले। उन्होंने उनसे वही प्रश्न किया जो आम तौर से प्रत्येक अँगरेज़ पूछता है "तुमको यह देश कैसा लगा ?" मेरे द्वारा यह उत्तर दिया गया कि "हमें बहुत पसन्द है।" दूसरा प्रश्न यह हुआ "इँगलेंड में तुम्हें कौन सी बात ज्यादा पसन्द है ?" मैंने अपने स्वामी की ओर से निर्भीकता के साथ किन्तु आदरपूर्वक यह उत्तर दिया कि "यहाँ के ऊँचे वर्ग के लोगों का शिष्ट-व्यवहार हमें बहुत अच्छा लगा।" इसपर उनके चेहरे पर हलकी सी मुस्कराहट दौड़ गई और वे आगे बढ़ गये। इस प्रकार प्रिंस महोदय से हमारी अचानक भेंट हो गई।

११वीं को हम एक बार फिर ब्रिटिश म्यूज़ियम देखने गये और जो देखने को रह गया था, उसे देखा भाला। वहाँ से हम

वेस्ट मिनिस्टर एबे देखने गये। यह एक बहुत ही सुन्दर और शानदार ऊँची इमारत है। यह पवित्र स्थान भी इँगलेण्ड के महापुरुषों की मूर्तियों से रहित नहीं है, परन्तु यहाँ वे उतनी अधिक नहीं हैं जितनी सेन्ट पाल के गिरिजाघर में हैं। यहाँ के पादड़ी साहब बहुत ही नवयुवक हैं। वे विनम्र तथा योग्य व्यक्ति हैं। वे हमें पश्चिम के दरवाज़े पर ले गये। वहाँ से उसका भीतरी दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई दिया, जिसका हम पर आतङ्क छा गया। सारे गिरजे को दिखाने के बाद वे हमें एक बड़े हॉल में ले गये, जहाँ यहाँ के बादशाहों का राज्याभिषेक होता है। जिस कुर्सी पर वे बैठते हैं वह बहुत ही पुराने ढङ्ग की जान पड़ती है, और हम लोग उसका स्पर्श किये बिना वहाँ से नहीं आ सके। इसके बाद पादड़ी साहब हमें एबे के समीप ही अपने घर ले गये और हममें से प्रत्येक को बहुत ही अच्छा पानी पिलाया। धर्म-सम्बन्धी कुछ बातचीत होने के बाद मेरे स्वामी तो घर चले गये और मैं कैप्टन पोस्टन्स के साथ बोर्ड आफ़ कण्ट्रोल के सेक्रेटरी आनरेबल डब्ल्यू० बी० बेरिङ्ग से मिलने गया।

वहाँ जाने पर सेक्रेटरी ने हम लोगों को बड़े आदर से लिया। वे कोई तीस वर्ष के होंगे। उन्होंने भारत के शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में मुझसे कई प्रश्न पूछे। मैंने उनका, अपनी विनम्र सम्मति के अनुसार, अपने देश के पक्ष में उत्तर दिया। मेरे उत्तर उन्हें अच्छे नहीं लगे। मेरे मित्र कैप्टन पोस्टंस ने उनसे कुछ देर तक वात-चीत की। फिर हम लोग चले आये।

१४वीं को सन्ध्या की पार्टी में हम लार्ड ऐशले के घर गये। लार्ड महोदय और उनकी सुन्दर स्त्री ने हमें बड़ी शिष्टता के साथ लिया। यहाँ हम विसकाउंट जोसेलिन और अँगरेज़ सुन्दरियों

में सबसे अधिक सुन्दर उनकी पत्नी से परिचित कराये गये। कुछ देर के बाद स्वर्ग की उस अप्सरा से मुझे शतरंज खेलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके साथ मैंने दो बाजियाँ खेलीं और उसे प्रसन्न करने के लिए मैंने अपने को दोनों बार हार जाने दिया।

१९वीं को मैं इंडिया हाउस में कोर्ट आफ़ प्रोप्राइटर्स की सभा में गया और वहाँ मिस्टर सुलीवान का योग्यतापूर्ण भाषण सुनकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने अपने भाषण में भारत के शासकों और शासितों दोनों की भलाई की बात कही।

२५वीं को हमें बोर्ड आफ़ कण्ट्रोल के अध्यक्ष लार्ड रिपन के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने हम लोगों का शिष्टतापूर्वक स्वागत किया। परन्तु अपने मामले के सम्बन्ध में उनका मनोभाव जानते समय वे हमें बहुत ही कड़े और एक भिन्न प्रकार के व्यक्ति जान पड़े।

२७वीं को हम मेजर जर्विस के घर सन्ध्या की पार्टी में गये। वहाँ कई सुन्दरियाँ और बड़े आदमी मौजूद थे। उनमें वही अरबी के विद्वान् कर्नल माइल्स भी मिले, जिनसे मैं चौबीस वर्ष पहले बीरा में मिला था। मैंने कहा कि हमारे मिलने की दोनों जगहों में बड़ा अन्तर है। उन्होंने जवाब दिया कि केवल जगहों में ही नहीं, किन्तु समय में भी। उनसे मिलने मैं उनके घर गया, जिसके बदले में वे मेरे घर मिलने नहीं आये। कदाचित् उन्होंने सोचा होगा कि वे अभी भारत में ही हैं—स्वतन्त्रता की भूमि में नहीं, जहाँ सब बराबर हैं।

२८वीं को हम डिओरमा नामक एक अद्भुत जगह देखने के लिए रीजेण्ट्स पार्क गये। वहाँ पहुँचने पर हम एक कमरे में ले जाये गये, जहाँ काफ़िर के हृदय जैसा ही अन्धकार था। वहाँ हम कृपापूर्वक कुर्सियों पर बैठाये गये। कृपापूर्वक मैं इसलिए

कहता हूँ, क्योंकि हमने अपने को ले जानेवाले के हाथ सौंप दिया था और वह हम लोगों के साथ उस कालकोठरी में मनमाना दुर्व्यवहार कर सकता था। इसी बीच में दूर के सङ्गीत को सुनकर हमारे कानों को सन्तोष हुआ और तब वर्फ़ीले सुबह का एक सुन्दर दृश्य धीरे-धीरे दृष्टि-गोचर हुआ, जिसमें हमने नदी के किनारे एक गँवार कुँजड़े को देखा, जो अपने माल के पार्सलों का ढेर लगाकर अर्द्धनिद्रित-सा अपनी नाव में बैठा सर्दी से काँप रहा था और उसकी स्त्री और बच्चा बण्डलों पर पड़े सो रहे थे। इतने में नदी के तट पर एक बड़ा भारी महल दिखाई दिया। उसके रहनेवाले भिन्न-भिन्न कामों में लगे हुए थे। इसी समय सूर्य चमकने लगा और उसने अपनी किरणें चारों ओर फैला दीं। इसके बाद सन्ध्या आई और दृश्य बदल गया। यहाँ तक कि वह तरकारी बेचनेवाला पुरुष से एक सुन्दर स्त्री में बदल गया। तारे दिखाई देने लगे, चन्द्रमा का उदय हुआ और उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया। वह महल भी दीपकों और झाड़-फ़ानूसों से प्रकाशमान हो गया। धीरे-धीरे दृश्य में फिर परिवर्तन हुआ और पहले की तरह वहाँ फिर अन्धकार छा गया, जिसमें दूर के उसी संगीत ने फिर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। थोड़ी देर के बाद फिर प्रातःकाल का प्रकाश प्रकट हुआ और एक मिनट में एक बड़े गिरजे का भीतरी दृश्य हमारे दृष्टि-गोचर हुआ—पहले वह खाली दिखाई दिया, किन्तु दूसरे ही क्षण वह उपासकों से भरा हुआ नज़र आया। तब सवेरा दिन में परिणत हुआ और दिन कुछ ही क्षणों में, सन्ध्या में, और अब फिर रात आई और हम इस जादूघर से उस खेल के सूत्रधार-द्वारा बाहर पहुँचा दिये गये, जिससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ सन्तुष्ट और कुछ चकित होकर हम घर को लौटे। मेरे कुछ साथियों ने उस घर को भूतों का घर समझा होता।

रहना, किन्तु दो या तीन मिनट में वह उसके हाथ से ग़ायब हो गई और डाक्टर लेगेट के पतलून में मिली। इसी तरह के अनूठे खेल उसने दिखाये, जिन्हें देखकर वे दोनों डाक्टर बहुत आश्चर्य करने लगे।

जुलाई का पहला सप्ताह क़रीब-क़रीब आराम करने में ही बीता। दोपहर के बाद मैं केनसिंगटन गार्डेंस तक टहल आया करता था। मेरे ठहरने की जगह से यह बहुत दूर नहीं था। वहाँ मैं घंटा दो घंटा बैठा प्रकृति की शोभा देखता रहता।

११वीं को हम लन्दन के न्यायालय को गये। लार्ड चैंस-लर ने कृपापूर्वक हमारा स्वागत किया और हमें अपनी ऊँची कुर्सी के पास ले जाकर बैठाया। वे कुछ ऊँचा सुनते थे, अतएव दुभाषिये का काम करने के लिए मुझे बिलकुल अपने से सटकर बैठाया और हमारे सरदार को कुछ दूर। उस समय वे एक अभागे इण्डो-योरपीय कर्नल डाइस सोम्ब्रे का मुक़दमा सुन रहे थे। इसने एक ऊँचे दर्जे की अँगरेज़ स्त्री के प्रेम में पड़कर व्याह करके अपनी बड़ी जायदाद नष्ट कर डाली थी। थोड़ी बातचीत करने के बाद हमने उनसे बिदा ली और एक दूसरे बड़े आदमी से बदले की भेंट करने चले गये।

१७वीं को हमने सुना कि एक अद्भुत बौना देहात से आया है। हम उसे देखने उसके स्थान पर गये। वह १३ वर्ष का था। वज़न में वह १६ पौण्ड था, और ऊँचाई में २८ इञ्च। उसके शरीर के सब अङ्ग भी ठीक थे। उसे जनरल टाम थम्ब कहते थे। उसने हमारे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिया, ज़िससे जान पड़ा कि उसकी बुद्धि भी दुरुस्त है। वह फ़ौजी पोशाक पहने था। उसकी बग़ल में एक छोटी सी तलवार लटकती थी।

२४वीं को सवेरे की गाड़ी से हम विण्डसर गये। मिस्टर ए० लैथम ने हमें आमन्त्रित किया था। विण्डसर के पास

देहात में उनका घर था। हम विण्डसर एक घण्टे से कम समय में पहुँच गये। लन्दन से वह २२ मील पश्चिम था। नगर ख़ूब आबाद है और टेम्स नदी के किनारे एक सुन्दर जगह में बसा हुआ है। लैथम साहब ने वहाँ का दुर्ग देखने के लिए अनुमति ले ली थी। हमने उस शानदार दुर्ग में प्रवेश किया और वहाँ का राजमहल तथा गिरजाघर देखकर बहुत ख़ुश हुए। इसके बाद हम मिस्टर लैथम के घर गये और वह दिन वहाँ बड़ी प्रसन्नता में बिताया।

अगस्त का प्रारम्भ-काल काम-काज में लगाया। १४वीं को बाज़ार में घूमते समय ख़बर मिली कि इजिप्शियन हॉल में कुछ अमरीकन आये हैं। मैं उसके भीतर गया। उसके अधिकारी को चाँदी का एक सिक्का फ़ीस के रूप में देकर अपने हमजिंसों को देखा। वे कुल नौ थे और बिलकुल असभ्य अवस्था में थे। वे चमड़े, पर और तृण की पोशाकें पहने थे, जो स्वयं उन्हीं की बुनी हुई थीं। वे ताम्रवर्ण थे, उनकी रूप-रेखा जङ्गली थी और उनके शरीर, सिर्फ़ हाथों को छोड़कर जो बहुत पतले थे, सुडौल थे। वे जो बोली बोलते थे, आवाज़ में मराठी से मिलती थी। उनकी सीधी-सादी बातें एक नवयुवक अँगरेज़ समझा देता था। कुछ-कुछ हिन्दुओं की तरह वे अपना माथा और शरीर चित्रित किये हुए थे।

२६वीं को हमारी महारानी के विण्डसर में राजकुमार का जन्म होने की तार-द्वारा सूचना मिली। हमारे सरदार ने, एशियाई रीति के अनुसार, दुर्ग को शुभ कामना का पत्र ले जाने की आज्ञा दी। फलतः हम फिर विण्डसर गये, सेक्रेटरी को पत्र दिया और उसका जवाब लेकर दोपहर बाद लन्दन लौट आये।

कोर्ट आफ़ डायरेक्टर्स को मेरे सरदार ने जो प्रार्थना-पत्र दिया था, उसका उत्तर उन्हें मिल गया। सितम्बर के प्रारम्भ में

उन्हें चेयरमैन से इस बात का आश्वासन भी मिल गया कि उनका मामला भारत में सन्तोषजनक रीति से तय कर दिया जायगा। मेरे सरदार के वहाँ मौज करने के सिवा अब हमारे लिए इँगलेण्ड में ठहरना बेकार था। बड़ी कठिनाई से मैंने उन्हें यथासम्भव शीघ्र ही उस मनोमोहक नगर को छोड़ने को बाध्य किया। तीसरी अक्टूबर को जानेवाले मेल स्टीमर से हमने अपनी यात्रा का प्रबन्ध किया। अपने मित्रों से मिलने और जो देखने को रह गया था उसे देखने के लिए हमारे पास अभी एक महीने का समय था।

लन्दन के हमारे नये मित्रों में से एक सच्चे विश्वासी सैयद अमीनुद्दीन अलअली भी थे। ये आम तौर से अली इफ़न्दी कहलाते थे और कांस्टेंटिनोपल के सुलतान के इँगलेण्ड में राजदूत थे। इस्लाम के बादशाह के इस श्रेष्ठ मन्त्री से कई बार भेंट करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे सरदार ने उन्हें एक बहुमूल्य भारतीय तलवार भेंट की थी। १२वीं सितम्बर को हम उनसे आख़िरी भेंट करने को गये। उन्होंने मेरे सरदार को तुर्की भाषा की एक बहुमूल्य पुस्तक प्रदान की। वैसी ही एक पुस्तक उन्होंने मुझे भी दी। फिर भारतीय गवर्नमेण्ट के सम्बन्ध में बड़ी देर तक बात-चीत होती रही। जब हम चलने लगे तब उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि जब कभी ज़रूरत हो, इस्लाम-सरकार की सेवा करने को हम हर समय उपस्थित हैं।

अब मैं यहाँ अँगरेज़ों के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ लिखता हूँ। वे क़ानून के बड़े पाबन्द और अपने से बड़ों के आज्ञाकारी हैं। संसार की किसी भी जाति से उनमें कहीं ज़्यादा देश-भक्ति का भाव है। वे स्त्रियों के कहीं अधिक आज्ञाकारी और उनका विश्वास करनेवाले तथा उनकी अधीनता में रहने-

वाले हैं। इस देश में स्त्री-जाति को बहुत अधिक स्वाधीनता प्राप्त है और इसके कारण जो बुराई पैदा हो गई है वह अत्यधिक शोक की बात है।

अब मैं यहाँ सन् १८४४ से सन् १८५४ तक की अर्थात् दस वर्ष की अपनी कथा नहीं लिखूँगा। इस काल में मुझे अनेक परिवर्तनों का अनुभव करना पड़ा है। उन सबका वर्णन करने के लिए एक दूसरी जिल्द की ज़रूरत है। जब मुझे समय मिलेगा, मीर जाफ़र की नौकरी से छुट्टी मिलेगी और शान्ति के साथ अपने घर में बैठूँगा तब उसे लिखूँगा।

अन्त में तीसरी अक्टूबर को हमने इँगलेण्ड छोड़ा और सर्वशक्तिमान् अल्लाह को धन्यवाद है कि सही-सलामत १२वीं नवम्बर को बम्बई पहुँच गये। वहाँ हम पन्द्रह दिन तक रहे। इस काल में हमने सरकारी काम किया, आनरेबल गवर्नर से भेटें कीं, उनके मित्रों के तथा उनके उच्च अधिकारियों के पत्र दिये तथा अन्य मित्रों से मिले। इसके बाद मेरे सरदार जल-मार्ग से और मैं स्थल-मार्ग से सूरत गया। मैं अपने प्रिय घर में ५वीं दिसम्बर सन् १८४४ को पहुँचा। इस लम्बी यात्रा के बाद मेरी स्त्री—भगवान् उसे सद्गति दें—मुझे देखकर बहुत ख़ुश हुई और मैं भी संसार में अपने एकमात्र सच्चे मित्र और सुख-दुःख में अपने प्रिय साझीदार को देखकर उससे दूना ख़ुश हुआ।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि इँगलेण्ड जाने से मेरे सरदार की और मेरी आर्थिक दशा, अपने अपने दर्जे के अनुसार, सुधर गई। परन्तु इसके साथ ही हमारे हृदय को विदीर्ण करने के लिए भयानक दुर्भाग्य अपनी घात में छिपा खड़ा था। हमारे सरदार की प्यारी स्त्री, जो उनकी धन-दौलत का स्रोत थी, ९ जनवरी सन् १८४५ को राजयक्ष्मा रोग से मर गई। इसके बाद १५वीं जनवरी सन् १८४७ को मेरी प्यारी स्त्री भी

हैज़े की बीमारी से इस लोक को छोड़कर चली गई। इस दुर्घटना का मुझे इतना अधिक दुःख हुआ कि मैंने तुरन्त घर-द्वार छोड़कर साधु हो जाने का विचार किया। परन्तु मेरे साथियों ने, विशेष कर मेरे सरदार ने, मुझे फिर अन्धा बना दिया और धीरे-धीरे फिर सांसारिक माया-जाल में फँसा दिया।

सोमवार १२ जुलाई सन् १८४७ को मैंने विलायती ख़ानूम से फिर विवाह किया। सूरत के भूतपूर्व नवाब की ज्येष्ठ कन्या नजीबुन्निसा बेगम ने इसे गोद लिया था। इस स्त्री से मेरे चार सन्तानें हुईं—तीन कन्यायें और एक लड़का। ईश्वर उन सबको आशीर्वाद दें। मेरी घर-गृहस्थी की चिन्तायें बढ़ गई हैं, मेरी उम्र भी ढल गई है और मेरी आय इतने बड़े कुटुम्ब को सँभालने के लिए काफ़ी नहीं है। परन्तु मैं अपने को उसी सर्वव्यापी की मर्ज़ी पर छोड़े हुए हूँ जिसकी शक्ति पहले भोजन की रचना करती है और तब उसकी सृष्टि उसपर निर्वाह करने को बाध्य होती है। तथास्तु।